न्यायिक व्यवस्था में 'कानूनी सहायता' की भूमिका का एक अध्ययन - उ. प्र. के हमीरपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में
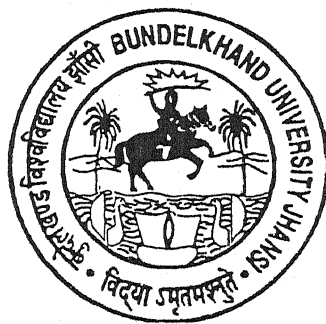
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
से राजनीति विज्ञान में
पी-एच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

2002

निर्देशक :
डॉ. आदित्य कुमार
रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (उ.प्र.)

अनुसंधित्सु :
हरी नारायण द्विवेदी

शोध केन्द्र : दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई (उ.प्र.)

डा0 आदित्य कुमार
रीडर
राजनीति विज्ञान विभाग

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई (उ0 प्र0)
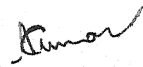
प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री हरी नारायण द्विवेदी पुत्र श्री बृजराज किशोर ने, जो बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में **राजनीति विज्ञान** में पीएच0 डी0 (Ph. D.) की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में *''न्यायिक व्यवस्था में कानूनी सहायता कार्यक्रमों की भूमिका का एक अध्ययन– उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में''* विषय पर शोध कार्य हेतु पंजीकृत थे, अपना शोध कार्य पूरा कर लिया है।

मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि

1. शोध प्रबन्ध मौलिक है और शोध छात्र के अपने प्रयासों का प्रतिफल है, तथा
2. इन्होंने (श्री हरी नारायण द्विवेदी) ने मेरे निर्देशन में अध्यादेश द्वारा वांछित अवधि में अपना कार्य पूरा किया है।

दिनांकः

(डा0 आदित्य कुमार)
शोध निर्देशक

प्राक्कथन

हमारा देश विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र हैं। हमारे संविधान की प्रस्तावना संविधान के दर्शन को अभिव्यक्त करती है। हमारा संविधान सभी के लिये समान न्याय की घोषणा करता है। एक लोक तान्त्रिक विकासशील देश में ऐसे वचन को वास्तविकता तक पहुँचाने के लिये महत्वपूर्ण योजना और प्रयासों की आवश्यकता है। जब तक न्याय गरीबों और समाज के कमजोर वर्गों को प्राप्त नहीं होता तब तक ऐसी संवैधानिक घोषणायें मात्र कागजी ही रहेगी।

हमारे देश में न्यायिक व्यवस्था को प्रायः आलोचना का सामना करना पड़ता है। न्याय में देरी, उसकी जटिल प्रक्रिया तथा उसका खर्चीला होना ऐसी समस्यायें हैं जिनसे निर्धन जनता को न्याय पाने में कठिनाई होती है। निरक्षरता के कारण आम लोगों को अपने अधिकारों की जानकारी भी नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में न्याय को जन–जन तक पहुंचाना राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष एक बड़ी चुनौती है जिसका सामना करना उसके लिये अनिवार्य भी है। यदि न्यायिक व्यवस्था अप्रसांगिक हो जाती है और लोगों को उसमें आस्था नहीं रहती तो ऐसी स्थिति किसी भी सभ्य समाज के लिये घातक हो सकती है।

संविधान निर्माण के बाद से इस बात के निरन्तर प्रयास किये गये कि गरीब व कमजोर वर्गों तक न्याय पहुँच सके। संविधान के 42 वें संसोधन द्वारा नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 39 में 39 क जोड़ा गया जिसमें स्पष्ट कहा गया– ''राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तन्त्र इस प्रकार से काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाय, उपयुक्त योजना के द्वारा या किसी अन्य रीति से विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा''।

इस प्रकार 'निःशुल्क कानूनी सहायता' की आवश्यकता और महत्व को समझते हुये भारत सरकार ने 26 सितम्बर 1980 के संकल्प के द्वारा सभी राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों में एक रूपता से विधिक सहायता कार्यक्रमों को बनाने और क्रियान्वयन के लिये एक समिति ''विधिक सहायता योजना कार्यान्वयन समिति (CILAS)'' की स्थापना की। इस समिति ने समाज के कमजोर वर्गों में विधिक सहायता और जागरूकता पैदा करने के लिये विधिक सहायता शिविरों के आयोजन पर बल दिया, लोक अदालतों के आयोजन को प्रेरित किया तथा विधिक सहायता कार्यक्रम चलाने

वाले स्वयं सेवी संगठनों और सामाजिक कार्यदलों को प्रोत्साहन व सहायता देने की संस्तुति की। सारे देश में विभिन्न राज्यों में 'कानूनी सहायता व परामर्श बोर्ड' बनाये गये तथा जिलों में जिला कानूनी सहायता व परामर्श बोर्ड स्थापित किये गये। इनके द्वारा सारे देश में लोक अदालतें लगायी गयीं तथा विधिक साक्षरता शिविर लगाये गये लोक अदालतों को कानूनी आधार देने के लिये 'विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987' संसद द्वारा बनाया गया जिसे आवश्यक संसोधन के बाद 1997 से लागू किया गया। यह अधिनियम समाज के कमजोर वर्गों को सक्षम विधिक सेवा सुलभ कराने के लिये राष्ट्रीय राज्य तथा जिला स्तरों पर 'विधिक सेवा प्राधिकरण' गठित करने की व्यवस्था करता है तथा लोक अदालतों के संगठन शक्तियाँ व क्षेत्राधिकार को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है। लोक अदालतें कानूनी सहायता का प्रमुख साधन सिद्ध हुयीं हैं।

लोगों को अपने उपभोक्ता अधिकारों के प्रति जागरूक करने की दृष्टि से उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 बनाया गया। जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय उपभोक्ता संरक्षण आयोग, राज्य उपभोक्ता संरक्षण आयोग द्वारा जिला स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण फोरम गठित किये गये जो न केवल आम लोगों में कानूनी साक्षरता बढ़ाने का दायित्व निभाते हैं बल्कि उपभोक्ता अदालतों के रूप में कार्य करते हैं एवं त्वरित न्याय प्रदान करते हैं।

पारिवारिक विवादों को सुलझाने के लिये उत्तर प्रदेश में एक मिलियन से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना की गयी है जो सुलह और समझौते की पृष्ठभूमि तैयार करके पारिवारिक विवादों को हल करने में सहायता देते हैं।

'कानूनी सहायता कार्यक्रमों के भारतीय न्यायिक व्यवस्था में योगदान का अध्ययन' इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है। इन कार्यक्रमों के व्यवहारिक क्रियान्वयन के अध्ययन लिये उत्तर प्रदेश के पिछड़े क्षेत्र बुन्देलखण्ड के हमीरपुर जनपद को चुना गया है। जिसमें गरीब व दलित जनसंख्या एक बड़ी मात्रा में निवास करती है।

इस शोध प्रबन्ध की प्रस्तावना 'न्याय की अवधारणा' को स्पष्ट करने के साथ भारतीय न्यायिक व्यवस्था की आलोचनात्मक समीक्षा करती है और कानूनी सहायता की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

पहला अध्याय का 'कानूनी सहायता की अवधारणा' से सम्बन्धित है। इससे कानूनी सहायता के दर्शन को स्पष्ट किया गया है। दूसरा अध्याय कानूनी सहायता की संकल्पना के विकास

एवं स्वरूप से सम्बन्धित है तथा देश में विधिक सहायता के विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करता है।

तृतीय अध्याय लोक अदालतों की अवधारणा एवं इनके विकास का विवरण प्रस्तुत करता है जो कि कानूनी सहायता का प्रमुख साधन सिद्ध हुआ है। चतुर्थ अध्याय कानूनी सहायता के अन्य साधन--उपभोक्ता संरक्षण फोरम, विधिक साक्षरता शिविर पारिवारिक न्यायालय एवं न्याय पंचायतों के स्वरूप व विकास की जानकारी प्रस्तुत करता है।

पांचवा अध्याय उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जनपद के परिचयात्मक विवरण से सम्बन्धित है। जिसका चयन कानूनी सहायता कार्यक्रमों के व्यवहारिक क्रियान्वयन के अध्ययन के लिये किया गया है यह अध्याय हमीरपुर जनपद के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश की एक झाँकी प्रस्तुत करता है।

छठा अध्याय कानूनी सहायता कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की जानकारी देता है विशेष रूप से हमीरपुर जनपद में लोक अदालतों, उपभोक्ता सरक्षण फोरम, पारिवारिक न्यायालय एवं विधिक साक्षरता शिविरों की इस क्षेत्र में क्या भूमिका रही है, इन कार्यक्रमों से न्यायपालिका पर मुकदमों का बोझ किस सीमा तक कम हुआ है ? किस प्रकार के मुकदमें इनके द्वारा संचालित हुये हैं और इनसे कितने व्यक्ति लाभान्वित हुये हैं ? इन सभी की विस्तृत जानकारी और उसका विश्लेषण विभिन्न तालिकाओं के माध्यम से इस अध्याय में संग्रहीत किया गया है।

अध्याय सात कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में समाज के विभिन्न वर्गों का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसके लिये दो दृष्टिकोण मापन स्केल प्रयुक्त किये गये है। प्रथम स्केल के द्वारा कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विविध वर्गों पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। दूसरे स्केल के द्वारा इन कार्यक्रमों के बारे में विविध वर्गों की राय ली गई है। इसके हमीरपुर जनपद में ही उत्तरदाताओं का सर्वे किया गया है।

ऑठवे अध्याय में कानूनी सहायता कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया गया है। इन कार्यक्रमों की उपलब्धियों और अपर्याप्तताओं को रेखांकित किया गया है। जिसके लिये न्यायिक सेवा से जुड़े व्यक्तियों व समाज के बुद्धिजीवियों और इन कार्यक्रमों से प्रभावित व्यक्तियों से साक्षात्कार को प्रमुख माध्यम बनाया गया है। उपसंहार के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध की संक्षिप्त समीक्षा के अतिरिक्त कानूनी सहायता कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने के सुझावों को भी शामिल किया गया है।

शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में उपकरण के रूप में विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित विषय से सम्बन्धित लेखों, पुस्तकों और कानूनों का अध्ययन किया गया है। इसके अलावा कानूनी व्यवसाय से सम्बन्धित तथा समाज के अन्य जागरूक लोगों पर सर्वेक्षण तथा साक्षात्कार के माध्यम से सामग्री जुटाकर, उनका विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाले गये हैं। जिला विधिक प्राधिकरण तथा जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम कार्यालय हमीरपुर के द्वारा विस्तृत आंकड़े एकत्रित किये गये हैं।

यह शोध प्रबन्ध मेरे शोध निर्देशक डा0 आदित्य कुमार, रीडर, (राजनीति विज्ञान) डी0 वी0 कालेज, उरई के सहयोग एवं आर्शीवाद के परिणाम स्वरूप ही पूरा हो सका है, मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग एवं पुस्तकालय का पूर्ण सहयोग मिला, मैं इनके प्रति आभारी हूँ। इसके अलावा में अपने जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारतीय विधि संस्थान, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण लखनऊ, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर के कर्मचारियों तथा जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम के स्टाफ का भी सहयोग मिला मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ। श्री अश्वनि कुमार मिश्रा (उरई), श्री रशिमेश सिंह सचान (घाटमपुर), श्री अनिल मिश्रा, (काजल कम्प्यूटर) ने टंकण करके मेरे इस कार्य में जो अमूल्य सहयोग दिया उसके प्रति भी मैं आभारी हूँ।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे अपने माता–पिता का आर्शीवाद सदैव प्राप्त रहा तथा जनता महाविद्यालय घाटमपुर के अध्यक्ष श्री चौ0 नरेन्द्र सिंह जी का आर्शीवाद मेरे इस कार्य में सम्बल की तरह रहा। मैं उनके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

दिनांक:

(हरी नारायण द्विवेदी)

अनुक्रमणिका

पृष्ठ सं0

प्रस्तावना 01—22

अध्याय—1 : कानूनी सहायता की संकल्पना 23—47

(अ) कानूनी सहायता की आवश्यकता

(ब) विधिक सहायता— एक मानवीय अधिकार

(स) कानूनी सहायता— एक कानूनी अधिकार

अध्याय—2 : कानूनी सहायता की संकल्पना का विकास एवं स्वरूप 48—80

(अ) कानूनी सहायता के प्रयासों का उद्भव

(ब) विधिक सहायता का स्वरूप

(स) विधिक सहायता की प्रमुख विशेषतायें एवं अंग

(द) भारत में विधिक सहायता का विकास

(य) उत्तर प्रदेश में कानूनी सहायता कार्यक्रम

अध्याय—3 : कानूनी सहायता का प्रमुख साधन— लोक अदालतें 81—105

(अ) लोक अदालतों की अवधारणा

(ब) लोक अदालतों के उद्देश्य

(स) लोक अदालतों का उद्भव एवं विकास

(द) लोक अदालतों का संगठन, प्रक्रिया, क्षेत्राधिकार एवं शक्तियाँ

अध्याय—4 : कानूनी सहायता के अन्य साधन 106—181

(अ) उपभोक्ता संरक्षण (उपभोक्ता संरक्षण फोरम)

(ब) परिवार संरक्षण (पारिवारिक न्यायालय)

(स) परिवार परामर्श केन्द्र

(द) विधिक साक्षरता शिविर

(य) न्याय पंचायतें

अध्याय–5 : हमीरपुर जनपद का परिचयात्मक विवरण 182–196

(अ) भौगोलिक स्थिति

(ब) ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत

(द) सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश

अध्याय–6: कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन– हमीरपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में 197–238

(अ) भारत में कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

(ब) हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

- (अ) लोक अदालतों की भूमिका
- (ब) उपभोक्ता संरक्षण फोरम की कार्यप्रणाली
- (स) पारिवारिक न्यायालयों की भूमिका
- (द) विधिक साक्षरता शिविरों का योगदान

अध्याय–7 : कानूनी सहायता कार्यक्रमों के संबंध में समाज के विविध 239–263

(अ) कानूनी सहायता कार्यक्रमों का प्रभाव

(ब) कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विषय में समाज के विविध वर्गो का राय

अध्याय–8 : कानूनी सहायता कार्यक्रमों का मूल्यांकन 264–284

(अ) उपलब्धियाँ

(ब) अपर्याप्ततायें

उपसंहार 285–313

परिशिष्ट 314–323

सन्दर्भ सूची 324–[illegible]

प्रस्तावना

समाज का जन्म मनुष्य की स्वाभाविक मेल जोल की इच्छा से होता है। यह इच्छा प्राकृतिक इच्छा होती है **आरिस्टाटिल** ने कहा है था– **''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है''**।[1] डी० डी० राफेल का मत है– *''समाज प्राकृतिक इच्छा पर आधारित है। राज्य एक ऐसा समुदाय है जो विकास की अन्तिम अवस्था में अस्तित्व में आया। यह सोची समझी योजना एवं गणना का परिणाम है तथा तार्किक इच्छा पर आधारित है''*।[2]

समाज मनुष्य की समुदाय के रूप में संगठित होने की इच्छा का फल है। समाज के जन्म के लिए जो तत्व उत्तरदायी है वे **''सामूहिक हित''** कहलाते हैं। जैसे–भोजन, उत्पादन और परिवार चलाने के सामूहिक हित। सामूहिक हित मनुष्यों के बीच परस्पर निर्भरता को उत्पन्न करते हैं और समाज के निर्माण में सहायता करते हैं।

राज्य समाज के अन्तर्गत विकसित एक समुदाय है लेकिन यह एक अद्वितीय समुदाय है। राज्य एक सीमित उद्देश्य के लिए निर्मित समाज का एक उत्तरदायी अभिकर्ता है, जो एक विशिष्ट एवं सीमित उद्देश्य को पूरा करता है लेकिन जिसके पास कानूनों को बनाने और लागू करने की सर्वोच्च शक्ति है। समाज के पूर्ण निर्देशक के रूप में राज्य **''कानूनी सर्वोच्चता''** का उपभोग करता है लेकिन कानूनी सर्वोच्चता का अर्थ कानूनी निर्पेक्षता नहीं है। कानूनी सर्वोच्चता का तात्पर्य उच्च शक्ति से है जबकि कानूनी निर्पेक्षता का तात्पर्य अनुत्तरदायी शक्ति से है।

राज्य समाज में कानून व्यवस्था और सुरक्षा की स्थापना अपनी सर्वोच्च कानूनी शक्ति से करता है। यूनानी विचारक मानते थे कि राज्य का अस्तित्व अच्छे जीवन को प्रोत्साहित करने के लिए हुआ और उसे बनाये रखने के लिए ही बना हुआ है। अरिस्टाटिल कहते है– *''राज्य का लक्ष्य जीवन को संभव बनाना ही नहीं है बल्कि एक अच्छी तरह के जीवन को प्रदान करना है''*।[3]

---

1. अरिस्टाटिल : पालिटिक्स
2. डी० डी० राफेल : प्रोब्लम्स एण्ड पॉलिटिक्स फिलास्फी, लन्दन, मैकमिलन–1970 अध्याय–2 पृष्ठ 32–33
3. अरिस्टाटिल : पालिटिक्स (वार्कर द्वारा अनुदित) पृष्ठ 118

यद्यपि राज्य मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से नैतिक या अच्छा नहीं बना सकता लेकिन नैतिकता को प्रोत्साहित करने में अप्रत्यक्ष रूप से मदद कर सकता है। राज्य दो तरीके से यह कार्य करता है– प्रथम, अच्छे जीवन की मार्ग की बाधाओं को हटाकर, नैतिकता के विकास के लिए अच्छी परिस्थितियां तैयार करके, जंगल राज की समाप्ति करके एवं सबल को दुर्बल के अधिकारों में हस्तक्षेप न करने का माहौल बनाकर। दूसरा तरीका समाज की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना जैसे अच्छी शिक्षा प्रदान करना जिससे लोग उचित–अनुचित, अच्छा बुरा तथा नैतिक–अनैतिक का भेद कर सकें तथा उचित निर्णय ले सकें।[1]

ग्रीन, बार्कर आदि विचारक मानते है कि मनुष्य के वास्तविक और नैतिक विकास के लिए आवश्यक है कि राज्य ऐसी बाहरी परिस्थितियां बनाये जिनसे व्यक्ति का नैतिक विकास हो सके। **ग्रीन** कहते है कि **"राज्य को उत्तम जीवन के मार्ग की बाधाओं की बाधा के रूप में कार्य करना चाहिए"**[2]। राज्य का सम्बन्ध न्याय और सामूहिक कल्याण को प्रोत्साहित करने से है और इसी उद्देश्य से समाज के अभिकर्ता के रूप में राज्य कार्य करता है। **बार्कर** कहते है कि **"राज्य का लक्ष्य सामाजिक इच्छा के दृष्टिकोण से न्याय को बनाये रखना है। इस प्रकार न्याय एक धीरे–धीरे विकसित होती हुयी सामाजिक व्यवस्था का उत्पादन है"**[3]। राज्य सामान्य हित को प्रोत्साहित करते हुए राज्य विभिन्न प्रतियोगी दावों का निष्पक्ष रूप से निर्णय करता है। जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध है राज्य के लिए सामूहिक हित एक निर्धारित लक्ष्य नहीं है, बल्कि नैतिक निर्णयों का निर्माण करने की एक प्रक्रिया है।[4]

---

1. अली० एच० डाक्टर : इश्यूस इन पॉलिटिक्स थ्योरी,, स्टर्लिंग पब्लिसर्स न्यू देहली पृ–47
2. टी० एच० ग्रीन : प्रिंसपल्स ऑफ पॉलिटिक्स आब्लीगेशन्स
3. अर्नेस्ट बार्कर : दि प्रिंसपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिक्स थ्योरी, लन्दन आर्क्सकोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 51
4. अली एच० डाक्टर : इश्यूस इन पॉलिटिक्स थ्योरी पृ० 51

न्याय की अवधारणा :

प्लेटो के समय से ही न्याय को एक उत्तम राजनीतिक व्यवस्था की प्राथमिक विशेषता माना गया है। न्याय के सम्बन्ध में अनेक विचार हैं। न्याय की समतावादी धारणा **''समानता''** के तत्व को सबसे ऊँचा स्थान देती है, स्वतन्त्रतावादी विचारक **स्वतन्त्रता** को न्याय की एक मात्र कसौटी मानते हैं। दैवी सिद्धान्त के समर्थक जहाँ न्याय को **ईश्वर की इच्छा** मानते हैं वहाँ सुखवादी विचारक **'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम हित'** को न्याय की कसौटी स्वीकार करते हैं। समरसतावादी मानते हैं कि **''विभिन्न विरोधी तत्वों और मूल्यों के बीच एक संतोषजनक संतुलन स्थापित करना ही न्याय है।''**

कुछ विचारक न्याय को कर्तव्य से जोड़ते है, कुछ शान्ति और व्यवस्था की स्थापना को न्याय मानते हैं, कुछ इसको अभिजनों का कार्य मानते हैं और कुछ उसे सामाजिक व्यवस्था एवं व्यक्ति के अधिकारों के रक्षक के रूप में परिभाषित करते हैं। इस प्रकार न्याय के सम्बन्ध में विभिन्न विरोधाभाषी धारणाएं भी बनती हैं। राफेल कहते हैं एक तरफ यह एक ही समय में कानूनी और नैतिक दोनों माना जाता है। दूसरी तरफ यह सामाजिक व्यवस्था तथा अधिकारों की रक्षा तथा व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा दोनों की बात करता है।

राफेल आगे कहते हैं कि अन्ततः न्याय इस अर्थ में संकीर्ण है कि वह अतीत से सम्बद्ध है लेकिन साथ ही यह सुधारात्मक है और भविष्य की ओर दृष्टिपात करता है। परम्परागत अवधारणा में यह अतीत में श्रेष्ठ को पकड़ता है स्थापित मूल्यों को महत्व देता है और सुधारवादी दृष्टिकोण से यह अपने को स्थापित मूल्यों और विचारधाराओं से अलग करता है कभी उनकी आलोचना करता है और कभी उनके सिद्धान्तों को पूरा तरह त्याग देता है। फिर भी कुल मिलाकर न्याय एक ऐसी विचारधारा के रूप में हमारे सामने आता है जो

अनेक अन्य विचारों को पीछे छोड़ देता है, और जो स्वतन्त्रता, समानता, भाईचारा, कानून एवं व्यवस्था जैसे अनेक राजनीतिक मूल्यों में समरसता स्थापित करता है और इनके संश्लेषण के रूप में सामने आता है।[1]

न्याय, एक कुशल राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वास्तव में इस बात को लेकर काफी आकर्षण रहा है कि न्याय स्वयं में पूर्ण है। यह उन राजनीतिक गुणों पर जोर देता है जिससे अच्छा समाज और न्यायवादी समाज बनता है। न्याय की अवधारणा हमारा ध्यान एक विशेष तत्व की ओर खीचतीं है जिसमें मनुष्य को वह एक स्वतन्त्र इकाई मानती है और उसके साथ ऐसा व्यवहार करती है, जो उसके लिए उपयुक्त है। **जस्टिनियन** का मत है **"न्याय एक स्थिर एवं सतत इच्छा है जो प्रत्येक व्यक्ति को उसका उचित भाग प्रदान करती है"**[2]।

इस परिभाषा पर भलीभाँति विचार करने से प्रश्न उठता है कि एक व्यक्ति के लाभ के लिए क्या उचित है ? और दण्ड के लिए क्या उचित है ? दण्ड के रूप में न्याय के लिए तीन शर्तों का पूरा होना आवश्यक है–

1. दण्ड केवल उनको दिया जाना चाहिए जो दोषी हों व गलत कार्य करते पाये जायें। इसके लिए उचित प्रक्रिया का पालन किया जाये।
2. दण्ड को बिना किसी पक्षपात के लागू किया जाये और उनके गलत कार्यो के अनुपात में दण्ड दिया जाये।
3. दण्ड का मापदण्ड समानुपातिक हो जो न तो बहुत कड़ा हो और न ही लचीला।

दण्ड की तीसरी व्यवस्था इस बात पर निर्भर करती है कि दण्ड पर सामान्य रूप में कैसे विचार किया गया है, इसे निरोध के साधन के रूप में अपनाया गया है या प्रतिशोध के साधन के रूप में। इस प्रकार तीसरी शर्त पहले दो की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण है।

---

1. डी0 डी0 राफेल : प्राब्लम्स ऑफ पॉलिटिकल फिलास्फी,, मैकमिलन इण्डिया लि0 1977, पृ0 165
2. दि ब्लैक वेल एनसाइक्लापीडिया ऑफ पॉलिटिक्स थॉट 1987, पृ0 260

जो दण्ड इन तीनों शर्तों से अधिक हो जाता है वह अन्याय कहलाता है। लेकिन यह बहुत कम स्पष्ट है कि हम कौन सी शर्त ग्रहण करें। अगर तीनों शर्तों का पालन किया जाये फिर भी अपराधी बच निकले तो क्या किया जाये ? परम्परागत रूप से दण्ड में दया को भी शामिल किया गया है। इस सम्बन्ध में कुछ मतभेद दिखाई देते हैं। कुछ विचारक मानते है कि न्याय दण्ड की ऊपरी सीमा को निर्धारित करता है लेकिन दया के रास्ते में कभी नहीं आता जो कि ऐसा गुण है जो न्याय को पूर्ण बनाता है। कुछ अन्य विचारक **काण्ट** के इस विचार से सहमत है **"न्याय का पूर्ण परिपालन किया जाना चाहिए चाहे परिस्थितियां कुछ भी हों, यदि कोई सभ्य समाज अपने को भंग करने की स्थिति में हो तब भी अन्तिम अपराधी को दण्डित कर देना चाहिए"**[1]।

ऐसी परिस्थिति में जहां कोई गलत कार्य नहीं किया गया है, न्याय क्या होना चाहिए ? यह विचार का विषय रहा है और इस सम्बन्ध में हमें वैचारिक मतभेद दिखायी देता है।

ऐतिहासिक रूप से यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है, कि हम कानून और न्याय के बीच में गहरा सम्बन्ध पाते हैं। न्यायपूर्ण होने के लिए चाहे वह कोई सामान्य व्यक्ति हो या सरकारी अधिकारी, उसे कानून का पालन करने वाला होना चाहिए। कानून का यह एक सामान्य नियम है जिसमें जोर दिया जाता है कि कैसे लोग एक दूसरे के साथ व्यवहार करें। न्याय का अर्थ है कि उन परम्पराओं और अधिकारों का सम्मान किया जाये जिन्हें अधिकांश विचारक परम्परागत रूप से मानते रहे हैं। फिर भी कानून को कुछ निश्चित नैतिक बातों को पूरा करना होता है।

---

1. इमानुएल काण्ट : मेटाफिजिकल एलीमेण्ट्स आफ जस्टिस

प्राकृतिक न्याय के अनुसार किसी सकारात्मक विधि के पीछे कोई न कोई नैतिक नियम होता है जो तर्क से निकलकर आता है। द्वन्द्व या संघर्ष के मामले में तर्क ही न्याय का निर्धारण करता है। यद्यपि यह सिद्धान्त मानवीय नियमों में आलोचना की परिधि में आता है। सामान्यतया इसे संकीर्ण माना गया है पर अधिकांश मामलों में माना जाता है कि वर्तमान कानून प्राकृतिक नियमों की पूर्ति करते हैं।

इस प्रकार न्याय का परम्परागत स्वरूप भी है जो उस सामाजिक व्यवस्था को संरक्षण देता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति वैधानिक रूप से परिभाषित स्थान विधि में रखता है।[1]

विधि व्यवस्था को कुल मिलाकर वैधानिक परिदृश्य में हम न्याय व्यवस्था कहते हैं। ऐसा इसलिए है कि न्याय की प्रक्रिया अधिकारों के संरक्षण से जुड़ी है। **बेन और पीटर्स** का कहना है **"एक सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह सही न्याय करे।"**[2]

न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान **डीन रास्को पाउण्ड** का मत है **"न्याय सदैव विधि के अनुकूल होना चाहिए। न्याय को विधि से अलग रखकर विचार नहीं किया जा सकता अन्यथा न्याय अनियंत्रित हो जायेगा और व्यक्ति केन्द्रित हो जायेगा। यदि वह विधि विपरीत हो तो उसके परिणाम अविश्वसनीय और जोखिम पूर्ण हो जायेंगे"।**[3]

वैधानिक न्याय के विपरीत नैतिक या प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त है। स्टोइक विचारकों ने सबसे पहले प्राकृतिक शब्द का प्रयोग इस आशय से किया था कि प्रकृति में न्याय का सिद्धान्त तर्क से निर्धारित होता है। यह विचार कि न्याय या प्राकृतिक न्याय परिभाषित होते हैं, हाब्स और लॉक की विचारधाराओं में भी पाया जाता है।

---

1. दि ब्लेक विल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पॉलिटिकल थाट, पृ0 26
2. एस0 एल0 बेन एण्ड आर0 एस0 पीर्टस : सोशियल प्रिंसपल्स एण्ड डेमोक्रेटिक स्टेट, चांद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली–55, पृ0 128
3. डीन रास्को पाउण्ड : न्यू ज्यूरिस पुडेंस इस्टर्न लॉ हाउस, कलकत्ता 1970 पृ0 2–3

अमेरिका की 1976 और फ्रांस की 1789 की क्रान्तियों ने प्राकृतिक अधिकारों को मान्यता दी। प्राकृतिक न्याय की अवधारणा ने वर्तमान न्याय के सिद्धान्तों पर भी प्रभाव डाला है। अनेक विचारक स्वीकार करते है कि प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त छोटा, किन्तु न्याय प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है।

आजकल विधि न्यायालयों में जो हो रहा है, उसकी दो तरह से आलोचना की जा सकती है– वैधानिक दृष्टि से एवं नैतिक दृष्टि से।

वैधानिक दृष्टि से न्याय का प्रशासन उस समय आलोचना का पात्र बनता है यदि यह वैधानिक रूप से न्याय की निष्पक्षता के आवश्यक तत्वों को पूरा नहीं करता। उदाहरण के लिए अभियुक्त को उसके खिलाफ लगाये गये आरापों को सूचित करना चाहिए, उसे एक उचित अवसर अपना पक्ष रखने के लिए दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत नैतिक रूप से कोई कानून अन्यायी होगा यदि वह नैतिक विचारों एवं अधिकारों को पूरा करने में असफल रहता है।[1]

न्याय का एक आशय यह भी है कि सही व शुद्ध सामाजिक व्यवस्था का पोषण किया जाये। प्रचीन हिन्दू राज दर्शन में धर्म या न्याय वर्ण व्यवस्था से जुड़ा था जो प्लोटो की न्याय व्यवस्था के समान ही था।

एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में न्याय के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों पक्ष होते हैं, इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा करता है कि वह वही कार्य करे जो उसके लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त हो। राज्य या समाज में ऐसा न्याय होना चाहिए जो सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को उसके उपयुक्त और स्वाभाविक रूचि के अनुसार उसको उसका भाग प्रदान करे तथा स्थान दिलाये एवं दण्ड और पुरस्कार भी दे। हिन्दू दर्शन में राज्य या राजा वर्ण धर्म के अनुसार कार्य करता है और समाज वर्णाश्रम के अनुसार चार वर्णों

---

1. अली एच0 डाक्टर : इश्यूस इन पॉलिटिक्स थ्योरी, पृ0–169

– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित है। इसी प्रकार प्लेटो भी समाज का विभाजन करता है– शासक वर्ग, सैनिक वर्ग तथा उत्पादक वर्ग। शासक तथा सैनिक वर्ग को वह अभिभावक वर्ग भी कहता है।

आज के न्याय का विचार प्लेटो के समय जैसे समाज का नहीं है आज जिस सामाजिक व्यवस्था को हम न्यायोचित मानते है वह है लोकतान्त्रिक न्याय व्यवस्था। किसी भी सामाजिक व्यवस्था को भंग करना, चाहे वह राजतन्त्र हो या लोकतान्त्रिक, न्याय व्यवस्था को भंग करना है। कानून और दण्ड इस सामाजिक ढांचे की संरचना को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। दण्ड, सामूहिक न्याय, पुनर्उपचार जैसा कि अरस्तू ने इन शब्दों का प्रयोग किया है, एक सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक है।

न्याय की यह परम्परागत विचाराधारा जिसका मुख्य आशय सामाजिक ढांचे की सुरक्षा है, स्वाभाविक रूप से कर्तव्यों की ओर अधिक जोर देती है, अधिकारों की तरफ नहीं। जैसी यह प्राचीन हिन्दू दर्शन और प्लेटो के विचारों से मेल खाती है।

सामाजिक न्याय :

''सामाजिक न्याय'' शब्द समाज में वितरण की सम्पूर्ण व्यवस्था को न्याय के सिद्धान्तों की परिधि लाने का प्रयास करता है। इस शब्द का सबसे पहले प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी में **जॉन स्टुअर्ट मिल** ने एक वाद–विवाद में किया और इसके बाद इसका प्रयोग बढ़ता गया।

सामाजिक न्याय की अवधारणा मानती है सामाजिक प्रक्रिया व्यापक परिप्रेक्ष्य में ऐसे कानूनों के द्वारा शासित होती है जिनसे समाज के पुनर्निर्माण का प्रयास किया जाता है।

सरकार के द्वारा समाज के पुनर्निर्माण के श्रोतों को खोजना संभव है। इस प्रकार सामाजिक न्याय की हमें दो अवधारणायें मिलती है– योग्यता व क्षमता का सिद्धांत एवं आवश्यकता तथा समानता का सिद्धान्त।

योग्यता का सिद्धान्त मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसकी योग्यता और क्षमता के अनुसार होना चाहिए। यह सिद्धान्त 'अवसरों की समानता' तथा 'योग्यता के लिए अवसर' जैसे विचार प्रतिपादित करता है।

दूसरा सिद्धान्त 'आवश्यकता तथा समानता' का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त मानता है कि लाभों का बंटवारा व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुसार, समानता के आधार पर होना चाहिए। इस सिद्धान्त के समर्थक साम्यवादी, उपयोगितावादी, सामाजिक लोकतन्त्र वादी है। जॉन राउल्स भी इसके समर्थक है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना प्रकल्पित करती है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय जीवन के सभी पक्षों में होना चाहिए। आर्थिक न्याय का पहला कार्य प्रत्येक नागरिक को रोजगार, भोजन, कपड़ा और आवास उपलब्ध कराना है। स्वतन्त्रता, बेरोजगार और भूखे व्यक्तियों के लिए एक झूठा शब्द है, एक धोखा है और मनुष्य के सम्मान को नकारता है। आर्थिक न्याय के बिना व्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता अर्थहीन है।

आर्थिक न्याय में आवश्यक है कि समाज की आर्थिक व्यवस्था को नया स्वरूप इस प्रकार प्रदान किया जाये कि सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति हो, धन और उत्पादन की वृद्धि का लाभ सब लोगों तक पहुंचे। हमारे देश में समाजवादी अवधारणा के समाज की शुरूआत की गयी थी, और उसी आधार पर योजनायें रोजगार प्रारम्भ की गई हैं।

योजनाओं के माध्यम से हम केवल क्षेत्रीय विकास और सन्तुलन को ही कायम नहीं करते वरन् उत्पादन की एक ऐसी समान व्यवस्था कायम करने का प्रयास करते है जिसमें आर्थिक शक्तियों के एक जगह केन्द्रित होने पर रोक हो तथा एकाधिकार वादी प्रवृत्तियों का विकास न हो। असंख्य सरकारी और गैर सरकारी संस्थायें आर्थिक न्याय प्राप्त करने के कार्य में लगी है। जहां तक संभव हो सके समाज के सभी वर्गो को आर्थिक न्याय प्राप्त करने के लक्ष्य में सहयोग करना चाहिये। इस कार्य को केवल सरकार के ऊपर छोड़ना उचित नहीं होगा।

पी0 वी0 मुखर्जी लिखते है कि "आधुनिक न्यायशास्त्र और न्याय के सिद्धान्तों के आधुनिक कानून को तानाशाही और योजना के दुरूपयोग पर नियंत्रण लगाने के लिए प्रेरित और निर्देशित किया है और योजना को कानूनी सामाजिक व्यवस्था का भाग बनाया है"[1]।

आर्थिक न्याय का यह भी आशय है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच में भेद न किया जाये। यह समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है, और कार्य के लिए उचित मजदूरी की बात करता है। सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था समान न्याय और समान करव्यवस्था, जिसमें तर्कपूर्ण ढंग से करों का विभाजन हो, का भी समर्थन करता है।

हमारा संविधान सबको ऐसे समान राजनीतिक अधिकार देने की बात कहता है जिसमें सार्वभौम मताधिकार की गारन्टी भी दी गयी हो, जिसमें प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती की निष्पक्ष व्यवस्था हो जिसमें किसी प्रकार का कोई भेदभाव न किया गया हो, सभी नागरिकों और समुदायों को समान सामाजिक अधिकार प्राप्त हो, आने जाने और भाषण तथा विचारों की स्वतन्त्रता और एक निश्चित सीमा तक व्यक्तिगत अधिकारों की स्वतन्त्रता हो; जहां किसी एक आदमी का अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति या समुदाय के अधिकारों को दबाकर न प्राप्त किया गया हो। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें असीमित स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त है। सामान्य हितों और सामान्य व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए सीमित प्रतिबिन्धित स्वतन्त्रता प्राप्त है।

न्याय का सामाजिक पक्ष जाति, धर्म और रंग के बिना भेदभाव के समाज पर जोर देता है। वह भेदभाव तब गैर कानूनी हो जाता है जब यह किसी व्यक्ति या समूह को उसके जाति, धर्म और रंग के आधार पर सामान्य स्वीकृत अधिकारों से वंचित करता है।

1. मुखर्जी पी0 वी0 : न्यू ज्यूरिसप्रुडेंस, इर्स्टन, लॉ हाउस, कलकत्ता 1970 पृ0 12–13

सामाजिक न्याय सामान्य रूप से प्रतिभा और स्वाभाविक योग्यता के आधार पर समान अवसर के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता है[1] परिणाम स्वरूप धन और आय का बॅटवारा इसी आधार पर होता है।

अतः सामाजिक न्याय, समान योग्यता और जहां तक संभव हो सके, सबको अनिवार्य सार्वभौमिक शिक्षा देकर प्रदान किया जा सकता है। इसमें छिपा हुआ सिद्धान्त यह है कि पूरे समाज का हित सबसे कम विकसित वर्ग के लोगों को ऊपर उठाने में है।

राउल्स कहता है कि मनुष्य की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं है कि वह स्वाभाविक वितरण और योग्यता को ध्यान में न रखे, सामाजिक व्यवस्था ऐसी नहीं है जो उसे बदला न जा सके और मनुष्य के नियत्रंण से बाहर हो। न्याय में निष्पक्षता हो मनुष्य एक दूसरे के सुख–दुख को आपस में बॉट कर रहते हैं। प्रकृति और परिस्थितियों की घटनाओं को सामान्य हितों के लिए प्रयोग किया जाता है।[2]

दूसरे शब्दों में सामाजिक न्याय मानव स्वभाव से पूर्णतया निर्देश नहीं प्राप्त करता, किन्तु यह नैतिक बिन्दु से प्रारम्भ होकर वास्तविक अर्थो में समाज की संरचना का प्रयास करता है।

भारत में न्यायिक व्यवस्था :

एक प्रजातान्त्रिक सरकार में कानून का शासन, नियम कानूनों को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका होनी चाहिए। कानून के शासन की यही अवधारणा है कि कानून समान रूप से सब पर लागू हो एवं समान कानूनी संरक्षण सभी नागरिकों को राज्य के द्वारा प्रदान किया जाये। इस प्रकार कानून के शासन'को स्वीकार करने के उद्देश्य यह होना चाहिए कि एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण हो जो सभी नागरिकों के लिए समान नियम सुनिश्चित करे, जो उनके कष्टों को समान रूप से निवारण कर सके तथा राज्य निष्पक्ष रूप से किसी भय या पक्षपात के बिना सभी नागरिकों को न्याय प्रदान कर सके।

1. डी0 डी0 राफेल : प्राब्लम्स ऑफ पॉलिटिक्स फिलास्फी, मैकमिलन इण्डिया लि0 दिल्ली 1977 अध्याय–7 पृ0172–185
2. जॉन राउल्स : ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, हार्वड यूनीवर्सिटी प्रेस कैमिब्रज, 1971

भारतीय संविधान न्याय की स्थापना के लिए एक ऐसी व्यवस्था की रचना करना चाहता है, जो निष्पक्ष रूप से सभी प्रकार के दबावों से मुक्त होकर न्याय दे सके। कानून का शासन, प्रशासन के सभी क्षेत्रों में ऊपर होता है, और राज्य के सभी तन्त्र कानून के द्वारा संचालित होते है। एक कल्याणकारी राज्य में यह आवश्यक है कि प्रशासनिक संस्थायें तेजी से कार्य करें। कानून की आवधारणा तब अपना महत्व खो देती है यदि शासन निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से अपने कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर पाता है।

भारतीय संविधान व्यक्ति को उसके मूल अधिकारों को प्रदान करता है किन्तु साथ ही साथ उसकी सीमायें भी निर्धारित करता है। अगर किसी के मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है तो कानून के शासन के लिए आवश्यक है कि इसके लिए उपर्युक्त व्यवस्था हो। जिसके अधिकारों का अतिक्रमण हो उसका तत्काल निवारण किया जाये और मूलभूत अधिकारों की रक्षा की जाये। इस प्रकार का कानून का शासन संविधान के अन्तर्गत लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह सामाजिक यथार्थ को पहचानता है और समय–समय पर अधिनायकवादी मार्ग को त्यागता है।[1]

संविधान विशेषकर यह व्यवस्था करता है कि राज्य किसी व्यक्ति को कानून के सामने उसे समानता के अधिकार से वंचित नहीं करेगा और समान रूप से नियमों को लागू करेगा।

भारतीय संविधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी भी एक पक्षीय विचारधारा का खण्डन करता है। विवेकपूर्ण ढंग से लागू होने पर व्यक्ति के अधिकार, एक निश्चित सीमा तक सीमित और मर्यादित होते है। इसका अर्थ हुआ कि निर्णय समान्य सिद्धान्त और नियमों पर आधारित होते है।

---

1. बी0 एन0 शुक्ला : दि कॉस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया पृ0 2

भारतीय न्यायिक व्यवस्था का संगठन :

यद्यपि भारतीय संविधान का संघीय ढांचा है फिर भी भारत की न्यायपालिका एकीकृत है। सम्पूर्ण संघ के लिए न्यायालयों की एक मिली जुली व्यवस्था है और राज्य, संघ दोनों ही नियमों को लागू करते है। अधीनस्थ नयायालयों का संगठन प्रत्येक राज्य में थोड़ा बहुत अलग–अलग है। सबसे नीचे स्तर पर न्याय की दो शाखाएं दीवानी और फौजदारी के रूप में अलग–अलग है। संघीय अदालतें और बेन्च अदालतें ग्रामीण स्वायत्त अधिनियमों के अन्तर्गत बनती है। जो निम्न दीवानी और अपराधिक अदालतों को बनाती है।

अब पंचायत अदालतों द्वारा उनका स्थान स्वतन्त्रता के बाद बने कानूनों के अन्तर्गत ले लिया गया है। पंचायत अदालतें भी दो तरह से काम करती है, सिविल और क्रिमिनल (दीवानी और अपराधिक) अनेक भिन्न–भिन्न राज्यों में अलग–अलग नाम है। कहीं न्याय पंचायत कहीं पर पंचायत अदालत और कहीं ग्राम कचहरी जैसे नामों से काम करती है। कुछ राज्यों में पंचायत अदालतें निम्न अधिकार क्षेत्र की अपराधिक अदालतों के रूप में भी काम करती है, जो छोटे–छोटे वादों को निपटाती है।

मुंसिफ की अदालतें उनके बाद की कुछ दीवानी अदालतें होती है जो एक हजार से पांच हजार रू0 तक के वादों को निपटाती है। मुंसिफ के ऊपर अधीनस्थ न्यायालय होते है जिला जज अधीनस्थ न्यायलयों की प्रथम अपीलों की सुनवाई करता है। मुंसिफ न्यायालयों के कुछ वादों की अपील ही जिला जज सुनता है, जो अधीनस्थ न्यायालयों को सन्दर्भित नहीं है। प्रान्तीय लघु वाद न्यायालय छोटे–छोटे वादों के दावों को निपटाती है।

जिले में जिला जज सबसे बड़ा न्यायिक अधिकारी होता है सी0 आर0 पी0 सी0 1973 लागू होने के बाद आपराधिक मामले पूर्ण रूप से न्यायिक मजिस्ट्रेटों के द्वारा किए जाते है। जम्मू कश्मीर और नागालैण्ड में ऐसा नहीं है यहां सी0 आर0 पी0 सी0 लागू नहीं है। मुख्य

न्यायिक अधिकारी क्रिमिनल कोर्ट का जिले में प्रधान होता है। महानगरीय क्षेत्रों में महानगरीय न्यायिक अधिकारी होते है।

उच्च न्यायालय राज्य का सबसे बड़ा न्यायिक न्यायालय होता है जिसे मौलिक और अपीलीय दोनों अधिकार प्राप्त होते है। प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होता है। मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश और नागालैण्ड असम के उच्च न्यायालय से संबंधित है। चण्डीगढ़ में पंजाब और हरियाणा का उच्च न्यायालय गोवा मुम्बई उच्च न्यायालय से सम्बद्ध है।

सुप्रीम कोर्ट उच्च न्यायालयों की अपीलों की सुनवाई करता है और देश का सबसे बड़ा न्यायालय है।

<u>सर्वोच्च न्यायालय</u> :

संविधान के अध्याय – 4 के भाग 5 में अनुच्छेद 124 से 147 तक संघीय न्यायपालिका का वर्णन है। सुप्रीम कोर्ट देश का सर्वोच्च न्यायालय्र है। संसद सर्वोच्च न्यायालय के संगठन क्षेत्राधिकार और प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों को बनाती है। प्रारम्भ में सुप्रीम कोर्ट में एक मुख्य न्यायाधीश और 7 अन्य न्यायाधीश थे, लेकिन वर्तमान समय में 25 न्यायाधीश है।

सुप्रीम कोर्ट का प्रत्येक न्यायाधीश भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होता है। राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य मन्त्रियों से सलाह ले सकता है।

एक बार नियुक्त होने के बाद किसी भी न्यायाधीश को स्वेच्छा से त्यागपत्र या मृत्यु के अलावा, संसद के दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित प्रस्ताव से हटाया जा सकता है।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय एक साथ संघीय न्यायालय, अपील का सर्वोच्च न्यायालय, संविधान का संरक्षक और अभिलेख न्यायालय है उसे मौलिक अपीलीय और परामर्शीय (अनु. 143) क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय **'न्यायिक पुनरावलोकन'** का भी अधिकार रखता है। वह कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के निर्णयों की वैधता पर विचार कर सकता है और कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है। वह मूल अधिकारों के संरक्षक व राज्य तथा संघ सरकारों के बीच निर्णयकर्ता की भूमिका को निभाता है। **एम0 बी0 पायेली** कहते है **''भारत में न्यायिक पुनरावलोकन का क्षेत्र कार्य पालिका और व्यवस्थापिका की गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए और उनके नियमों को तार्किक बनाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को एक शक्तिशाली संस्था बनाने के लिए पर्याप्त है''**।[1]

राज्यों में एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था भी संविधान में की गई है जिसे क्षेत्रीय क्षेत्राधिकारी प्राप्त है।[2]

भारतीय न्यायिक व्यवस्था की समीक्षा :

हमारे देश में न्यायिक व्यवस्था को लम्बे समय से आलोचना का पात्र बनना पड़ा है। यह बड़े दुख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि हमारी न्याय व्यवस्था एक निर्धारित समय न्याय देने में असफल रही है। इसके मार्ग में अनेक बाधाएं है– न्यायालयों में अत्यधिक विवादों का होना, अदालतों का शुल्क अधिक होना। इस प्रकार भारत में गरीब व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा समय पर न्यायालयों द्वारा नहीं हो सकी है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

पूर्व मुख्य न्यायाधीश **पी0 एंन0 भगवती** ने कहा था **''न्यायिक व्यवस्था टूट रही है, लोग उस पर अपना विश्वास खो रहे है और न्यायिक व्यवस्था लगभग पूरी तरह से विकलांग होने के कगार पर है''**।[3]

---

1. एम0 वी0 पायेली : कॉस्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट ऑफ इण्डिया
2. संविधान का अनुच्छेद – 214
3. मुख्य न्यायाधीश पी0 एन0 भगवती : एड्रस एट दि कामन बेल्थ कान्फ्रेस, टाइम्स ऑफ इण्डिया, सन्डे सितम्बर 21, 1986

पूर्व मुख्य न्यायाधीश **डी0 ए0 देसाई** ने एक कदम आगे बढ़कर कहा कि **"वर्तमान न्यायिक व्यवस्था जन विरोधी है, न्याय विरोधी है और वादकारियों के लिए एक धोखा है"।**[1]

यह विचार गम्भीरता पूर्वक ध्यान देने योग्य है कि हमारी न्याय व्यवस्था अनेक कारणों से दोषपूर्ण है। यह अत्यधिक खर्चीली है, समय नष्ट करने वाली है और खासकर समाज के निम्नवर्ग के लिए अनुपयुक्त है। इस व्यवस्था की दो मुख्य खाँमिया है– प्रथम, अत्यधिक खर्चीली होना और दूसरी, न्याय मिलने में विलम्ब होना।

पिछले दो दशकों में तेजी से औद्योगीकरण हुआ है। समाज अधिक जटिल हो गया है परिणामस्वरूप अधिक कानून निर्मित किये गये है जिससे समाज के अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक भला हो सके। हमारी संसद ने कई नये कानून बनाये है, जिनमें गरीबों को भी सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय मिल सके। 1970 के बाद नये कानून जैसे उ0 प्र0 कर्ज निवारण अधिनियम, उ0 प्र0 ऋण अधिनियम, बन्धुआ प्रथा उन्मूलन अधिनियिम, भूमि सुधार कानून, कल कारखानों से सम्बन्धित अनेक अधिनियम पारित किये गये है। न्यायलयों में मुकदमों की संख्या बढ़ी है जो 12 लाख से ऊपर पहुंच चुकी है।

जिला अदालतों में इन मुकदमों का बढ़ना एक मुख्य समस्या है जिसके परिणाम स्वरूप लोगों में असन्तोष बढ़ा है। हत्या, बलात्कार, बहुओं का जलाया जाना, डकैती तथा बैंक डकैती मामलों में 2 से 4 तक या 6 वर्ष का समय ट्रायल कोर्ट में तथा प्रथम व द्वितीय अपीलीय अदालत में लग जाता है। प्रक्रिया बहुत मंहगी तथा धीमी है, जिसमें लोगों का विश्वास न्यायिक व्यवस्था में कम हो रहा है।[2]

न्यायिक व्यवस्था में न्यायाधीश, अधिवक्ता, लिपिकीय वर्ग वादकारी व पुलिस आदि शामिल होती है। वकील और न्यायालय का एक ही उद्देश्य है कि बिना किसी भय

---

1. न्यायाधीश डी0 ए0 देसाई : कास्टीट्यूशनल वैल्यूस एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविटीज, जनरल ऑफ दि बार काउन्सिल ऑफ इण्डिया बोल्यूम–9 (2), 1982 पृ0 268
2. आदित्य कुमार : लोक अदालत : इन्वोसन इन पब्लिक इन्ट्रस्ट लिटिगेशन, दि यू0 पी0 जनरल ऑफ पॉलिटिक्स साइन्स, जुलाई–दिसम्बर (सितम्बर) 1989, पृ0 26

या पक्षपात के न्याय मिले। न्यायालय और अधिवक्ता एक दूसरे के पूरक है, किन्तु वकील अपने हित में मामलों के समय को बढ़ाते रहते है, जो वाद को खर्चीला बनाते है। समय बर्बाद होता है छोटे–छोटे मामले लम्बे समय तक चलते रहते है।

विवेचनाधिकारी और गवाह न्यायालय की दो आँखे होती है, जिनके द्वारा वह घटनाओं को समझता है विश्लेषण करता है तथ्यों का पता लगाता है और साक्ष्य के आधार पर सत्य का पता लगाकर फैसले पर पहुंचता है। अगर विवेचना अधिकारी समय से ईमानदारी से ध्यानपूर्वक कार्य करें गवाह सही कहानी मुकदमे की न्यायालय के सामने प्रस्तुत करे तो निश्चित रूप से सत्य का पता लग जायेगा और सही न्याय हो सकेगा। अगर विवेचना अधिकारी और गवाह भाड़े के है तो वे विलम्बकारी प्रवृत्ति अपनाते है। अदालत में नहीं आते गवाह में भय पैदा करते हैं और अदालत असहाय हो जाती है। बार–बार कहने पर भी गवाह नहीं आते न विवेचना पूरी होती है। सामान्यतया पुलिस मामलों में विवेचनाधिकारी न्यायालयों में उपस्थित नहीं होते और दर्जनों बार मुकदमा इस कारण आगे बढ़ता रहता है। दीवानी मामलों में झूठे आधार पर गवाहों को पेश नहीं किया जाता है और बीस से तीस बार तक मामले की तिथि आगे बढ़ती रहती है। पुलिस के विवेचना अधिकारी भी यही प्रवृत्ति अपनाते है परिणाम स्वरूप हत्या, डकैती तथा अन्य संगीन मामले आदि छूट जाते है।

भारत में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। अशिक्षा अपराधों का मुख्य कारण है। उन्हें कानूनी प्रक्रियाओं का ज्ञान नहीं होता। अपराध करने के वाद अधिवक्ता उनके सामने तमाम समस्यायें पैदा करते है। समाज में घोर आर्थिक असमानता है। गरीब आदमी धन और जन बल के सामने असहाय है। उन्हें बांध्य होकर अमीरों से समझौता करना पड़ता है।

भारत एक विकासशील देश है, जो विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा है। इसकी आधे से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे है। समाज में व्याप्त

आर्थिक विषमता के कारण गरीबों, दलितों पिछड़ों और शोषितों के लिए न्याय पाना बड़ा दुष्कर कार्य है। ऐसी परिस्थितियों में चाहे जितने कानून बनाये जाये, न्याय के इच्छित लक्ष्य को तब तक प्राप्त करना कठिन है, जब तक कि इस उपेक्षित समूह में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत न की जाये, उनमें कानूनी जागरूकता न पैदा की जाये। यद्यपि संविधान की प्रस्तावना नागरिकों को आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक न्याय देने का वचन देती है लेकिन स्वतन्त्रता के 50 वर्षो के बाद भी इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है। गरीबों को कानूनी सहायता प्रदान करने का विचार उक्त संवैधानिक लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है।

हमारे देश की ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसके कारण आज आजादी के 55 वर्ष बाद भी देश के करोड़ों लोग शोषण, बेगारी और आर्थिक विपन्नता में अपना जीवन यापन कर रहे है। देश की कुल आबादी की 50 प्रतिशत महिलाएं सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संस्कार के कारण संकीर्ण एवं सड़ी गली विचारधारा में जी रही है और उनकी 95 प्रतिशत आबादी अभी अशिक्षित एवं गंवार है। उसी तरह से शोषित पीड़ित वर्ग की बहुत बड़ी आबादी भी अशिक्षित एवं गंवार है। साथ ही साथ जलालत की जिन्दगी जी रही है। समाज का एक वर्ग जो आर्थिक रूप से सम्पन्न है और सामन्ती प्रवृत्ति का है, वह अपनी बेगारी कराने हेतु शोषित पीड़ित निर्धन लोगों का सदैव विभिन्न हथकण्डों के तहत शोषण करता रहता है। न्यायिक प्रक्रिया जटिल एवं मंहगी होने के कारण उन गरीबों को विभिन्न मुकदमों में उलझाकर एवं तारीखें बढ़वा कर वह उन्हें विवश कर देता है कि वह गरीबी के कारण मुकदमा छोड़ दें और मजबूर होकर फिरं उनकी बेगारी व बंधुआगिरी में जुट जाये।

आजादी के बाद संविधान की रचना करते समय संविधान निर्माताओं ने देश के करोड़ों लोगों की दुर्दशा देखकर उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय दिलाने का

प्रयास किया। भारतीय संविधान में गतिशील समाज की आकांक्षायें एवं आवश्यकताएं परिलक्षित होती है। संविधान का लक्ष्य सामाजिक न्याय है। संविधान के तृतीय भाग और चतुर्थ भाग में उसका सभी दृष्टियों से विस्तारपूर्वक प्रावधान किया गया है। माननीय **के0 सुब्बाराव** ने कहा है कि **'सामाजिक न्याय अधिकारों का समूह है। अमीर तथा गरीब के बीच एक सन्तुलन चक्र है'**[1]**।** वहां पर डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा कि **''न्याय का सिद्धान्त यह मांग करता है कि व्यक्ति और समाज दोनों के दावों को ऐसे ढंग से समन्वित किया जाये कि अन्याय अव्यवहारिक सिद्ध हो जाये''**।[2]

जैसा कि संविधान में अन्तर्निहित है कि न्याय का सिद्धान्त वैयक्तिक तथा संवेगात्मक की अपेक्षा सामाजिक एवं बौद्धिक कहीं अधिक है। हमारी नयी समाज व्यवस्था का प्रथम सिद्धान्त सामाजिक अर्थ में हमें यह संकेत देता है कि मनुष्य के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार हो। इस प्रकार हमारे संविधान में व्यक्तियों की भलाई की अपेक्षा जन समान्यजन की भलाई को अधिक महत्व दिया गया है।

भारतीय संविधान में जहां मौलिक अधिकारों की व्यवस्था करके नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा की गई है, वहीं पर चतुर्थ भाग में नीति निर्देशक तत्वों की भी व्यवस्था की गई है। ताकि देश का सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़ा हुआ वर्ग उत्थान कर सके और उसे न्याय मिल सके। जहां संविधान अनु0–38 में राज्य को निर्देश देता है कि लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा, वहीं संविधान के 42वें संशोधन द्वारा अनु0–39 (क) को अंतः स्थापित किया गया है। जिसमें प्राविधान है कि **''राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यंवस्था इस प्रकार कायम करें कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह विशिष्टतः यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के**

---

1. के0 सुब्बाराव : सोशल जस्टिस एण्ड ला
2. संविधान सभा में डा0 अम्बेदकर का भाषण

अवसर से वंचित न रह जाये, उपयुक्त विधान या योजना द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।'' इसके अतिरिक्त निर्धनों को न्याय प्रदान करने हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 304 में भी अभियुक्तों को राज्य के व्यय पर विधिक सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। विकृत चित्त व्यक्ति कहीं न्याय के अवसर से वंचित न हो जाये इसलिए **'दण्ड प्रक्रिया संहिता'** की धारा 328 से 339 तक में उनके साथ उदार प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है।

इसी प्रकार से **'सिविल प्रक्रिया संहिता'** के आदेश 32 एवं 32 ए में भी अवयस्क बच्चों, विकृत चित्त व्यक्तियों एवं पारिवारिक विषय के वादों में सामाजिक न्याय प्रदान करने के उद्देश्य से विशेष प्राविधान किया गया है और आदेश 33 नियम1 8 में प्राविधान किया है कि **''केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें निर्धन व्यक्ति के रूप में वाद लाने की अनुमति दे दी है, मुफ्त कानूनी सेवायें उपलब्ध कराने के संबंध में अनुपूरक प्राविधान कर सकती है''**

उपर्युक्त प्राविधानों के होते हुए भी हमारी न्याय–प्रक्रिया की जटिलता के कारण सामाजिक न्याय के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पा रही थी जिससे समाज का उपेक्षित वर्ग न्याय पाने के अवसर से वंचित रह जाता था।

संविधान में व्यक्त इस संकल्प को पूरा करने के लिए सरकार के द्वारा अनेक कानूनी सहायता कार्यक्रम बनाये गये। संघीय सरकार के द्वारा एक केन्द्रीय कानूनी सहायता क्रियान्वयन समिति (CILAS) स्थापित की गई। इसके संरक्षक भारत के मुख्य न्यायाधीश थे। इस समिति का उद्देश्य गरीबों को निःशुल्क एवं त्वरित न्याय के तरीके खोजना था। प्रत्येक राज्य की राजधानी में **''कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड''** तथा प्रत्येक जिले में **''जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श समितियां''** गठित की गई जो प्रदेशीय बोर्ड के निर्देशन में कार्य करती थी। इनका अध्यक्ष जिला एवं सत्र न्यायाधीश होता था।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों को गति देने के लिए लोक अदालतों का आयोजन किया गया जिनमें न केवल विवादों का जल्दी निपटारा होता है बल्कि जनता को कानूनी साक्षरता भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता फोरम, विधिक साक्षरता कानूनी सहायता शिविर, पारिवारिक न्यायालय आदि के द्वारा भी कानूनी सहायता के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया।

उ0 प्र0 में कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड की स्थापना 1981 में की गई। 1987 में "विधिक सेवायें प्राधिकरण" अधिनियम भारतीय संसद के द्वारा पारित किया गया।

कानूनी सहायता योजनाओं के मुख्य रूप से यह उद्देश्य रखे गये है कि सामान्य व्यक्ति को उसके कानूनी अधिकारों एवं राज्य द्वारा चलायी जा रही कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी हेतु उसे विधिक साक्षरता की सुविधा दी जाये। इन अधिकारों का लाभ प्राप्त करने हेतु उन्हें निःशुल्क कानूनी सहायता और परामर्श भी उपलब्ध हो। साथ ही साथ न्याय को सस्ता एवं त्वरित करने के उद्देश्य से लोक अदालतों का आयोजन करके कुछ इस प्रकार के वादों का निस्तारण किया जाये जो विशेष तौर पर सामान्य व्यक्ति से सम्बन्धित हो और जिनका अतिशीघ्र निस्तारण जनहित में आवश्यक हो। विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति की **"एपैक्स बाडी"** को ऐसी योजनाओं को संचालित किए जाने के लिए निर्दिष्ट किया गया जिससे कानून के क्षेत्र में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं और बच्चों और समाज के अन्य निर्बल वर्ग के व्यक्तियों और ग्रामवासियों की सहायता हो और उन्हें लाभ पहुंचे।

उ0 प्र0 में सभी ऐसे व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता और परामर्श की सुविधा उपलब्ध है जिनकी वार्षिक आय रू0 25000/– तक है।

अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाओं और बच्चों आदि को बिना किसी आय की सीमा के यह सुविधा उपलब्ध कराये जाने का प्राविधान है।

कानूनी सहायता का आन्दोलन निरन्तर द्रुत गति से चल रहा है। पूर्व मुख्य न्यायाधीश **पी0 एन0 भगवती** के शब्दों में **''कानूनी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत स्थापित संस्थायें परम्परागत न्यायालयों से ज्यादा महत्वपूर्ण और आवश्यक है। यदि हम यह चाहते है कि गरीबी की बाध्यता के कारण कोई व्यक्ति न्याय से वंचित न रह जाये तो हमें कानूनी सहायता कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना होगा''**।

उत्तर प्रदेश भारत वर्ष का सबसे बड़ा राज्य है। उत्तर प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र प्रदेश के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। इसमें झाँसी, ललितपुर, जालौन, बांदा, हमीरपुर, महोबा तथा साहूजी महाराज (कर्बी), नगर जिले आते हैं। **हमीरपुर** बुन्देलखण्ड क्षेत्र के पिछड़े जिलों में से एक है। इस जिले की जनसंख्या 1466491 है। जिसमें कि 12,11,846 व्यक्ति ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में रहते है। अनुसूचित जाति की जनसंख्या 3,64,987 है। जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जाति के सदस्य 3,11,773 है। अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की संख्या यहां बहुत कम है।

यहां शिक्षा का प्रसार बहुत कम है, गरीबी के कारण लोग रोजी–रोटी की समस्या में उलझे रहते है। परिणाम स्वरूप शिक्षा बाधित होती है। आपस में लड़ाई झगड़े होते रहते हैं जिससे तनावपूर्ण वातावरण पाया जाता है।

''कानूनी सहायता कार्यक्रम'' की सही आवश्यकता ऐसे क्षेत्रों में ही है। प्रस्तुत अध्याय में हमीरपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में कानूनी सहायता कार्यक्रमों की भूमिका के अध्ययन को चुना गया है।

= = = =0= = = =

अध्याय– 1

कानूनी सहायता की संकल्पना

(अ) कानूनी सहायता की आवश्यकता

(ब) विधिक सहायता– एक मानवीय अधिकार

(स) कानूनी सहायता– एक कानूनी अधिकार

विधि की गरिमा न्याय से है। त्वरित एवं सस्ता न्याय सुनिश्चित किया जाना न्याय प्रणाली के समक्ष बड़ी समस्या एवं चुनौती है। जहां एक तरफ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य दलित गरीब वर्ग के लोगों की पहुंच न्यायालय तक आसानी से नहीं हो पाती, जिससे उन्हें सामाजिक न्याय उपलब्ध हो सके, वहीं दूसरी ओर न्यायालय में लम्बित वादों की संख्या में प्रत्येक वर्ष भारी मात्रा में वृद्धि होने के कारण न्याय प्रणाली के द्वारा शीघ्र एवं सस्ता न्याय उपलब्ध कराने की समस्या और अधिक चिन्ताजनक होती जा रही है। सुशिक्षित एवं साधन सम्पन्न व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए क्षमता रखते है, परन्तु न्याय प्राप्त करने में उन लोगों की समस्या विशेष रूप से है जो साधनहीन, निरक्षर, निर्धन एवं कमजोर है।

जिस समय हमारे पूर्वजों ने देश को जो संविधान दिया उसने **सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय सुलभ कराने** का संकल्प उठाया। संकल्प उठाना एक बात है, संकल्प का कार्यान्वयन प्रभावी रूप से होना दूसरी बात है। संकल्प हम बड़ी–बड़ी बातों का उठाते हैं किन्तु बहुधा हममें वह अन्तर्दृष्टि नहीं होती, वह कल्पना नहीं होती जिससे हम देख सके या परिकल्पित कर सके कि सपना कैसे साकार किया जाये। इसके बाद भी परिकल्पना को मूर्त रूप देना, सपने को साकार बनाना यह एक ऐसा चरण है जिसके लिए उत्साह, परिश्रम और कर्तव्य निष्ठा की परम आवश्यकता पड़ती है।

यहाँ हम जिस निःशुल्क कानूनी सहायता की बात कर रहे है वह निःशुल्क कानूनी सहायता उस निर्धन व्यक्ति की विधिक समस्या से जुड़ी है जो उसका हल अपनी निर्धनता के कारण नहीं ढूंढ पा रहा है। अक्सर यह देखा जाता है कि गरीब, निर्धन, असहाय और दुर्बल लोगों पर धनवान, शक्तिमान और बलवान हावी हो जाते है। एक ओर निर्धन की सबसे बड़ी कमजोरी होती है कि उसके पास धनवान से मुकदमा लड़ने के लिए धन नहीं

होता तो दूसरी ओर धनवान पक्ष के पास धन का बाहुल्य ही उसकी आन्तरिक मजबूती का कारण बन जाता है। अब जब दोनों पक्षों में इतनी असमानता है तो जाहिर बात है कि दोनों में से जो निर्बल पक्ष है वह मुकाबले के लिए मैदान में नहीं उतर सकेगा। जो दुर्बल पक्ष है उसमें न साहस है और न सामर्थ्य है कि वह मैदान में उतरे और अपने पर किये हुये अन्याय का प्रतिकार मांगे। दूसरी ओर धनवान पक्ष अपने धन के बल पर अपनी शक्ति के सामर्थ्य पर ताल ठोंकता रहता है। वह अच्छी तरह जानता है कि निर्धन और गरीब विपक्षी धन, शक्ति एवं विधिक अज्ञानता के कारण न तो मैदान में उतरने का साहस रखता है और यदि उसने साहस भी किया तो सामर्थ्यहीन एवं विधिक अज्ञानता के कारण उसकी पराजय निश्चित ही होगी।

कानूनी सहायता की आवश्यकता :

एक सामान्य नागरिक के मस्तिष्क में यह प्रश्न प्रायः उठता है कि जब देश में न्यायालयों, न्यायिक अधिकारियों और अधिवक्तागण का जाल सा फैला है तब निःशुल्क कानूनी सहायता या लोक अदालत की क्या आवश्यकता है ? उसे आंदोलन का रूप देने की क्या आवश्यकता पड़ गयी। ? इसका उत्तर पाने के लिए कानून और न्याय के उद्देश्य की ओर दृष्टिपात करना पड़ेगा। उस युग में जाना पड़ेगा जब मानव ने बर्बरता और स्वच्छन्दता का जीवन त्याग कर समाज में रहने का निश्चय किया था, समाज बनाया और उसमें रहने का अभ्यस्त हुआ। समाज मनुष्यों का समूह है इनके बीच शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए, समाज के हर सदस्य को उसके कर्तव्यों का स्मरण कराने के लिए छोटे–छोटे अलिखित नियमों के रूप में कानून बने और उनके पालन करने के लिए दण्ड की व्यवस्था हुई। यहीं कानून और न्याय की नींव पड़ी।

"आवश्यकता आविष्कार की जननी है" के सिद्धान्त पर कालान्तर में नित्यप्रति की आवश्यकताओं में, समाज को दृढ़ता प्रदान करने के लिए, समाज के सदस्यों की भलाई को दृष्टिगत रखते हुए, नये–नये नियमों और कानूनों का आविष्कार हुआ। आरम्भ से ही इन अलिखित नियमों या कानूनो का उद्देश्य समाज के सदस्यों की भलाई को दृष्टिगत रखते हुए लागू करना था और इन नियमों का पालन न करने वालों को दण्डित करना था। पुरातन कालीन भारत में यही समाज छोटे बड़े राज्यों के रूप में विकसित हुए और कुछ हेर फेर के साथ न्याय वितरण की यही प्रक्रिया, यही व्यवस्था उस काल मे बनी रही।

सामन्तशाही युग में भी कानून अलिखित थे। कभी–कभी राजज्ञा के रूप में या उस काल के विद्वानों द्वारा उस काल की व्यवस्था को लिपिबद्ध करने में लिखित नियमों का विवरण मिलता है, परन्तु व्यवस्था वही थी राजा स्वयं के विवेकानुसार, सुनीति और शुद्ध अन्तःकरण के नियमों का पालन करते हुए न्याय का वितरण करता था। उन निर्णयों में समाज द्वारा मान्य धार्मिक नियमों का भी समावेश रहता था। न्यायाधिकारी को, चाहे वह स्वयं राजा हो या उसके द्वारा नामांकित अधिकारी, ईश्वर का रूप माना जाता था और उसकी लोकप्रियता की कसौटी उसकी निष्पक्षता और न्यायप्रियता थी।

आरम्भ से ही आध्यात्मवादी देश होने के नाते ईश्वर के इस रूप में जनता की अपार आस्था थी। न्याय सर्वोच्च था, स्वयं राजा या अन्य न्यायधिकारी भी इसके आगे नतमस्तक थे। अमीर या गरीब राजा या रंक सभी बराबर थे। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है, जहां न्यायाधिकारियों को न केवल अपने परिवार के सदस्यों और परिचितों के विरूद्ध बल्कि स्वयं अपने विरूद्ध भी निर्णय देने पड़े है। इस काल में न्याय निःशुल्क था, सुलभ था और प्रक्रिया सरल थी। कोई नागरिक किसी समय बिना हिचक, बिना किसी अन्य

की सहायता के निःशुल्क न्याय पाने के लिए न्याय का दरवाजा खटखटा सकता था। जनता में ईश्वर का, भले–बुरे का, समाज की प्रताड़ना का और दण्ड का भय था। अतः विवाद कम थे। कालान्तर में गांव–गांव में पंचायतों का उद्भव हुआ जो छोटे–छोटे मामलों को निपटाने में प्रमुख भूमिका निभाती थीं।

काल परिवर्तनशील है। युग बदले, समाज बदले। बदले परवेश में समाज की मान्यताएं बदलीं। विज्ञान के नित नये चरणों से हर चीज को देखने परखने का दृष्टिकोण बदला। मनुष्य का झुकाव भौतिकवाद की ओर हुआ और आपसी विश्वास की डगमगाहट से समाज की मार्यादाएं और आवश्यकताएं बदली। आध्यात्म वाद की जगह भौतिकवाद और **''स्वयंवाद''** प्रस्फुटित होने लगा। जिसमें आम जनता में बेईमानी की प्रवृत्ति बढ़ी और ईश्वर में, नैतिकता में आस्था कम हुई। आपसी सद्भाव से या समाज के बड़े बूढ़ों के हस्तक्षेप से विवादों को सुलझाने की जगह सच या झूठ बोलकर त्वरित लाभ को वरीयता दी जाने लगी। नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों की परिभाषाएं बदली और इनकी सीमाएं बढ़ी। सामाजिक नियमों को, जो नागरिक को बांध रखते थे और उन्हें उच्श्रृखंल नहीं होने देते थे, ठोकर मार दी गयी। सहनशक्ति का नितान्त अभाव हो गया। नये प्रकार के विवादों का जन्म हुआ जो कालान्तर में बढ़ते ही गए। नागरिकों को मर्यादाओं में बांध रखने के लिए, उन्हें आवश्यक सुख सुविधाएं मुहैया करने के लिए परस्पर कर्तव्यों और अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करने के लिए, राजकोष में धन आने के लिए नये–नये नियमों और कानूनों का समावेश हुआ एवं कानून पेचीदें होते गये। आवश्यकतानुसार न्यायाधिकारीगणों की संख्या में वृद्धि हुई नियम और कानून इतने पेचीदे हो गये कि समांन्य नागरिकों के लिए उन्हें याद रख पाना या पालन कर पाना असंभव सा हो गया। अतः कानून लिपिबद्ध हुए और इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि कोई ऐसा वर्ग हो जो सभी कानूनों को, उनकी पेचीदीगियों को समझे। इस

आवश्यकता ने जन्म दिया एक नये वर्ग को जो अधिवक्ता या वकील के नाम से जाना गया। इस वर्ग ने सामान्य जनता को कानूनी सलाह देना और उनकी ओर से विवादों का निपटारा करना, अपनी जीविका बनायी। जीविका शब्द ही यह दर्शाता है कि यह वर्ग सलाह देने के लिए या मुकदमे करने के लिए शुल्क लेता था।

इतना ही नहीं, समाज के बढ़ने, जनसंख्या के बढ़ने नयी–नयी परिस्थितियों से निपटने के लिए, नये–नये कानून बनने से अदालतें बढ़ी। न्यायाधिकारीगण और उनके अमले बढ़े और इन सबसे राजकोष पर भार बढ़ा। सिद्धान्ततः निःशुल्क न्याय वितरण राज्य का सर्वप्रथम कर्तव्य माना गया है, परन्तु बढ़ते खर्च की अंशतः पूर्ति के लिए और झूठे मुकदमों पर अंकुश लगाने के लिए आरम्भ में नाम मात्र का न्याय शुल्क लगा। अतः जहां पुरातन काल में न्याय पाने के लिए कुछ नहीं खर्च करना पड़ता था वही अब एक सामान्य नागरिक को न्याय शुल्क और अधिवक्ता की फीस के रूप में कुछ न कुछ व्यय करना आवश्यक हो गया। कालान्तर में मंहगाई की मार व अन्य समाजिक कारणों ने अधिवक्तागण को फीस बढ़ाने पर मजबूर किया और राज्य ने न्याय शुल्क में अच्छी खासी बढ़ोत्तरी कर दी जिससे गरीब, असहाय और अंकिचन को न्याय पाना तारे तोड़ लाने जैसा लगने लगा। यहां तक कि एक शिक्षित नागरिक के लिए भी तभी कानून जान पाना मुश्किल हो गया। इसके अलावा समृद्ध लोगों को अपने गरीब प्रतिद्वन्द्वी को बरबाद करने का एक अचूक नुस्खा हाथ लग गया। उनके विरूद्ध मुकदमा कर दो, किसी अपराधिक मामले में फसा दो, दो–चार साल दौड़ाओ। यदि प्रतिद्वन्द्वी जीत भी जाये तो कंगाल होने के बाद। अतः समय की इस आवश्यकता ने जनता व राज्य का ध्यान ऐसे व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता दिलाने की ओर आकृष्ट किया।

पश्चिमी देशों में तो बहुत पहले से कानूनी सहायता की महत्ता का भान हो गया था। **युनाइटेट स्टेट आफ अमेरिका** के **सुप्रीम कोर्ट** ने बहुत पहले से ही इस सिद्धान्त को मान्यता दी थी कि आरक्षित अभियुक्त को, जो अपनी रक्षा के लिए वकील न कर पाया हो राज्य की ओर से, राज्य के खर्चे पर कानूनी सहायता दी जानी आवश्यक है। **पौलेण्ड** में **सेन्ट्रल सोसल इंश्योरेन्स कोर्ट** में और **फ्रांस** में **फैडरल सोशल कोर्ट** ने भी इसकी महत्ता को स्वीकारा और इस सिद्धान्त को मान्यता दी।

भारत भी इसमें पिछड़ा नहीं। संविधान में इसकी पूर्ण व्यवस्था है कि किसी व्यक्ति को **'विधि के समक्ष समाता'** से अथवा **'विधियों के समान संरक्षण'** से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा, परन्तु यदि ऐसा व्यक्ति या अभियुक्त आरक्षित है तो समानता का उलंघन तो होगा ही। अतः संविधान की धारा 39 ए में राज्य की नीति के निर्देशक तत्व के अन्तर्गत असहाय और जरूरतबन्दों को निःशुल्क कानूनी सहायता देने का निर्देश दिया गया है। देश के विभिन्न राज्यों ने इस सिद्धान्त को किसी न किसी रूप में अमलीजामा पहनाया है। परन्तु संभवतः उसे पूर्ण नहीं कहा जा सकेगा। इसी नीति निर्देशक तत्व के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में भी **''उत्तर प्रदेश कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड''** की स्थापना लखनऊ में हुई और उसकी स्थानीय शाखाएं राज्य के प्रत्येक जनपद में जिला जज के सभापतित्व में है।

विधि आयोग ने अपनी चौदहवीं रिपोर्ट में आरक्षित अभियुक्त को केवल सत्र परीक्षणों में कानूनी सहायता की संस्तुति की थी, परन्तु 48वीं रिपोर्ट में यह संस्तुति की, कि इस प्रकार की सहायता सभी प्रकार के अपराधिक मामलों में दी जानी चाहिए। यह दुख का विषय है कि अब तक केवल पहली संस्तुति ही मानी गयी है और दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 304 के अन्तर्गत केवल सत्र परीक्षणों में ही ऐसे अभियुक्त को, जिसके पास वकील

करने के साधन न हों, राज्य की ओर से कानूनी सहायता दी जाती है। परन्तु ऐसे अपराधिक मामले जो सत्र परीक्षण की श्रेणी में नहीं आते और जिनकी संख्या सत्र परीक्षणों के मुकाबले में सदैव अधिक होती है, राज्य के खर्च पर कोई कानूनी सहायता मान्य नहीं है। स्पष्ट है कि संविधान की धारा 39 ए में दिए गए निर्देशों का अभी तक पूर्ण पालन नहीं हो पाया है।

व्यवहार वादों की स्थिति तो और भी अच्छी नहीं है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 33 के अन्तर्गत अकिंचन व्यक्ति केवल न्याय शुल्क में राहत पा सकता है, किन्तु उसे निःशुल्क कानूनी सहायता कोई जैसी चीज उपलब्ध नहीं है।

विधिक सहायता– एक मानवीय अधिकार :

प्रत्येक मानव सामाजिक व्यवस्था में एक सदाचार व्यवस्था होती है और कानूनी व्यवस्था होती है। हर समाज के अपने सदाचार नियम होते है और अपनी कानूनी व्यवस्था होती है। सादाचार नियमों के रक्षोपाय है– संबंधित समाज और व्यष्टि की अन्तरात्मा द्वारा स्वीकृत नियम, विनियम और रूढ़ियाँ जबकि कानूनी व्यवस्था की मंजूरी संबंधित राज्य के कानून बनाने वाले तंत्र के द्वारा समय–समय पर बनाये गए कानूनों द्वारा राज्य को दी गई शक्ति से मिलती है। हर समाज सदाचार एवं कानूनी मूल्यों के मानदण्ड निर्धारित करता है। वे मूल्य स्थैतिक नहीं हो सकते बल्कि समाज की सतत बदलती आवश्यकताओं के साथ–साथ बदलते रहने चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि संकल्पना, प्रवृत्तियां, विश्वास और व्यवहार के तरीके त्यों–त्यों निरन्तर बदलते रहते है ज्यों–ज्यों समाज मनुष्य की खुशी की तलाश में आगे बढ़ता जाता है। दुर्भाग्यवश, कालान्तर में मूल्यों में भारी बदलाव आया है। वे सभी वांछनीय नहीं है, क्योंकि समाज व्यक्ति की हैसियत उसके भौतिक साधनों से आंकता है चाहे वे चीजें उसने कैसे भी हासिल की हों, न कि उसके ज्ञान, उपलब्धियों और समाज सेवा के आधार पर। यही लालच की प्रवृत्ति और दूसरे मनुष्यों के प्रति उदासीनता समाज

के कमजोर वर्गों के उन लोगों द्वारा शोषण के लिए प्रधानतः जिम्मेदार है जो लालच के रोग से पीड़ित है। यह सामाजिक मुद्दा हाल के दिनों में एक प्रमुख तत्व बनकर सामने आया है और कुछ क्षेत्रों में तो इस तत्व ने विकराल रूप धारण कर लिया है। हालांकि यह सच है कि आमतौर पर अमीर और गरीब के बीच सदियों से संघर्ष रहा है। यह संघर्ष महत्वपूर्ण बन गया है क्योंकि समाज के कमजोर वर्ग अब समाज को अंखड नहीं मानता। इसका कारण है गरीबों को कुछ देने में समाज का नाकामयाब रहना। इस प्रकार एक ही समाज के सदस्यों में वर्तमान विराट आर्थिक विषमताओं को हटाकर संतुलन कायम करने के लिए कल्याण विधानों के माध्यम से हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है। यह सामाजिक मसला अब भिन्न–भिन्न मात्राओं में विश्वव्यापी बन गया प्रतीत होता है तथा सांविधानिक शासनों के अन्दर संघर्ष का और ऐसे शासनों और अन्य शासन प्रणालियों द्वारा शासित दूसरे लोगों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का निचोड़ है। यह संघर्ष समाज और राज्य में किए गए अन्तर के फलस्वरूप आधुनिक काल में महत्वपूर्ण बन गया है। समाज को व्यक्तिगत माना जाता है जबकि राज्य को सार्वजनिक समझा जाता है और चूंकि राज्य को किसी भी शासन प्रणाली के अधीन समाज की सेवा करनी चाहिए इसीलिए उसे अपने आपको समाज के अर्थात् उन लोगों के अधीनस्थ मानना चाहिए जिनके लिए उसका अस्तित्व है। किन्तु कठिनाई तब पैदा होती है जब समाज का एक वर्ग राज्य के भौतिक संसाधनों का उनका उचित हिस्सा देने से वंचित करने के लिए राज्य की शक्ति का दुरूपयोग करता है और उसके द्वारा समाज के सभी सदस्यों में ऐसे संसाधनों का समान वितरण नहीं होने देता।

न्याय एकदम नैतिक एवं विधिक संकल्पना है। नैतिक इस अर्थ में, कि मनुष्य के हर कार्य से स्वयं वही प्रभावित नहीं होता बल्कि उसके साथी और पर्यावरण भी प्रभावित होता है इसलिए उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके कार्य से दूसरों को नुकसान न पहुंचे।

इसलिए उसका यह नैतिक कर्तव्य है कि वह बराबर यह ध्यान रखे कि वह अपने साथी मनुष्यों के प्रति न्यायसंगत और ऋजु तरीके से कार्य करे। सभ्यता से जुड़ी यह सदियों पुरानी संकल्पना है। अभिप्राय यह है कि कोई व्यक्ति अपने कृत्य या व्यवहार से अपने साथी मनुष्यों को चोट या नुकसान पहुंचाता है तो उसे पीड़ित की प्रतिपूर्ति करके उसकी शिकायत दूर करनी चाहिए। इस प्रकार क्षतिग्रस्त साथी प्राणी को उस व्यक्ति के विरूद्ध उपचार प्राप्त है तो उस क्षति के लिए जिम्मेदार है। सदाचार और शुद्ध अंतःकरण के अर्थ में अथवा सदाचार मानदण्डों के अनुरूप यह उससे टकराता है। जिसे रोमन वासी नेचुरली अर्थात् नैसर्गिक विधि कहते है। इसलिए नैसर्गिक विधि की विचारधारा के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ सदाचार मानदण्डों का अस्तित्व पहले से कल्पित है। जिनसे हर मानव प्राणी आबद्ध है और उनके अनुसार उसे अपना आचरण करना चाहिए। न्याय का यह अधिकार एक व्यष्टि को इसलिए मिलता है कि वह मानव प्राणी है। सभ्य समाज की उत्पत्ति से लेकर मानव जाति न्याय की भावना के प्रति हमेशा जागरूक रही है और उसके लिए बराबर संघर्षरत रही है। **अतः न्याय के अधिकार हर मनुष्य में अन्तर्निहित है क्योंकि वह सभ्य समाज का एक सदस्य है। अतः इसे मानव अधिकार कहा जा सकता है।**[1]

कानूनी अर्थ में न्याय से अभिप्रेत है कानून के अनुसार न्याय। अतः कानून सभ्यता की आधारशिला है और सामाजिक निर्माण एक उपकरण है। **'विधि सम्मत शासन'** पर आधारित प्रत्येक शासन प्रणाली, चाहे उसका कोई भी रूप हो, अपने नागरिकों को यह आश्वासन देती है कि प्रत्येक को न्याय मिलेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब सभ्य समाज के सदस्य हिंसा समाप्त करने के लिए राजी हो जाते है और अपने झगड़ों और मतभेदों को राज्य की स्वतन्त्र निष्पक्ष न्याय व्यवस्था के माध्यम से दूर करते है तो यह वचन रहता है कि हर नागरिक को उस व्यवस्था तक पहुंचने का हक होगा और उसे एक युक्तियुक्त समय

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश ए० एम० अहमदी द्वारा 8 नवम्बर 1992 में "ला एशिया संगोष्ठी में दिये गये भाषण से" प्रकाशित विधिक सहायता संवाद पत्र अक्टूबर 1992 मार्च 93

के भीतर उसके जरिये न्याय मिलेगा। एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था के लिए यह जरूरी है। कि उसके सदस्य इस बात के लिए राजी हों कि वे विधि शासन से शासित हों और विधि के जरिये शासन सुनिश्चित करने के लिए एक ठोस न्याय करने वाली व्यवस्था हो जहां हर सदस्य अपनी व्यथा दूर करने के लिए पहुंच सके। अतः अभिप्राय यह है कि हर नागरिक न्याय तक पहुंच सके ताकि वह अपने अधिकार का प्रयोग कर सके। अतः हर सभ्य समाज यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि न्यायतंत्र के दरवाजे सबके लिए खुले रहें चाहे वह अमीर हो या गरीब। यही प्रकट कारण है कि जिन लोगों को न्याय तक नहीं पहुंचने दिया जाएगा वे अपने साथ किए गए अन्याय के निवारण के लिए न्यायिकेतर पद्धतियां खोजने के लिए बाध्य हो जाएगें। मानव ह्रदय में अन्याय की भावना ही सबसे ज्यादा है। यदि न्याय तंत्र गरीबों की जरूरतों को पूरा करने में नाकामयाब रहा और गरीबों के खिलाफ रवैया अपनाता रहा तो इस व्यवस्था में गरीबों को विश्वास ही न रहेगा और वे अपने झगड़े सुलझाने के लिए न्यायिकेतर साधनों को सहारा लेने लगेगें। यदि न्याय व्यवस्था इस तरह काम करेगी कि उसके दरवाजे गरीबों के लिए बन्द हो जाए तो अमीर इसका उपयोग गरीबों को प्रताड़ित करने और दबाने के लिए करेंगे। यह तंत्र कितना भी सराहनीय हो, यदि इसे समाज के एक बड़े वर्ग से समर्थन नहीं मिला तो इसे अन्ततः नामंजूर कर दिया जाएगा। यह अन्देखा नहीं किया जा सकता। चूंकि प्रत्येक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में, चाहे लिखित संविधान हो या नहीं, कानून अपनी शक्ति और प्राधिकार जनता से हासिल करते है, इसलिए न्यायतंत्र का अस्तित्व भी जनता की इच्छा पर निर्भर करता है। आज लोकतांत्रिक प्रणाली के अधीन अधिकांश देश कल्याणकारी राज्य और समतावादी समाज बनाने का प्रयास कर रहे है। न्यायमूर्ति ए० एम० अहमदी का मत है **''विधि शासन द्वारा शासित कल्याणकारी राज्य में यदि न्यायतंत्र को अपनी विश्वसनीयता नहीं गंवानी है तो प्रत्येक व्यक्ति को जो**

गरीब हो या अमीर, न्याय तक पहुंचने का हक होना चाहिए। अतः राज्य द्वारा लोगों को दी गई व्यवस्था के माध्यम से न्याय पाने का अधिकार एक बुनियादी मानव अधिकार है। यह सबसे महत्वपूर्ण मानव अधिकार है क्योंकि इसके बिना अन्य सब अधिकार निरर्थक हो जायेंगे''।[1] अतः हर व्यक्ति को न्याय पाने का पूर्ण अधिकार है। एक कल्याणकारी राज्य में निर्धनता की वजह से किसी भी व्यक्ति को इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। कल्याणकारी राज्य का यह कर्तव्य है कि वह सामाजिक न्याय के माध्यम से वैयक्तिक दुख का निवारण करे। अतः कानूनी मदद न्याय पाने के बुनियादी मानव अधिकार का कारगर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय तक पहुंचने का एक साधन है। राज्य स्पष्टतः इस बात के लिए बाध्य है वह न्याय व्यवस्था तक पहुंचना सुनिश्चित करने के लिए गरीबों को विधिक सहायता प्रदान करे।

''**विधिक सहायता**'' पद में ''**सहायता**'' शब्द से अनुग्रह की गंध आ सकती है किन्तु निःशुल्क विधिक सहायता खैरात या अनुग्रह नहीं है बल्कि यह सुनिश्चित करने की राज्य की बाध्यता की पूर्ति है कि हर नागरिक को न्याय तक पहुंचने का हक है और न्याय तक पहुंचना एक बुनियादी हक, मानव अधिकार है, और विधिक सहायता उस बुनियादी मानव अधिकार को पाने का एक परिकरण है। यह एक सामाजिक अधिकार है न कि अनुग्रह या कृपा। अतः कुछ सामाजिक संगठन इसे विधिक सहायता कार्यक्रम के बजाय विधिक सेवा कार्यक्रम कहना पंसद करते है लेकिन चूंकि विधिक सहायता पद सर्वाभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है, और भारत के संविधान में भी अनुच्छेद 39 क में इस पद का उपयोग किया गया है इसलिए इसी पद का उपयोग करना सुविधाजनक होगा। लेकिन इसमें कोई शक नहीं होगा कि विधिक सहायता देकर राज्य अपने नागरिकों के प्रति अपनी बाध्यता की पूर्ति ही करता है और कोई अनुग्रह नहीं करता।[2]

---

1. न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी : 'ला एशिया सेमिनार' 1992 में
2. न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी : 'ला एशिया सेमिनार' 1992 में

साधारणतया, अनुभव से पता चला है कि सभी विकासशील देशों में एक वर्ग के रूप में गरीब अनेक कारणों से समृद्धों और संस्थापितों के हाथों अन्याय के शिकार होते है–हालांकि उनके फायदे के उद्देश्य से कानून विद्यमान है। इसका कारण यह है कि निरक्षरता और गरीबी के कारण गरीब को कम जानकारी होती है और इसीलिए वे अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिए काफी आश्वस्त नहीं होते और अपने कानूनी अधिकारों को न जानने या उनके प्रति जागरूक न रहने के कारण वे अपने प्रतिपक्षियों की हेराफेरी के शिकार आसानी से हो जाते है। उन्हें प्रताड़ित होने का डर रहता है और इसलिए वे समृद्ध लोगों और निहित स्वार्थों के खिलाफ अपने अधिकारों का प्रयोग करने के लिए अनिच्छुक रहते है। प्रशासनतंत्र का सहयोग न मिलने से उनके कष्ट और भी बढ़ जाते है। इसलिए वे सम्पूर्ण प्रक्रिया से ही घबराते है।

इस देश में स्वाधीनता से ठीक पहले सामाजिक स्थिति यह थी कि समाज में अलग–अलग श्रेणियों की विषमताएं थी और आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि सम्पदा कुछेक हाथों में सिमटी हुई थी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पहली चुनौती थी इस सामाजिक आर्थिक असंतुलन से निपटना। भारत के संविधान की उद्देशिका में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा विधियों के समक्ष समता और विधयों के समान संरक्षण की बात कही गई है। मानव अधिकारों की सर्वाभौम घोषणा (1948) द्वारा मान्य मानव अधिकारों में से बहुत से संविधान में मूल अधिकार नामक भाग–3 में तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्व नाम भाग–4 में अंकित है। स्वाधीनता के तुरन्त बाद सरकार ने निःशुल्क कानूनी सहायता की जरूरत महसूस की। इस मसले की छानबीन करने के लिए कुछ समितियां और आयोग गठित किए गए। यद्यपि इस प्रक्रिया में कुछ समय लगा फिर भी अंततः संविधान में अनुच्छेद **39क** का समावेश किया गया। वह इस प्रकार हैः–

"राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करें कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा"।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एक समिति **विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति का गठन** 1980 में किया गया और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को इसका प्रधान संरक्षक बनाया गया तथा उच्चतम न्यायालय के एक पीठासीन न्यायाधीश को इसका कार्यकारी अध्यक्ष बनाया गया ताकि वह कानूनी सहायता के कार्यक्रम के कार्यान्वयन की देखरेख कर सके। प्रत्येक राज्य से विधिक सहायता स्कीम को कार्यान्वित करने के लिए गांव या तालुका स्तर पर, जिला स्तर पर, और राज्य स्तर पर अपनी विधिक सहायता समितियां गठित की है। इस प्रकार 'विधिक सहायता तंत्रजाल' गांव से लेकर राज्य स्तर तक एवं केन्द्र के स्तर तक फैला हुआ है और विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति स्कीमों के कार्यान्वयन की देखरेख और पर्यवेक्षण करेगी। केन्द्र सरकार ने विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 भी बनाया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विधि शासन द्वारा शासित हर संभव समाज में न्याय करने वाले तंत्र को एक महती भूमिका अदा करनी होती है। एक सांविधानिक शासन में तो उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है जहां उससे व्यक्ति के बीच ही नहीं बल्कि एक नागरिक और राज्य के बीच तथा कभी–कभी एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संविवादों के बारे में कानूनों का निर्वचन और प्रवर्तन दोहरी भूमिका अदा करना अपेक्षित होता है। भारत जैसे देश में, जहां 'बिल आफ राइट्स' (अधिकार पत्र) लिखित रूप में है, उसे व्यष्टियों के मूल

अधिकारों की रक्षा करनी होती है तथा यह सुनिश्चित करना होता है कि कार्यपालिका और विधायिका अपनी सीमाओं का अतिलंघन न करे। न्यायपालिका तब तक सभी संबंधित पक्षों को संतुष्ट करने के लिए इस दायित्वपूर्ण कार्य का निर्वहन नहीं कर पायेगी जब तक कि कानूनी पेशे के सदस्य उसकी ठीक ढंग से सहायता न करे। व्यवस्था के अभिन्न अंग होने के नाते कानूनी पेशे के सदस्यों का उत्तरदायित्व न्यायपालिका से कम नहीं है। इस प्रकार विधि शासन के शासित स्वतन्त्र समाज की दो पूर्व अपेक्षाएं है, प्रथम स्वतन्त्र न्यायपालिका जो आन्तरिक और बाहरी दबाओं से मुक्त हो, तथा दूसरी, एक मजबूत किन्तु जिम्मेदार अधिवक्ता समूह़ (Bar)। लेकिन यदि समाज के एक बड़े वर्ग को न्याय–व्यवस्था तक नहीं पहुंचने दिया गया तो स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्याय करने वाला तंत्र निरर्थक हो जाएगा। इसलिए इस पेशे के सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे यह देखें कि किसी नागरिक को न्याय से इसलिए वंचित न रहना पड़े कि उस न्याय तंत्र तक पहुंचने के साधन उसके पास नहीं है। इसके लिए निम्नाकिंत बातें आवश्यक हैः–

प्रथम : विधिक जागरूकता पैदा करने के लिए विधिक साक्षरता को बढ़ावा देना।

द्वितीय : ग्रामीण क्षेत्रों में विधिक सहायता शिविर इस दृष्टि से लगाना कि उनके झगड़े उनकी दहलीज पर ही सुलझा दिए जाये अर्थात ग्रामीण जनमानस की दहलीज पर कानूनी सेवा को ले जाने का कार्यक्रम।

तृतीय : दोनों पक्षों को लोक अदालत के अनौपचारिक मंच पर बातचीत के लिए लाकर न्यायालयों में लम्बित मामलों को तय करने के लिए लोक अदालत आयोजित करना।

चतुर्थ : न्यायालयों के माध्यम से विचारपूर्वक समझौतों को प्रोत्साहित करना।

पंचम : विश्वविद्यालयों को 'विधिक सहायता क्लीनिक' आयोजित करने के लिए प्रोत्साहित करके छात्रों में विधिक सहायता कार्यक्रम के बारे में जागरूकता उत्पन्न करना।[1] इनके आलावा उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में 'लोक हित मुकदमा एकांशों' की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया है, ताकि वे न्यायालयों में लोक हित मुकदमे की पैरवी कर सके। इनमें मुकदमे से पूर्व समझौतों पर बल दिया जाता है। सभी स्तरों पर विधिक सहायता समितियों को निर्देशित किया गया है कि जब कोई पक्ष विधिक सहायता और सलाह के लिए उनके पास आए तो वे दूसरे पक्ष को बुलाकर शुरू में ही विवाद निपटवा दें। कुछ स्वयं सेवी संगठन भी दो विरोधी पक्षों में समझौता कराने में सहयोग प्रदान करते हैं। कुटुम्ब परामर्श केन्द्र भी खोले गए है जो कुटुम्ब विवादों को, विशेषकर वैवाहिक विवादों को विकृत रूप धारण करने से पहले सम्यक् परामर्श प्रदान करेंगे।

लोक अदालतें एक अद्वितीय अभिनव प्रवर्तन है जो न्यायपालिका की देन है। इसका उद्देश्य न्यायपालिका का अनुपूरक बनना है न कि उसे उखाड़ना। यह इस विश्वास पर आधारित है कि न्यायालयों के समक्ष सभी मामलों में न्यायिक निर्णय जरूरी नहीं है। बहुत से मामले, गलतफहमी, अहम भाव का टकराव, जानकारी का अभाव आदि के कारण होते है, उनमें कोई कानूनी मुद्दा नहीं होता। ऐसे मामले अनौपचारिक मंच पर आसानी से सुलझाए जा सकते हैं। वहां पक्षकार पैनल के सदस्यों की मदद से बातचीत का मौका पा सकते हैं। पैनल में सेवानिवृत्त न्यायाधीश तथा वकील और सामाजिक कार्यकर्ता होते है।

बड़े कष्ट के साथ यह स्वीकार करना होगा कि हमारा न्यायतंत्र उचित समय के भीतर न्याय प्रदान करने में नाकामयाब रहा है। अब सभ्य समाज के सदस्य राज्य द्वारा सुलभ कराए गए एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष तंत्र के माध्यम से अपने झगड़े सुलझाने के लिए राजी

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश एम0 एम0 अहमदी द्वारा 8 नवम्बर 1992 को "ला एशिया सोसायटी" में दिये गए भाषण से प्रकाशित (विधिक सहायता संवाद पत्र) (अक्टूबर 92 मार्च 93)

है तो इस प्रस्थपना के साथ एक वचन भी जुड़ा हुआ है कि उनका झगड़ा उचित समय के भीतर सुलझा दिया जायेगा। लेकिन हमारे न्यायालय मुकदमों की फाइलों से ठसाठस भरे पड़े है। जिसकी वजह से मामलों के निपटारे में असाधारण देरी होती है। देरी मुकदमों को बढ़ावा देती है क्योंकि बहुत से पक्षकार अयोग्य अन्तरिम आदेश पाने की आशा से अमान्य दावे लेकर न्यायालय में आते है और फिर वर्षो उसके फल का आनन्द लेते रहते है। चूंकि गरीब आदमी अनिश्चित समय तक इन्तजार नहीं कर सकता इसलिए लोक अदालतों के परिकरण के जरिए उनके झगड़े सुलझाने में उसकी मदद करने की कोशिश की जानी चाहिये।

दूसरी अड़चन है मुकदमें का भारी खर्चा। कालान्तर में न्यायालय शुल्क और वकीलों की फीस में बढ़ोत्तरी हो गई है। ऊँची लागत से गरीब आदमी का न्याय पाने का अधिकार प्रभावित होता है। समता का मूल अधिकार मात्र कष्टदायक भ्रम बन जाता है। विधिक सहायता सेवा गरीब को वित्तीय मदद देकर तथा अच्छी वृत्तिक सेवा देकर गरीब और अमीर पक्षों के आर्थिक असंतुलन को ठीक करने की कोशिश करती है। संक्षेप में, यह 'विधियों के समक्ष समता' के संविधान के वचन को पूरा करने की कोशिश करती है।

विधिक सहायता स्कीमों के कार्यान्वयन से सबसे गरीब लोगों की सेवा की जाती है जबकि अमीर लोग हमेशा न्याय तक पहुंच सकते है। फिर भी यह महसूस किया गया है कि मुकदमें के भारी खर्च के कारण मध्य आय वर्ग को मुकदमों का खर्च उठाने में कठिनाई होती है। मध्य आय वर्ग के कक्षीकारों को सेवा प्रदान करने की दृष्टि से भी, हाल ही में एक स्कीम चलाई गई है जिसके अन्तर्गत विधिक सहायता समितियां उचित फीस के संदाय पर, जो कि सहायता समितियों द्वारा नियत की जाये, उत्कृष्ट वृत्तिक सेवा हासिल करेगी। इस प्रकार यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है कि गरीब, मध्य आय वाला व्यक्ति और अमीर सभी न्याय तक पहुंच सके।

हर व्यक्ति को न्याय तक पहुंचने का हक होना चाहिए। चाहे उसका अधिवास या नागरिकता कहीं की भी हो। इसलिए आवश्यक कानूनी सहायता सेवाओं का अन्तर्राष्ट्रीयकरण जरूरी है। सर्वविदित है कि पृथ्वी के धरातल के बहुत बड़े क्षेत्र में गरीब लोग रहते है। अक्सर उन पर दूसरे देशों में वाद चालए जाते है या तो इसलिए कि हेतुक वहां उत्पन्न हुआ है या संविदा की शर्त में ऐसी व्यवस्था वहां है या इसलिए कि कानूनी कार्यवाही लाने वाला विरोधी पक्षकार इस बात का फायदा उठाना चाता है कि विरोधी पक्षकार दुखी और खर्च की मजबूरी के कारण मुकदमा लड़ने में असमर्थ है।

कानूनी सहायता कोई अनुग्रह नहीं है बल्कि एक मानव अधिकार है इसलिए कानूनी सेवाएं संयुक्त राष्ट संघ के जरिए यह सुनिश्चित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप की होनी चाहिए। कि दुनिया में कहीं भी कोई भी व्यक्ति न्याय तक पहुंचने से वंचित न हो।

कानूनी सहायता– एक कानूनी अधिकार :

हमारे देश में निर्धन लोग न्याय व्यवस्था का उपयोग उस पर अधिक खर्च होने के कारण नहीं कर सकते, जिसके परिणाम स्वरूप हमारी विधि व्यवस्था के उनके जीवन की दशाओं में परिवर्तन करने और उन्हें न्याय प्रदान करने के सामर्थ्य से विश्वास उठता जा रहा है। जब कभी निर्धन लोग विधि व्यवस्था के सम्पर्क में आते है तब उन्हें सदैव हानि उठानी पड़ती है। वे विधि को रहस्मय और निषेध करने वाली वस्तु समझते है, जो उनसे सदैव कुछ छीनती है। वे उसे सामाजिक अर्थ व्यवस्था में परिवर्तन करने और उनको अधिकार तथा लाभ प्रदान करके, उनके जीवन की दशा सुधारने वाली सकारात्मक और रचनात्मक युक्ति नहीं समझते। परिणामतः, समाज के निर्बल वर्गो का विश्वास विधि व्यवस्था से उठता जा रहा है। उनके मन व मस्तिष्क में यह बात घर करती जा रही है कि देश की वर्तमान न्याय व्यवस्था से उन्हें न तो न्याय मिल रहा है और न ही भविष्य में मिलने वाला है, निश्चय ही स्थिति

विस्फोटक है, संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपति **ब्रेनन** के शब्दों में:–

''मानव हृदय में अन्याय की निरन्तर भावना से अधिक कोई चीज नहीं चुभती। हम बीमारी सहन कर सकते है। किन्तु अन्याय हमें क्रान्ति की प्रेरणा देता है। जब केवल धनी व्यक्ति ही विधि का संदेहपूर्ण विलासिता की वस्तु के रूप में उपभोग करते है और निर्धन लोग, जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, इसे इसलिए प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि इसका व्यय इसे उनकी पहुंच से बाहर कर देता है, तब स्वतन्त्र लोकतन्त्र के निरन्तर अस्तित्व को जो खतरा है वह काल्पनिक नहीं, बल्कि बहुत वास्तविक होता है, क्योंकि लोकतन्त्र का अस्तित्व ही न्याय तन्त्र को इतना प्रभावशाली बना देने पर निर्भर है कि प्रत्येक नागरिक उसमें विश्वास करें और उसकी निष्पक्षता और उसके औचित्य का फायदा उठाए''।

संयुक्त राज्य अमेरिका के एक अन्य विधि विशेषज्ञ **लीमैन एब्बट** ने भी ऐसे ही उदात्त विचार प्रकट किये है–

''यदि कभी ऐसा समय आ जाए, जब इस नगर में केवल धनी लोग ही संदेहपूर्ण विलसिता की वस्तु के रूप मे विधि का उपभोग कर सकें, जब निर्धन लोग, जिन्हें इसकी सर्वाधिक आवश्यकता होती है, इसे प्राप्त न कर सके और जब न्यायालय कक्ष का द्वारा केवल सोने की चाबी से ही खोला जा सके, तब क्रान्ति के बीज बो दिये जायेंगे, क्रान्ति की अग्नि सुलग जायेगी तथा वह लोगों के हाथों में रख दी जायेगी और उसके बाद लौग जो क्रान्ति करेंगे, वह लगभग न्यायोचित होगी''।

देश के प्रत्येक नागरिक को ''सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय'' दिलाना हमारा संवैधानिक संकल्प है, राज्य का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह समाज के निर्बल वर्गो को वास्तविक न्याय दिलवाये। संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के कारण **''मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा''** (युनिवर्सल डिक्लेरेशन आफ हयूमन राइट्स) में वर्णित ''प्रभावशाली उपचार'' दिलाना भी राज्य का नैतिक कर्तव्य है जिसमें कहा गया है।

''संविधान द्वारा या विधि द्वारा दिये गये मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यो के लिए सक्षम राष्ट्रीय अधिकरणों द्वारा प्रभावशाली उपचार का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है''।[1]

''वास्तविक न्याय'' व **''प्रभावशाली उपचार''** के स्पप्न निर्धनों, असहायों व समाज के निर्बल वर्गो के लिए तभी साकार हो सकते है, जब उन्हें समुचित कानूनी सहायता मिले। कानूनी सहायता ही वह सुनहरी सीढ़ी है। जो समाज के इन उपेक्षित वर्गो को न्याय की मंजिल तक पहुंचा सकती है। कानून का चरम लक्ष्य है न्याय, और वह इन वर्गो को तभी मिल सकता है जब कानूनी सहायता मिले। जब कानूनी सहायता, समाज के उपेक्षित वर्गो के लिए न्याय की एक अनिवार्य शर्त हो तो भारत जैसे समाजवादी एवं कल्याणकारी राज्य में इस समाज के साधन सम्पन्न वर्ग द्वारा निर्बल वर्ग पर की गई कृपा या निर्बल वर्ग को राज्य द्वारा दी गयी खैरात नहीं माना जा सकता। इसीलिए आजकल यह विचार सर्वमान्य होता जा रहा है कि कानूनी सहायता पाना समाज के निर्धन, निर्बल व असहाय व्यक्तियों का कानूनी अधिकार है। माननीय न्यायमूर्ति **श्री पी0 एन0 भगवती** भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ने **''सेन्टर फार लीगल रिसर्च बनाम केरल राज्य''** ने मुकदमें में निर्णय देते हुए कहा है कि ''कानूनी सहायता कार्यक्रम दान या भत्ता नहीं है बल्कि जनता का सामाजिक अधिकार है, कानूनी सहायता की आवश्यकता वाले व्यक्ति कानूनी सहायता कार्यक्रम से मात्र लाभ लेने

---

1. संयुक्त राष्ट संघ का मानव अधिकारों के घोषणा पत्र का अनु0 8

वाले नहीं अपितु इसमें भागीदार समझे जाने चाहिए" एम0 एच0 होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य 1978–3–सुप्रीम कोर्ट केसिज–544 के मुकदमें में माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने यह मत व्यक्त किया है कि "यह उपधारणा अनिवार्य है कि यह (कानूनी सहायता) राज्य का कर्तव्य है, न कि शासन की खैरात"।[1]

भारत में कानूनी सहायता के अधिकार के श्रोत :

यह विचार कि समाज के निर्बल वर्ग को कानूनी सहायता की आवश्यकता है, अपने देश में अपेक्षतः नया है। यह धारणा कि समाज के निर्बल वर्ग को कानूनी सहायता प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है और भी नयी है और पिछले दशक में ही न्यायिक क्रियाशीलता से उद्भूत हुई है। ऐसी स्थिति में यह विचारणीय विषय हो जाता है कि समाज के निर्बल वर्ग के कानूनी सहायता प्राप्त करने के कानूनी अधिकार का स्त्रोत क्या है ? स्वरूप क्या है ? सीमायें क्या है ? इस अधिकार से समाज के निर्बल वर्ग को क्या लाभ हुआ है या होने वाला है ?

इन्टरनेशनल कैवेनेन्ट आफ सिविल एण्ड पालिटिकल राइट्स :

इन्टरनेशनल कैवेनेन्ट आल सिविल एण्ड पालिटिकल राइट्स प्रत्येक व्यक्ति को निम्नलिखित गारण्टी देता है–

"अपनी उपस्थिति में विचारण किये जाने का अधिकार और स्वयं या अपनी पसन्द की विधिक सहायता के माध्यम से अपना बचाव करने का अधिकार, यदि उसके पास विधिक सहायता नहीं है तो अपने अधिकार के विषय में सूचित किये जाने का अधिकार और जिन मामलों में न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित है उनमें उसे विधिक सहायता दिये जाने का अधिकार और यदि उसके पास उसका संदाय करने के लिए पर्याप्त साधन न हो तो ऐसे मामले में उसके द्वारा संदाय किये बिना ऐसी सहायता का अधिकार"।[2]

---

1. सेन्ट्रल फार लीगल रिसर्च बनाम केरल राज्य (1986) 2, सुप्रीम कोर्ट केसिज–706
2. इंटरनेशनल कैवेनेन्ट आफ सिविल एण्ड पालिटिकल राइट्स का अनु0 4(3)

उक्त कैवेनेन्ट का हस्ताक्षरकर्ता होने के कारण कानूनी सहायता की उक्त गारंटी भारत के प्रत्येक नागरिक को भी प्राप्त है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 253 के उपबन्ध द्वारा संसद को किसी संधि, करार, अभिसमय अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन संस्था या अन्य निकाय में किये गए किसी विनिश्चिय के परिपालन के लिए भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति प्राप्त है। जब तक उक्त कैवेनेन्ट के अनुच्छेद को प्रभावी बनाने हेतु संविधान के अनुच्छेद 253 के अन्तर्गत भारतीय संसद विधि नहीं बनाती तब तक कानूनी सहायता की उक्त गारण्टी मात्र राज्य का नैतिक कर्तव्य समझी जावेगी न कि देश के नागरिकों का कानूनी अधिकार। अतएव कैवेनेन्ट के अनुच्छेद 4(3) के उक्त उपबन्ध को वर्तमान में कानूनी सहायता के कानूनी अधिकार का स्त्रोत नहीं समझा जा सकता। अधिक से अधिक इसे इस अधिकार का प्रेरणास्त्रोत और राज्य का नैतिक कर्तव्य समझा जा सकता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना :

भारतीय संविधान की प्रस्तावान को संविधान की परिप्रदीप्ति (फ्लड लाइट) कहा गया है। इस प्रस्तावना में देश के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त कराने का संकल्प लिया गया है। समाज के निर्बल वर्ग को कानूनी सहायता प्रदान करना और उन्हें सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने की ओर एक प्रमुख व प्रभावशाली कदम है। अतएव यह कहा जा सकता है कि संविधान की प्रस्तावना से समाज के निर्बल वर्ग को कानूनी सहायता प्राप्त करने का कानूनी अधिकार भले ही न मिलता हो परन्तु संविधान की प्रस्तावना इस अधिकार की प्रेरणा स्त्रोत अवश्य है।

भारतीय संविधान का अनु0 39 (क) :

भारतीय संविधान के 42वें संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में ''समाजवादी'' शब्द एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय में अनुच्छेद 39 क (निम्नलिखित) जोड़ा गया था–

''समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह विशिष्ट तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य असमर्थता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये, उपर्युक्त विधान या स्कीम द्वारा या अन्य प्रकार से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा''।[1]

अनुच्छेद 39 क समाज के निर्बल वर्ग के लिए कानूनी सहायता की व्यवस्था करने हेतु विधान या स्कीम बनाने का स्पष्ट निर्देश देता है। राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त का भाग होने के कारण अनुच्छेद 39 क द्वारा प्रदत्त कानूनी सहायता व्यवस्था मूल अधिकारों की भांति कोई कानूनी अधिकार नहीं है। और न ही न्याय है, परन्तु अनुच्छेद 37 के उपबन्ध ों के अनुसार देश के शासन का मूलभूत तत्व है और विधि बनाने में इस तत्व का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा। इस प्रकार से अनुच्छेद 39 क भी कानूनी सहायता पाने के कानूनी अधिकार का सृजन नहीं करता वरन् इसका प्रेरणा–स्त्रोत व पथ प्रदर्शक है।

संविधान द्वारा प्रदत्त समानता का अधिकार :

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 (निम्नलिखित) भारत के प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समानता का अधिकार देता है–

---

1. भारतीय संविधान

अनुच्छेद 14 **''भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा''**।[1]

इस देश में लगभग 64 प्रतिशत आबादी निरक्षर है, लगभग आधी आबादी गरीबी की रेखा के नीचे है। कानून अत्यन्त जटिल है, न्यायिकक प्रक्रिया अत्यन्त व्यवसाध्य है, ऐसी स्थिति में विरोधी पक्षों वाली पद्धति में न्यायालय में जाने वाला एक ऐसा व्यक्ति जो इतना निर्धन है कि किसी विधि व्यवसायी को नहीं रख सकता है और न ही साक्ष्य एकत्र करने हेतु पर्याप्त राशि खर्च कर सकता है, निश्चय ही उस धनवान व्यक्ति के सामने जो हर प्रकार से समर्थ है, वास्तविकता में बराबर नहीं है। अमरीकी न्यायविद् प्रोफेसर **वान्स** ने कहा है–

''यदि निर्धन और अनजान व्यक्ति को यह बताने वाला कोई न हो कि विधि क्या है? तो उसे इस बात से क्या लाभ है कि वह विधि के समक्ष अपने प्रबल विरोधी के समान है या कि न्यायालय उसके लिए उन्हीं निबंधनों पर खुले है जबकि उसके पास प्रवेश फीस का संदाय करने के साधन नहीं है ?''

स्पष्टतः निर्धन व्यक्ति, जैसे बच्चे, स्त्रियाँ व असहाय व्यक्ति जैसे कैदी आदि को न्याय प्रक्रिया के संदर्भ में धनवान व समर्थ व्यक्ति के समान मानना, जब तक कि ऐसे निर्धन, निर्बल या असहाय व्यक्ति को कानूनी सहायता न दी गई हो, अनुच्छेद 14 द्वारा प्रदत्त कानूनी समानता के अधिकार का उल्लंघन होगा। अतएव समाज के इन अपेक्षित वर्गो का कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकार अनुच्छेद 14 में अनतर्विष्ट समझा जावेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'शीला बारसे बनाम महराष्ट्र राज्य' के मुकदमे में, सीमित अर्थो में अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट कानूनी सहायता के कानूनी अधिकार को मान्यता दी है।[2]

---

1. भारतीय संविधान
2. शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य ए0 आई0 आर0 1983 सुप्रीम कोर्ट 378

प्राण व दैहिक स्वाधीनता का संरक्षण :

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 (निम्नलिखित) के उल्लेख के बिना कानूनी सहायता के अधिकार की चर्चा अधूरी होगी।

अनुच्छेद 21 : "प्राण और दैहिक स्वाधीनता का संरक्षण" : किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायेगा।"।[1]

भगवान वामन के चरणों की भांति अनुच्छेद 21 का विस्तार अपरिमेय है। इस प्राविधानों के नित नये आयाम प्रकाश में लाने में न्यायिक क्रियाशीलता की अहम भूमिका रही है। न्यायिक निर्वचन द्वारा अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" (प्रोसीजन एस्टेब्लिस्ड वाई ला) का संयुक्त राज्य अमेरिकन के पांचवे (1791) व चौहदवें (1868) संशोधन में प्रयुक्त "विधि की सम्यक प्रक्रिया (ड्यू प्रोसिस आफ ला) से तादात्म्य स्थापित कर इस अनुच्छेद में अनुघात अनेक अधिकारों की खोज की गयी है। माननीय न्यायमूर्ति श्री वाई0 वी0 चन्द्रचूड़ (भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश) ने मिठू बनाम राज्य ए0 आई0 आर0 1983–सुप्रीमकोर्ट–473 में दिये गये निर्णय में कहा है कि–

"अनुच्छेद 21 के क्षितिज निरन्तर फैलने वाले है और इसकी रूपरेखा के सम्बन्ध में अन्तिम शब्द कभी नहीं कहा जा सकेगा। जब तक जीवन है, तब तक संविधान के उपबन्धों को ऐसा अर्थ देना जिससे मानव पीड़ा व अधोगति का निवारण हो, इस न्यायालय का कर्तव्य व प्रयत्न होगा।"

न्यायिक क्रियाशीलता की रचना शक्ति का एक अनुपम उदाहरण है माननीय उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक पीठ द्वारा 'मेनका गांधी बनाम भारत संघ' में किया गया

---

1. भारतीय संविधान

अनुच्छेद 21 का निर्वचन। इस मुकदमे में अपने प्रमुख निर्णय में माननीय न्यायमूर्ति श्री पी0 एन0 भगवती ने अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त शब्दावली **"विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया"** के सम्बन्ध में कहा है कि–

"यह सही, न्यायपूर्ण तथा उचित होनी चाहिए और मनमानी, काल्पनिक या दमनकारी नहीं होनी चाहिए अन्यथा यह प्रक्रिया बिल्कुल प्रभावी नहीं होगी और अनुच्छेद 2 की अपेक्षा पूरी नहीं होगी।"[1]

इसी निर्वचन को आधार बनाते हुए माननीय न्यायमूर्ति श्री पी0 एन0 भगवती ने **"सुकदास बनाम संघीय राज्य क्षेत्र अरूणाचल प्रदेश'** में कहा है कि–

"अतः अब यह व्यवस्थापित विधि मानी जा सकती है कि किसी ऐसे अपराध के अभियुक्त व्यक्ति, जिससे उसका जीवन या उसकी दैहिक स्वाधीनता खतरे में पड़ती हो, का राज्य के खर्चे पर निःशुल्क कानूनी सहायता पाना उसका मूलभूत अधिकार है और यह मूलभूत अधिकार अनुच्छेद 21 द्वारा विहित "युक्तियुक्त" न्यायपूर्ण तथा उचित प्रक्रिया की अपेक्षा में अन्तर्निहीत है।"[2]

एक अभियुक्त को मिलने वाली कानूनी सहायता का यह कानूनी अधिकार, किसी व्यक्ति का कानूनी सहायता पाने का एक मात्र सुस्पष्ट कानूनी अधिकार है और इसका प्रमुख स्त्रोत अनुच्छेद 21 है।

= = = =0= = = =

---

1. मेनका गांधी बनाम भारतीय संघ, 1978–1, सुप्रीम कोर्ट कैसेज – 248
2. सुकदास बनाम संघीय राज्य क्षेत्र अरूणाचल प्रदेश, ए0 आई0 आर0 1986, सुप्रीम कोर्ट कैसेज–991

अध्याय— 2

कानूनी सहायता की संकल्पना का विकास एवं स्वरूप

(अ) कानूनी सहायता के प्रयासों का उद्भव

(ब) विधिक सहायता का स्वरूप

(स) विधिक सहायता की प्रमुख विशेषतायें एवं अंग

(द) भारत में विधिक सहायता की प्रगति

(य) उत्तर प्रदेश में कानूनी सहायता कार्यक्रमों की रूपरेखा

किसी भी लोकतांत्रिक देश की सत्ता जिन चार पायों पर टिकी रहती है, उनमें न्यायपालिका भी एक महत्वपूर्ण पाया है। विधायिका और कार्यपालिका के अलावा पत्रकारिता या अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य को लोकतन्त्र का चौथा स्तंभ कहा गया है। यद्यपि ये चारों ही "लोकसत्ता" के अनिवार्य अंग है, तथापि न्यायपालिका का दायित्व इनमें सर्वोपरि है।

महाभारत में **भीष्म पितामह** धर्मराज युधिष्ठर को न्याय पालिका का महत्व बताते हुए कहते है–

"सब प्राणी, दण्डनीति के आधार पर ही टिके हुए है और दण्डनीति से युक्त होना ही राज्य–सत्ता का धर्म है"।[1]

मत्स्य पुराण में कहा गया है–

"बाल वृद्धातुरयतिद्विज स्त्री विधवा यतः।

मात्स्यान्येय मश्येरन यदि दण्डं न पातयेत्"।।[2]

अर्थात् यदि राज्य में दण्डनीति की व्यवस्था न रखी जाये तो बालक, वृद्ध, आतुर, सन्यासी, बाह्मण स्त्री और विधवा ये सभी एक दूसरे को खा जाये।

आतताईयों व अन्यायियों को दण्डित कर, सताये हुए लोगों को न्याय उपलब्ध कराना निःसन्देह शासन का सर्वोपरि कर्तव्य है। हमारे प्राचीन ग्रन्थ राजाओं की न्यायप्रियता के विलक्षण दृष्टांतों से भरे पड़े है। किन्तु आज अपने देश का परिवेश और परिस्थितियां अत्यधिक दुरूह और जटिल है। समय के प्रभाव ने लोगों की प्रवृत्ति और प्रकृति में परिवर्तन कर दिया है। कुंठाओं और रूढ़ियों के फैलते हुए नासूर ने न्यायालयों में विवादों के अम्बार लगा दिये है। भारतीय संविधान के प्रकाश में न्याय की प्रतीक्षा करते हुए अनेक गरीब नियति के अन्धकार में अपना सुख–चैन ही गंवा बैठते हैं। वस्तुतः न्यायिक प्रक्रिया की पेचीदगी और अदालतों में लगे हुए विवाद–प्रकरणों के अम्बार गरीब आदमी को न्याय दिलाने से पूर्व उस

1. महाभारत (शान्ति पर्व)
2. मत्स्य पुराण–225/9

पर अदालती विलम्ब का एक ऐसा बोझ बन जाते है जिनके नीचे दब जाने के बाद कदाचित न्याय मिलने पर भी उसके हृदय में कोई हर्षानुभूति नहीं हो पाती, सुख की कोई लहर उसके सूखे हृदय सिन्धु में नहीं उभर पाती। **न्याय दर्शन का मूल सिद्धान्त** इसी स्वीकारोक्ति पर टिका है–**''बिलम्ब से प्राप्त न्याय अस्तित्वहीन एवं निरर्थक है।''** (Justice delayed Justice denied)

<u>कानूनी सहायता के प्रयासों का उद्भव</u> :

विधिक सहायता का विचार प्राचीन में ब्रिटेन में 1495 में विधिक सहायता प्रणाली जिसने हैनरी पंचम के शासनकाल में एक कानून का रूप लिया था, इंगलैंड में ''इन फोरमा पापरिस'' (अकिंचन के रूप में) प्रक्रिया के रूप में जानी जाती थी। यह जानना भी दिलचस्प होगा कि इंगलैंड में भी निर्धनों को विधिक सहायता प्रदान करने के संगठित प्रयास द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही किए गए। **प्रो० ए० ए० गुडहार्ट** ने कहा है–

''बहुत वर्षो से सामाजिक कार्यकर्ता, निर्धनों को विधिक सहायता, प्रदान करने के अनिवार्य महत्व पर जोर देते रहे है, किन्तु सत्तारूढ़ लोगों को यह बात समझाना एक युद्ध लड़ने के समान था। तथापि, केवल रक्षा सेवाओं में ही इसकी (विधिक सलाह) आवश्यकता महसूस नहीं की गई, नागरिक सलाह ब्यूरो में जो युद्धकाल की कठिनाइयों में नागरिकों की सहायता करने के लिए स्थापित किए गए थे, विधिक समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्नों का अंबार लग गया। इनसे केवल स्वैच्छिक सहायता के बल पर निपटना कठिन था क्योंकि कार्यभार इतना अधिक था कि उसको केवल छुट्टी के समय ही निपटाना संभव नहीं था अतः लंदन में ऐसे ही विधिक सलाह केन्द्र खोले गए, जिसमें सवैतनिक कर्मचारी रखे गए। इससे यह पता चलता है कि यह सेवा गरीबों के लिए कितनी अनिवार्य है।''[1]

---

1. न्यायमूर्ति सरदार अली खॉ विधिक सहायता प्रक्रिया, विधिक सहायता संवाद पत्र, अक्टूबर 93 मार्च 94 पृ0 8

जनसाधारण के लिए न्याय प्राप्त करने के मार्ग में बहुत ही कठिनाईयां आती है। यह हाल ही में महसूस किया गया है कि न्याय, व्यक्ति द्वारा अपना अधिकार जताने के लिए विधिक प्रक्रिया प्रारंभ करने के परिणामस्वरूप मिलने वाली अंतिम वस्तु है। यदि व्यथित व्यक्ति विधि की शरण में जाने की स्थिति में नहीं है अथवा उसे ऐसा करने से रोका जाता है चाहे वह उस प्रक्रिया में लगने वाले अत्यधिक व्यय के कारण हो या इस कारण हो कि उसे इसकी आवश्यक जानकारी नहीं है कि वह अपना अधिकार किस प्रकार मांगे तो यह स्पष्ट है कि उसे न्याय नहीं मिल सकता। भारत जैसे देश में जहां अधिकांश लोग गरीबी की रेखा से नीचे रहते है और जहां साक्षरता भी औसत से बहुत कम है, वहां यह विचारणीय प्रश्न है कि हम किस प्रकार न्याय को सर्व सुलभ बनाए और देश की विधि तथा संविधान के अधीन उन्हें दिए गए अधिकारों को प्राप्त करने में कैसे सहायता करें।

रोवर्ट एजर्टन ने अपनी पुस्तक **"लीगल एड"** में ठीक ही इस पर जोर देकर लिखा है **"एक संगठित समाज में संभव है कि विधि अच्छी हो, न्यायालय निष्पक्ष हो, किन्तु यदि किसी कारणवश विधि का अवलम्ब नहीं लिया जा सकता तो न्यायतंत्र का कोई व्यवहारिक फायदा नहीं है"**।[1] न्यायतंत्र का संचालन बहुत मंहगा है, न्यायपालिका की अधिकारिता का अवलम्ब लेने में गरीबों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अधिकांश उसका खर्च नहीं उठा सकते, अतः उन्हें विधि का संरक्षण नहीं मिल सकता जब तक कि उन पर विधिक सहायता के माध्यम से विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939–45) के पश्चात इंगलैंड में जरूरतमंद और गरीबों के फायदे के लिए एक अधिनियम– **"द लीगल एड एण्ड एडवाइज एक्ट 1949"** पारित किया था। यू0 के0 की संसद ने जरूरतमंद लोगों की निःशुल्क कानूनी सहायता और सलाह के प्रयोजन के लिए खर्च किए जाने के लिए एक विशाल धनराशि निश्चित की थी।

1. रोवर्ट एजर्टन– लीगल एड (Legal Aid)

संसद द्वारा पारित **"लीगल एड एण्ड एडवाइज एक्ट" (विधिक सहायता और सलाह अधिनियम) 1949 की उद्देशिका** निम्नलिखित शब्दों में विधिक सहायता के लक्ष्य और उद्देश्य का उल्लेख करती है–

"अल्प और सीमित साधन वाले व्यक्तियों के लिए विधिक सहायता और सलाह को इंगलैंड और वेल्स में और सशस्त्र बलों के सदस्यों की दशा में विधिक सहायता अन्यत्र और आसानी से सुलभ बनाने के लिए, जिससे कि ऐसे व्यक्तियों के लिए विधिक सहायता और सलाह का खर्च संसद द्वारा उपबंधित धन में से पूर्णतः या अंशतः पूरा कियाजा सके तथा उसमें संसक्त प्रयोजन के लिए अधिनियम 30 जुलाई 1949 को पारित"।[1]

उपरोक्त को पढ़ने से यह स्पष्ट रूप से पता चल जाता है कि अल्प और सीमित साधन वाले व्यक्तियों को विधिक सहायता और सलाह के खर्च को संसद द्वारा उपबंधित धन से पूर्णतः या अंशतः चुकाए जाने के लिए उपबंध किया गया है। यह जानकारी दिलचस्प है कि वर्ष 1985 से 1986 में इंगलैंड और वेल्स में खर्च की गई कुल रकम 7.3 मिलियन पांउड स्टर्लिंग थी। इससे पता चलता है कि ब्रिटेन में जरूरतमंद लोगों को निःशुल्क विधिक सहायता और सलाह की व्यवस्था करने को काफी महत्व प्रदान किया गया है।

संयुक्त राज्य अमरीका में कानूनी सहायता और सलाह देने के उद्देश्य विधिक सहायता कार्यक्रम में प्रतिपादित मूल और प्राथमिक उद्श्यों में से एक है। संयुक्त राज्य अमरीका में कानूनी सहायता की स्कीम को कानूनी मान्यता मिली **लीगल सर्विसेज कारपोरेशन एक्ट 1974** के अधिनियम से जिसका संशोधन 1977 में किया गया था। इसका मुख्यालय वाशिंगटन में है और स्कीम को कार्यान्वित करने के लिए उसकी शाखाएं राज्यों की राजधानियों में तथा अन्य स्थानों पर है। **विधिक सेवा निगम** के अलावा, अमरीका में कुछ राज्यों में जनता न्यायालय (पीपुल्स कोर्ट) है।

1. लीगल एड एण्ड एडवाइज एक्ट 1949 (ब्रिटेन)

अमेरिकी बार एसोसियेशन की उपविधियों की धारा 13 का कहना है कि विधिक सहायता कार्य समिति का कर्तव्य है–

1. न्याय प्रशासन का सतत् अध्ययन करते रहना जहां पूरे देश में नागरिक और आप्रवासी प्रभावित होते है।
2. गरीब व्यक्तियों के कानूनी अधिकार के संरक्षण में उनकी सहायता करने के लिए उपचारात्मक उपायों को बढ़ावा देना।
3. विधिक सहायता संगठन का स्थापन और दक्षतापूर्ण अनुरक्षण तथा सार्वजनिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के अभिकरणों से सहयोग प्रोत्साहित करना।[1]

समिति ने संगठित बार को विधिक सहायता कार्य के हित के प्रति और अधिक उत्तरदायी महसूस कराने का प्रयत्न किया।

उपविधि में कथित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रत्येक वर्ष कई मिलियन डालर देश के नागरिकों को निःशुल्क कानूनी सहायता और सलाह की व्यवस्था करने में उपगत व्यय चुकाने के लिए आवंटित किए जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के मुख्य न्यायमूर्ति **टैफ्ट** ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है–

"हमारे बिल आफ राइट्स का वास्तविक व्यवहारिक फायदा है प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्र न्यायालय द्वारा निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए निश्चित प्रक्रिया का उपबंध होना – – किन्तु यदि अपनी रक्षा की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के पास ऐसी प्रक्रिया का लाभ उठाने के लिए धन नहीं है तो बनाया गया संविधान और प्रक्रिया, जो इसके द्वारा अनिवार्य बनाई गई है, किसी के फायदे के लिए कार्य नहीं करती। कुछ ऐसा उपाय अवश्य किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा प्रत्येक

1. श्री बठूला बेंकटेश्वर राव : भारत में कानूनी सहायक प्रक्रिया, विधिक सहायता संवाद पत्र, जुलाई सितंबर, 1992 पृ0 16

व्यक्ति को, चाहे वह वकील नियोजित करने, न्यायालय फीस देने के साधनों से जितना भी पिछड़ा या निर्धन हो, निश्चित न्यायतंत्र को जारी रखने का अवसर प्रदान किया जाएगा।''[1]

पूर्वोक्त कथन यह स्पष्ट रूप से दर्शित करता है कि विधिक सहायता और सलाह उपलब्ध कराने का उद्देश्य, विश्व के उन्नत देशों के विधिक कार्यक्रम में वर्णित मूल उद्देश्यों में से एक है। अतः इस बात के लिए यह सही समय है कि भारत में भी संविधान के अनुच्छेद 39 क में अन्तर्विष्ट प्रशंसनीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केन्द्रीय और राज्य स्तर पर संयुक्त और ठोस प्रयास किया जाए।

कानूनी सहायता का स्वरूप :

कानूनी सहायता कार्यक्रम के दो व्यापक पक्ष हैः–

1. पहला पक्ष परम्परागत पक्ष है जिसका तात्पर्य यह हे कि एक गरीब व्यक्ति को कानूनी सहायता देना कि जिससे वह अपने मामले की पैरवी ढंग से कर सके।
2. दूसरा पक्ष व्यापक है जिसे भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश **न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती** ने प्रतिपादित किया है वे मानते है **''भारत जैसे विकासशील देश में यह कार्यक्रम बहुत महत्वपूर्ण है जहां गरीबी, निरक्षरता और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव हो तथा बलात् न्याय से वंचित किये जाने जैसी बुराइयाँ मौजूद है जहां न्यायालयों पर इतना अधिक बोझ है, एक मामले के निर्णय में 10 से 12 साल तक लग जाते है।''**

कानूनी सहायता कार्यक्रम के प्रमुख चरण :

प्रो0 पारस दीवान न व्यापक कानूनी सहायता कार्यक्रम के 6 प्रमुख चरण बताये है–

---

1. जस्टिस टैफ्ट : लीगल एड वर्क इन यूनाइटेड स्टेट्स

1. विधिक सहायता शिविर एवं लोक अदालतों को सुदूर ग्रामीण अंचलों में लगाया जाना जिससे कि दूरवर्ती इलाकों में भी न्यायिक सेवायें दी जा सके और 'दरवाजे पर न्याय' की दिशा में प्रगति हो।
2. लोगों में कानूनी जागरूकता की भावना का विकास हो जिससे लोगों को अपने अधिकारों की जानकारी हो सके।
3. विधिक सहायता कार्यक्रमों में समाज के प्रबुद्ध वर्गो से जैसे– अध्यापकों, छात्रों, बुद्धजीवियों आदि की सहभागिता ली जाये।
4. कानूनी सहायता के लिए उन क्षेत्रों में शोध किए जायें जो गरीब और पिछड़े है उनकी समस्याओं का अध्ययन किया जाए।
5. जनहित वाद को इस उद्देश्य के साथ प्रात्साहित किया जाये जिससे कि गरीबों के अधिकारों की रक्षा हो सके।
6. वकीलों और अर्धन्यायिक कर्मचारियों को इन कार्यक्रमों में सहभागिता के लिए प्रशिक्षण दिया जाये।[1]

14–15 सितम्बर, 1991 को एक अखिल भारतीय सेमिनार में सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन न्यायाधीश **न्यायमूर्ति ए० एम० अहमदी** ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा–

''न्याय की संकल्पना सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है, संविधान की प्रस्तावना के माध्यम से संविधान की आत्मा सामाजिक आर्थिक न्याय की घोषणा करती है।'' न्यायमूर्ति ए० एम० अहमदी के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 39 क में कानूनी सहायता का दर्शन व्यक्त किया गया जो वित्तीय, निरोधात्मक, सांस्कृतिक शैक्षिक और सेवा प्रेरित है।

---

1. पारस दीवान : जस्टिस एट दि डोरस्टेप आफ पीपुल, दि लोक अदालत सिस्टम, विधिक सहायता संवाद पत्र, अप्रैल–जून, 1991 पृ० 9

6 नवम्बर, 1991 को न्यायमूर्ति अहमदी ने वर्सिलोना में आयोजित विश्व न्यायिक सम्मेलन में कहा कि– कानूनी सहायता कार्यक्रम को सामाजिक परिवर्तन के लिए तीन दृष्टियों से बनाया जाना चाहिए।

1. लोगों में अज्ञानता और जागरूकता के अभाव को समाप्त करना। जिससे कि उनके कानूनी अधिकारों का हनन न हो।
2. दुर्बल और प्रभावित पक्षों को न केवल वित्तीय बल्कि गुणात्मक व्यवसायिक सहायता देकर आर्थिक असन्तुलन का मुकाबला करना।
3. यह सुनिश्चित करना कि दुर्बल पक्ष पर कोई दबाव न डाला जाये और उन्हें उचित समय में न्याय मिल सके।[1]

न्यायमूर्ति अहमदी ने सुझाव दिया कि पिछड़े एवं दूरवर्ती क्षेत्रों में कानूनी सहायता केन्द्र स्थापित किये जाये जो लोगों को अपने कानूनी अधिकारों के बारे में सलाह दें और उनके छोटे–छोटे विवादों में मध्यस्थता करे और आवश्यकता पड़ने पर गरीबों और पिछड़ों को आवश्यक कागजात एवं प्रमाण उपलब्ध करा सके।[2]

भारत में विधिक सहायता की प्रगति :

भारत में, समान न्याय और निःशुल्क कानूनी मदद हाल ही की देन है। सबसे पहली बार विधिक आयोग ने 1958 में अपनी 14वीं रिपोर्ट में विधिक सहायता प्रणाली अधिकथित की थी जो इस प्रकार हैः–

"जब तक न्यायालय फीस और वकील की फीस तथा मुकदमे के अन्य खर्चों की अदायगी के लिए गरीब आदमी की सहायता करने के लिए कोई उपबंध नहीं कर दिया जाता, वह न्याय पाने के अवसर की समता से वंचित रहेगा/रहेगी।"

---

1. कानूनी सहायता क्रियान्वयन समिति एवं आंध्रप्रदेश कानूनी सहायता बोर्ड के संयुक्त तत्वाधान में हैदाराबाद में आयोजित अखिल भारतीय सेमिनार में न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी का भाषण।
2. वार्सिलोना में 6 नवम्बर, 1991 को विश्व विधि वेत्ता परिषद द्वारा आयोजित द्विवर्षीय सम्मेलन में न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी

1958 में विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिश उस समय तक मुफ्त पड़ी रही जब राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अध्याय–4 में संविधान के अनुच्छेद 39 क के रूप में एक संशोधन जोड़ा गया।

अनुच्छेद 39 क : समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता :

संविधान का अनुच्छेद 39 क उद्घोषित करता है–

''राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।''

अनुच्छेद 39 क समस्त राज्यों पर यह बाध्यता और उत्तरदायित्व डालता है कि वे गरीबों के लिए समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करे। यह अनुच्छेद संविधान के 42वें संशोधन के अन्तर्गत है। यह 1977 से प्रवृत्त हुआ है।

हमारा संविधान, लोकतंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, प्रास्थिति की समता और विधियों के समान संरक्षण से अलंकृत है। कमजोर वर्गो के लिए कानूनी मदद एक सामाजिक बाध्यता और सांविधानिक आज्ञा है।

विधिक सेवा में प्राधिकरण अधिनियम 1987 :

संविधान के 'राज्य की नीति निदेशक तत्वों' के अनुसरण में **'विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987'** जिसे 1987 का अधिनियम सं0 39 कहते है, समाज के कमजोर वर्गो को निःशुल्क और सक्षम विधिक सेवा सुलभ कराने के लिए राष्ट्रीय, राजकीय, जिला स्तरों पर विधिक सेवा प्राधिकरण गठित करने की दृष्टि से बनाया गया था। साथ ही

यह सुनिश्चित करने के लिए कि सामाजिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के कारण किसी भी नागरिक को वंचित नहीं किया जाएगा, और यह प्राप्त करने के लिए कि विधिक प्रणाली के प्रवर्तन से समान अवसरों के आधार पर न्याय का संवर्धन हो, लोक अदालतें आयोजित करना भी इसका उद्देश्य था। इस अधिनियम का लक्ष्य था कि नियमित न्यायालयों में बकाया काम का भार कम हो जाये और साथ ही न्याय को गरीब और जरूरतमंद की दहलीज पर ले जाये तथा न्याय को तीव्र तथा कम खर्चीला बनाया जाये।

यह विधेयक 11–1–91 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया था और लोक सभा के समक्ष विचाराधीन था जो मार्च, 1991 में विघटित हो गई थी। संविधान के अनुच्छेद 107 के खंड (5) सपठित अनुच्छेद 108 (1) के उपबंधों के अनुसार विधेयक व्यपगत हो गया। यह विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम 1994 द्वारा संशोधित रूप में (नं0 59/1994) पारित हुआ।

विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति :

निःशुल्क कानूनी सहायता दिलाने के प्रयोजन और उद्देश्य से भारत सरकार ने 26 सितम्बर, 1980 के संकल्प द्वारा सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में एकरूपता से विधिक सहायता कार्यक्रम चलाने और कार्यरूप देने के लिए न्यायमूर्ति श्री पी0 एन0 भगवती की अध्यक्षता में पहली बार एक समिति –**"विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति"** की स्थापना की। समिति ने विधिक सहायता कार्यक्रम के लिए एक आदर्श योजना तैयार की उसके अन्तर्गतत निम्नलिखित कार्यक्रम थेः–

1. समाज के कमजोर वर्गो में विधिक साक्षरता को बढ़ावा और विधिक जागरूकता पैदा करना।
2. विधिक सहायता शिविर आयोजित करना।

3. विधिक सहायता कार्यक्रम को समर्थन देने के लिए पराविधिकों का प्रशिक्षण।

4. विश्वविद्यालयों एवं विधि महाविद्यालयों में विधिक सहायता क्लीनिकों की स्थापना।

5. लोक हित मुकदमा।

6. लोक अदालतें लगाना।

7. विधिक सहायता कार्यक्रम चलाने में राज्य द्वारा स्वयं सेवा संगठनों एवं सामाजिक कार्यदलों को प्रोत्साहन एवं सहायता।

उपरोक्त कार्यक्रम पूरे देश में उन विधिक सहायता और सलाह बोर्डो द्वारा कार्यान्वित किये गये जिनकी जिनकी स्थापना सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में एकरूप स्तर पर की गई। विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति का पूरा खर्च केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए अनुदानों से पूरा होता था। तदनुसार सरकार का संबंध सांविधानिक आज्ञा को कार्यरूप देने के लिए विधिक सहायता के कार्यक्रम से था।

प्रारम्भ में गरीबों को कानूनी मदद और सलाह दिलाने के लिए विभिन्न राज्यों के कार्यकलाप के समन्वय और संवर्धन के लिए कोई संसदीय विधान न होने से विभिन्न राज्यों में गरीबों को कानूनी मदद देने के अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपने निजी कार्यक्रम की घोषणा कर दी। कुछ राज्यों जैसे बिहार, कर्नाटक और अन्य ने अपने राज्य विधानमंडलों में गरीबों को कानूनी मदद देने के लिए अधिनियम पारित करा लिए। भारत में अधिकांश राज्यों ने कुछ स्कीमों या नियमों को प्रख्यापित किया है जिनके अन्तर्गत समाज को कमजोर और दलित वर्गो को कानूनी मदद दी जा रही है।

विधिक सेवा प्राधिकारण अधिनियम, 1987 (1987 का अधिनियम सं0 39) के विचाराधीन रहते हुए भारत सरकार ने 13 नवम्बर, 1990 के संकल्प द्वारा समिति का कार्यकाल 14 मई, 1990 से एक वर्ष की अवधि अथवा विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के

अधीन विधिक राष्ट्रीय सेवा प्राधिकरण के गठन तक जो भी पहले हो, के लिए बढ़ाया था। समिति निम्नलिखित माननीय सदस्यों से मिलकर बनी थी– प्रधान संरक्षण, माननीय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, कार्यकारी अध्यक्ष, माननीय न्यायमूर्ति श्री ए0 एम0 अहमदी, माननीय न्यायमूर्ति श्री के0 सी0 अग्रवाल, माननीय न्यायमूर्ति श्री वी0 रत्नम्, माननीय न्यायमूर्ति श्री आर0 सी0 पटनायक, डा0 पी0 सी0 राव, श्री के0 पी0 गीताकृष्णन, चौ0 प्रभाकर राव, सदस्य सचिव।

गरीबों को विधिक सहायता और सलाह के बारे में **सिलास** (CILAS) के वृहत विधिक सेवा कार्यक्रम राज्य विधिक सहायता बोर्डो के समन्वय में भारत में सभी राज्यों में कार्यान्वित किए गये।

इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मामलों में जरूरतमंद को कानूनी मदद देने के लिए निर्णय दिए जो निम्नांकित है।

1. हस्कोट बनाम महाराष्ट्र राज्य – ए0 आई0 आर0 1978 एस0 सी0 1548
2. हरियाणा राज्य बनाम दार्शत्रा, ए0 आई0 आर0 1979 एस0 सी0 855
3. हुसना खातून बनाम बिहार राज्य – ए0 आई0 आर0 1979, एस0 सी0 1369
4. खत्री बनाम बिहार राज्य – ए0 आई0 आर0 1981, एस0 सी0 928
5. सुखदास बनाम अरूणाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र–ए0 आई0 आर0 1986 एस0 सी0 991

कानूनी सहायता की प्रमुख विशेषताएं :

'कानूनी सहायता' की संकल्पना की कई विशेषता है। श्री बठूला बेंकटेश्वर राव ने कानूनी सहायता की निम्नांकित विशेषतायें प्रतिपादित की है–

1. उपभोक्ता संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण अथवा समाज के कमजोर वर्गो से विशेष संबंध रखने वाले किसी अन्य विषय के बारे में सामाजिक न्याय मुकदमे के रूप

में आवश्यक कदम उठाना तथा इस प्रयोजन के लिए विधि के कौशल में सामजिक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देना,

2. समाज के कमजोर वर्गो को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करने एवं लोक अदालतों के जरिये विवादों का निपटारा प्रोत्साहित करने के दोहरे प्रयोजन से, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों या श्रमिक कालोनियों में विधिक सहायता शिविर लगाना,

3. बातचीत, मध्यस्थता और सुलह के द्वारा विवादों का निपटारा, प्रोत्साहित करना।

4. गरीबों में ऐसी सेवाओं की आवश्यकता के विशेष संदर्भ में विधिक सेवाओं के क्षेत्र में अनुसंधान प्रारंभ और संवर्धन करना,

5. उक्त अधिनियम के उपबंधों के अधीन विधिक सेवा स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए उसे दी गई धनराशि में से विभिन्न स्वयंसेवी समाज कल्याण संस्थाओं और राज्य तथा जिला प्राधिकरणों के लिए सहायता अनुदान देने की केन्द्र सरकार से सिफारिश करना,

6. भारतीय विधिक परिषद के परामर्श से, क्लीनिकल कानूनी शिक्षा के कार्यक्रम विकसित करना तथा विश्वविद्यालयों, विधि महाविद्यालयों और अन्य संस्थाओं में विधिक सेवा क्लीनिकों के स्थापन और कामकाज में मार्गदर्शन देना और पर्यवेक्षण करना,

7. लोगों में कानूनी साक्षरता और कानूनी जागरूकता फैलाने के लिए विशेषकर समाज के कमजोर वर्गो को समाज कल्याण विधानों और अन्य अधिनियमों एवं प्रशासनिक कार्यक्रम तथा उपायों द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों में प्रसुविधाओं और विशेषाधिकारों के बारे में शिक्षित करने के लिए समुचित कदम उठाना,

---

8. विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में स्त्रियों और ग्रामीण एवं शहरी श्रमिकों में सबसे निचले स्तर पर काम करने वाली स्वयंसेवी समाज कल्याण संस्थाओं का सहयोग सूचीबद्ध करने के लिए विशेष प्रयास करना, और

9. राज्य और जिला प्राधिकरणों तथा अन्य स्वयंसेवी समाज कल्याण संस्थाओं तथा अन्य विधिक सेवा संगठनों के कामकाज का समन्वय करना और मानीटर करना तथा विधिक सेवा कार्यक्रम के उचित कार्यान्वयन के लिए व्यापक निदेश देना,

10. विधिक सहायता और सलाह केन्द्र प्रायोजित करना, विधि शिक्षण संस्थाओं से सहयोग करना जो समाज के कमजोर वर्गो को विधिक सहायता और सलाह देने के लिए कार्यक्रम शुरू करें और उस प्रयोजन के लिए परियोजनाएं चलाना,

11. ऐसी सामग्री का प्रचार–प्रसार करना जिससे विधि और प्रक्रिया संबंधी ज्ञान के प्रसार में मदद मिले,

12. सरकार को उन विधि सुधारों का सुझाव देना जिन्हें वह आवश्यक समझे और प्रशासनिक निकायों का ध्यान समाज के कमजोर वर्गो की शिकायतों के प्रति आकृष्ट करना।[1]

<u>कानूनी सहायता के अंग</u> :

कानूनी सहायता के तीन प्रमुख अंग है—कानूनी साक्षरता, कानूनी परामर्श व कानूनी प्रक्रिया में सहायता—

1. <u>कानूनी सहायता</u> :

एंग्लो–सेक्सन विधि शासन, जिस पर अपने देश का विधिशास्त्र आधारित है, कि यह मूलभूत उपधारणा है कि कानून सभी को ज्ञात है ऐसी स्थिति में कभी–कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि जब कानून की यह मूलभूत उपधारणा हो कि सभी को कानून ज्ञात है

1. बढ़ूला बैंकटेशवर राव : भारत में कानूनी सहायता प्रक्रिया, (विधिक सहायता संवाद पत्र) जुलाई–सितम्बर, 1992 पृ0 18

तो कानूनी साक्षरता की क्या आवश्यकता है ? यह प्रश्न तर्कसंगत प्रतीत होता है, परन्तु कानून का जीवन तर्क नहीं बल्कि अनुभव है और जिसका भी अपने देश के कानून की विधिता व जटिलता से सामना हुआ है वह केवल इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उक्त उक्ति का अक्षरशः पालन अन्यायमूलक व अकल्याणकारी होगा। अपने देश में कानून साधन सम्पन्न व शक्ति शाली वर्ग द्वारा साधनहीन व निर्बल वर्ग के ऊपर लादी गयी व्यवस्था नहीं है वरन् सामाजिक न्याय दिलाने का एक महत्वपूर्ण व प्रभावी साधन है। अतएव कानून की इस भूमिका के कारण कानून की उपधारणा का मूल्यांकन तर्क की कसौटी पर नहीं वरन् व्यवहारिकता की कसौटी पर होना चाहिए। **''विधि की अनभिज्ञता कोई प्रतिहेतु नहीं है''** की उक्ति पर आँख बन्द कर अनुगमन करना किसी स्वच्छन्द व निरंकुश शासन के लिए भले ही संभव हो, पर जनकल्याणकारी प्रजातन्त्रीय शासन के लिए संभव नहीं है। चूंकि कानून का उद्देश्य जनकल्याण करना व सामाजिक न्याय दिलाना है, यह उद्देश्य तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि देश के जनसाधारण में कानूनी साक्षरता का प्रसार न हो। सामाजिक सुधार सम्बन्धी विधियों के अप्रभावी होने के पीछे यही एक प्रमुख कारण रहा है कि जिन्हें उन विधियों का लाभ पाना है, उन्हें उस विधि की या उस विधि द्वारा प्रदत्त अधिकारों या संरक्षणों का कोई ज्ञान नहीं था। समाज के निर्बल वर्ग की दशा सुधारने हेतु चाहे जितने उदारवादी व उपयोगी कानून बनाये जावें पर जब तक कानूनी साक्षरता का प्रसार नहीं होता तब तक कानून बनने मात्र से निर्बल वर्ग को कोई लाभ नहीं होगा।

माननीय **न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती** ने सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय में कहा है कि– **''विधिक जानकारी की इतनी कमी है कि इस देश में विधिक सहायता के प्रोग्राम की सदैव यह एक मुख्य बात समझी गयी है कि विधिक साक्षरता को प्रोन्नति दी जावे। विधिक सहायता का यह मजाक उड़ाना होगा यदि उसे किसी**

गरीब अनभिज्ञ और निरक्षर अभियुक्त से विधिक सहायता की मांग पर छोड़ दिया जावे। विधिक सहायता मात्र एक कागज पर किया जाने वाला वचन रह जावेगा और उसका प्रयोग, प्रयोजन असफल हो जावेगा''।[1]

भारतीय संघ की 'विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति', ने तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री पी० एन० भगवती के संरक्षकत्व में विधिक सहायता की जो आदर्श स्कीम बनाई उसमें, अन्य बातों के अतिरिक्त विधिक सहायता का यह एक प्रमुख उद्देश्य बताया गया है कि कानूनी साक्षरता को प्रोत्साहन दिया जावे और समाज के निर्बल वर्ग में सामाजिक सुधार विधियों व अन्य कूननों द्वारा प्रदत्त अधिकारों व लाभों के सम्बन्ध में चेतना पैदा की जावे। अत्यन्त दुःख का विषय है कि उत्तर प्रदेश राज्य कानूनी सहायता और परामर्श (प्रक्रिया) योजना 1981 में कानूनी साक्षरता के प्रसार के सम्बन्ध में कोई प्राविधान नहीं किया गया है। इस तरह वर्तमान, स्थिति यह है कि खत्री बनाम बिहार राज्य (उपरोक्त) में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इस निर्देश कि **''देश में मजिस्ट्रेट और सत्र न्यायाधीश प्रत्येक अभियुक्त को, जो उनके समक्ष प्रस्तुत होता है और जिसका अपनी दरिद्रता के कारण किसी विधि वक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जाता, उसे इस बात से सूचित करें कि वह राज्य के खर्चे पर निःशुल्क विधिक सेवाओं के लिए हकदार है''**।[2] से अभियुक्त को जो प्राप्त होता है, उसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को कानूनी साक्षरता का न केवल अधिकार प्राप्त है वरन् कानूनी साक्षरता के प्रसार हेतु कोई स्कीम भी नहीं है।

2. <u>कानूनी परामर्श</u> :

कानूनी सहायता से कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों, कर्तव्यों व संरक्षणों के सम्बन्ध में केवल चेतना का उदय हो सकता है परन्तु मात्र कानूनी साक्षरता से यह संभव नहीं है कि

---

1. न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती : खत्री बनाम बिहार राज्य, ए० आई० आर० 1981 सुप्रीम कोर्ट 928
2. खत्री बनाम बिहार राज्य, ए० आई० आर० 1981 सुप्रीम कोर्ट 928

हर व्यक्ति को कानून का इतना ज्ञान हो जावे कि वह अपनी कानूनी समस्याओं का हल स्वयं ढूंढ सके या किसी अपराध का आरोप लगाये जाने पर अपना बचाव स्वयं कर सके। बुद्धिमान व शिक्षित समान्य व्यक्ति को भी विधि के विज्ञान का थोड़ा सा ही ज्ञान होता है और कभी–कभी जरा भी नहीं होता है। यदि यह बात बुद्धिमान व शिक्षित लोगों के विषय में सही है तो यह भोले, अशिक्षित और कमजोर लोगों के विषय और अधिक सही है। ऐसी स्थिति में विधि सम्बन्धी समस्या उत्पन्न होने पर कानूनी परामर्श आवश्यक हो जाता है।

जहां कानूनी साक्षरता का उद्देश्य कानूनी चेतना जगाना है, वहीं कानूनी परामर्श का उद्देश्य कानूनी समस्या के हल के सम्बन्ध में पथ प्रदर्शन करना है। हमारे संविधान में या किसी अन्य अधिनियम में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं है जिससे समाज के निर्बल वर्ग या अन्य किसी वर्ग को कानूनी परामर्श का अधिकार मिलता है।

उत्तर प्रदेश कानूनी सहायता और परामर्श (प्रक्रिया) योजना 1981 के पैरा 16 व 17 में यह प्राविधान है कि ऐसे सभी व्यक्तियों को जिनकी वार्षिक आय 6 हजार रूपये से कम है, कानूनी परामर्श समझौता या किसी लोक कल्याणकारी योजना का लाभ उठाने हेतु दिया जा सकता है। पैरा 16 व 17 के प्राविधानों से कानूनी परामर्श की सुविधा मात्र मिलती है कानूनी परामर्श का कोई कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। कानून परामर्श की इस सुविधा को प्राप्त करना कठिन कार्य है क्योंकि कानूनी साक्षरता के बिना जन साधारण को यह ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है कि कानूनी परामर्श दिए जाने की कोई योजना राज्य की ओर से लागू की गयी है। दूसरी कठिनाई यह है कि इसी योजना के पैरा 21 के अनुसार आय का प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना होता है।

3. <u>कानूनी प्रक्रिया में सहायता</u> :

कानूनी प्रक्रिया मे सहायता से मुख्यतः दो प्रकार की सहायता अभिप्रेत है। प्रथम, कानूनी कार्यवाही में विधि व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व एवं द्वितीय, कानूनी प्रक्रिया सम्बन्धी

व्यय हेतु नकद सहायता। उ0 प्र0 राज्य कानूनी सहायता और परामर्श (प्रक्रिया) योजना 1981 के पैरा 15 व 17 में राज्य के ऐसे समस्त व्यक्तियों को जिनकी वार्षिक आय छैः हजार रूपये से कम है उक्त दोनों ही प्रकार की सहायता जिला कानूनी सहायता और परामर्श समिति द्वारा देने का प्राविधान किया गया है। यह कानूनी सहायता, कुछ अपवादों को छोड़कर व्यवहार, राजस्व व दाण्डिक किसी भी तरह के मुकदमों के लिए प्राप्त की जा सकती है। इस योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली कानूनी प्रक्रिया में सहायता, राज्य द्वारा दी जाने वाली एक सुविधा मात्र है और इसे कानूनी अधिकार की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

<u>(3) (क) अपराधिक मामलों में कानूनी सहायता</u> :

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा एम0 एच0 होस्कोट बनाम महाराष्ट्र राज्य ए0 आई0 आर0 1978–सुप्रीम कोर्ट 1548, हुसैन आरा खातून प्रति गृह सचिव बिहार राज्य ए0 आई0 आर0 1979 सुप्रीमकोर्ट 1369 खत्री बनाम महाराष्ट्र राज्य ए0 आई0 आर0 1981 सुप्रीमकोर्ट 928 शीला बारसे प्रति महाराष्ट्र राज्य ए0 आई0 आर0 1983 सुप्रीम कोर्ट 378 सुखदास प्रति राज्य क्षेत्र अरूणाचल प्रदेश ए0 आई0 आर0 1986 सुप्रीम कोर्ट 991 आदि मुकदमों में दिए गए निर्णयों से अभियुक्त को राज्य के व्यय पर विधि व्यवसायी की सेवा प्राप्त करने का जो कानूनी अधिकार प्राप्त हुआ है उसके मुख्य तत्व निम्न हैः–

1. अभियुक्त को कानूनी सहायता पाने हेतु प्रार्थना पत्र देने की आवश्यकता नहीं है, यदि यह अर्ह है व इच्छुक है, तो न्यायालय स्वयं उसे विधिक सेवाएं उपलब्ध कराएगा।
2. गरीब अभियुक्त को न केवल विचारण पर अपितु उस प्रक्रम पर भी जब उसे प्रथम बार मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है साथ ही साथ जब उसे समय–समय पर प्रति प्रेषित (रिमाण्ड) किया जाता है, राज्य के व्यय पर विधि व्यवसायी की सेवा पाने का अधिकारी है।

3. विचारण के समय या प्रतिप्रेषण (रिमाण्ड) के समय विधि व्यवसायी का सेवा पाने हेतु एक मात्र अर्हता यह होगी कि अभियुक्त के विरूद्ध आरोपित अपराध ऐसा है कि दोषसिद्ध किए जाने पर उसका परिणाम करावास का दण्डादेश होगा और ऐसी प्रकृति का है कि मामले की परिस्थितियां और सामाजिक न्याय की आवश्यकताएं यह अपेक्षा करती है कि उसे निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

4. आर्थिक अपराध अथवा वेश्यावृत्ति का निषेध करने वाली विधि या बालकों का शोषण अथवा इसी प्रकार के अपराध, जहां सामाजिक न्याय यह अपेक्षा करेगा कि निःशुल्क विधि सेवाएं राज्य द्वारा उपलब्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है, विधि व्यवसायी की सेवाएं नहीं दी जावेगी।

5. केवल दरिद्र अभियुक्त ही नहीं बल्कि ऐसा अभियुक्त भी जो असम्पर्क की स्थिति के कारण असमर्थ है, राज्य के व्यय पर निःशुल्क कानूनी सहायता पाने का अधिकारी होगा।

6. अन्य शर्तें पूरी होने पर अभियुक्त को निःशुल्क विधिक प्रतिनिधित्व सबसे निचले न्यायालय से लेकर जहां जीवन और दैहिक स्वाधीनता का वचन सारवान रूप से खतरे में है, प्राप्त होगी।

7. अभियुक्त को राज्य के व्यय पर अपने बचाव हेतु विधि व्यवसायी पाने का अधिकार तो है पर वह राज्य को अपनी पसन्द का विधि व्यवसायी देने को बाध्य नहीं कर सकता है।

अभियुक्त को प्राप्त विधिक प्रतिनिधित्व का उपरोक्त अधिकार कानूनी अधिकार नहीं है बल्कि किसी भी व्यक्ति का संविधान के अनुच्छेद 39 क, अनुच्छेद 14 व अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त संवैधानिक अधिकार है। उत्तर प्रदेश राज्य कानूनी सहायता और परामर्श

(प्रक्रिया) योजना 1981 द्वारा अभियुक्त को लगभग उपरोक्त शर्तों के अधीन ही विधि व्यवसायी की सेवाएं राज्य के व्यय पर प्राप्त करने की सुविधा दी गयी है।

अभियुक्त को प्राप्त विधिक प्रतिनिधित्व का उपरोक्त अधिकार प्रथम दृष्टतया अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता है परन्तु इसमें कुछ अन्तर्निहित दोष है तथा व्यवहार में यह निर्बल वर्ग के लिए तब तक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता जब तक उपयुक्त विधायन द्वारा इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्राविधान नहीं किया जाता। कानूनी सहायता के उपरोक्त संवैधानिक अधिकार में निम्नलिखित कमियां हैः—

(1) उपरोक्त अधिकार एक अर्थ में नकारात्मक अधिकार मात्र है। यदि किसी अभियुक्त को, समस्त शर्ते पूरी होने पर भी, विधिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध नहीं कराया जाता तो वह सिद्धान्तः उसी समय विधिक प्रतिनिधित्व के अपने अधिकार को लागू करने हेतु अनुच्छेद 32 में उच्चतम न्यायालय में रिट दायर कर सकता है या अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत सम्बन्धित उच्च न्यायालय में रिट दायर कर सकता है। परन्तु व्यवहार में रिट दायर कर विधिक प्रतिनिधित्व के अधिकार को लागू करना कठिन ही नहीं असंभव होगा, क्योंकि जब वह दरिद्रता या सम्पर्क से उत्पन्न हुई असमर्थता के कारण आरोपों से अपना बचाव करने में असमर्थ है तो वह उच्च न्यायालय तक अपने अधिकार को लागू कराने हेतु पहुंच कैसे कर सकता है। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 (निम्नलिखित) की धारा 304 में सत्र न्यायालय में अभियुक्त को विधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार प्राप्त हैः—

304 (1) जहां सेशन न्यायालय के समक्ष किसी विचारण में, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी प्लीडर द्वारा नहीं किया जाता है, और जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के पास किसी पैरवीकर्ता को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है, वहां न्यायालय उनकी प्रतिरक्षा के लिए राज्य के व्यय पर प्लीडर उपलब्ध करेगा,

---

(2)– – – – – –

304(3) राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा यह निर्देश दे सकती है कि उस तारीख से, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, उपधारा (1) और (2) के उपबंध राज्य के अन्य न्यायालयों के समक्ष किसी वर्ग के विचारणों के संबंध में वेसे ही लागू होगे जैसे वे सेशन न्यायालय के समक्ष विचारणों के संबंध में लागू होते है।

धारा 304(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता अनुपालन में सत्र न्यायालय में अभियुक्त को, यदि वह साधनहीन होने के कारण अधिवक्ता नियुक्ति करने में असमर्थ है, राज्य के व्यय पर अधिवक्ता उपलब्ध कराया जाता है जिसे 'एमीकसक्यूरी' कहा जाता है। धारा 304(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा विहित अधिकारों का प्रयोग कर राज्य सरकार अन्य न्यायालयों के समक्ष विचारणों के सम्बन्ध में भी उपधारा (1) के उपबन्ध अधिसूचना द्वारा वैसे ही लागू कर सकती है जैसे वे सत्र न्यायालय के समक्ष विचारण के सम्बन्ध में लागू होते है। खेद का विषय है कि अब तक अपने राज्य में राज्य सरकार ने धारा 304(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत कोई अधिसूचना जारी नहीं की है। ऐसी अधिसूचना जारी हो जाने पर अभियुक्त को सीधे मजिस्ट्रेट द्वारा 'एमीकसक्यूरी' की सेवाएं उपलब्ध करायी जा सकती है और वह जिला कानूनी सहायता व परामर्श समिति से प्राप्त होने वाली सहायता, जिसकी प्रक्रिया अपेक्षतः अधिक पेचीदा है, पाने हेतु आवेदन देने की परेशानी से बच जायेगा।

(2) खत्री व सुकदास के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि आर्थिक अपराध वेश्यावृत्ति व बालकों के शोषण सम्बन्धी अपराध के लिए, अन्य मापदण्डों पर खरा उतरने पर भी, अभियुक्त को कानूनी सहायता नहीं दी जानी चाहिए। जब अपने देश की दण्ड विधि का मूलभूत सिद्धान्त है कि जब तक अपराध सिद्ध न हो जाये तब तक अभियुक्त को निर्दोष समझा जायेगा, तो किसी विशेष प्रकृति के अपराधों के विरूद्ध

पूर्वाग्रह ग्रस्तता क्यों हो ? आखिर आर्थिक अपराध, वेश्यावृत्ति सम्बन्धी अपराध जैसे सामाजिक न्याय की भावना के विपरीत समझे जाने वाले अपराधों, में ऐसी कौन सी विशेष मलिनता है जो अभियुक्त को, अपराध सिद्ध होने के पूर्व ही, इस सीमा तक मलिन कर देती है कि वह अन्यथा अर्ह होने पर भी कानूनी सहायता का हकदार नहीं रह जाता। माननीय उच्चतम न्यायालय का उक्त मत प्रथम दृष्टतया उच्च आदर्शों से प्रेरित प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में दण्ड विधि के उक्त मूलभूत सिद्धान्त का उल्लंघन करता है तथा आर्थिक अपराध आदि के अभियुक्तों को बिना किसी उचित आधार के अन्य अपराधों के अभियुक्तों से अलग मानने के कारण, संविधान के अनुच्छेद 14 के समता के सिद्धान्त का भी उल्लंघन करता है।

(3) माननीय उच्चतम न्यायालय का आर्थिक अपराध, वेश्यावृत्ति सम्बन्धी अपराध जैसे अपराधों के अभियुक्तों को कानूनों की सहायता उपलब्ध न कराने का निर्देश, सत्र न्यायालय के समक्ष, धारा 304(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्राविधान के संदर्भ में असमंजस्य की स्थिति पैदा करता है धारा 304(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्राविधान के अन्तर्गत आर्थिक अपराध वेश्यावृत्ति सम्बन्धी अपराध आदि के अभियुक्त भी, साधनहीन होने पर, सत्र न्यायालय में विचारण के समय अन्य अपराधों के अभियुक्तों की भांति राज्य के व्यय पर अधिवक्ता की सेवाएं पाने के अधिकारी है। स्पष्टतः माननीय उच्चतम न्यायालय का उक्त निर्देश, जो अभियुक्त को अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त कानूनी सहायता के मूल अधिकार निर्बन्धन है, धारा 304(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंध से असंगत है।

(3) (ख) व्यवहार प्रक्रिया में कानूनी सहायता :

किसी व्यवहार नयायालय, राजस्व न्यायालय या किसी अधिकरण के समक्ष वाद प्रस्तुत करने या प्रतिवाद करने हेतु कानूनी सहायता प्राप्त करने का कोई कानूनी अधिकार किसी भी व्यक्ति को प्राप्त नहीं है। उत्तर प्रदेश राज्य कानूनी सहायता और परामर्श (प्रक्रिया)

योजना 1981 के पैरा 18 में ऋण अनुतोष अधिनियम 1976, दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम 1961 आदि सामाजिक विधायनों के उपबंधों के अन्तर्गत किसी संरक्षण या लाभ का हकदार होने पर वाद प्रस्तुत करने या प्रतिवाद करने हेतु जिला कानूनी सहायता और परामर्श समिति से कानूनी सहायता, अन्यथा अर्ह होने पर प्राप्त करने की सुविधा दी गयी है।

आदेश 33 व्यवहार संहिता के उपबन्ध व्यवहार वाद के सम्बन्ध में किसी दरिद्र या अकिंचन के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। न्यायालय द्वारा की गयी जांच के उपरान्त **''अकिंचन''** घोषित किया जाने वाला व्यक्ति बिना न्याय शुल्क दिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। उसे सम्मन तामील का शुल्क या किसी प्रार्थना पत्र पर शुल्क भी नहीं देना पड़ता है। इस उपबन्ध में अकिंचन से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है, जिसके पास, वाद ग्रस्त और कुर्की से छूट प्राप्त सम्पत्ति को छोड़कर न्यायशुल्क देने के लिए पर्याप्त साधन नहीं है। या यदि कोई न्यायशुल्क देय नहीं है तो जिसके पास एक हजार रूपसे से अधिक मूल्य की सम्पत्ति नहीं है।

आदेश 33 के नियम–9–ए व्यवहार प्रक्रिया संहिता (निम्नलिखित) में तो अकिंचन को अधिवक्ता की सेवाएं दिए जाने का उपबंध है–

9–ए : अप्रतिनिधित्व वाले अकिंचन व्यक्ति को न्यायालय पैरवीकर्ता देगा–

1. यदि कोई व्यक्ति, जिसे अकिंचन के रूप में वाद योजित करने की अनुमति मिली है, का प्रतिनिधित्व पैरवीकर्ता द्वारा नहीं है, तो न्यायालय, यदि मुकदमे की परिस्थितियों द्वारा अपेक्षित होने पर, उसे पैरवीकर्ता देगा।
2. उच्च न्यायालय, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन के उपरान्त, निम्नलिखित व्यवस्था हेतु नियम बना सकता है–

(क) उपनियम के अन्तर्गत दिए जाने वाले पैरवीकर्ता के चयन का ढंग।

(ख) ऐसे पैरवीकर्ता को न्यायालय द्वारा दी जाने वाली सुविधाएं।

(ग) उपनियम (1) के उपबंधों को प्रभावकारी बनाने हेतु अन्य कोई विषय।

अभी तक माननीय उच्च न्यायालय ने उपनियम (2) के अधिकार का प्रयोग करके अकिंचन को देने हेतु प्लीडर के चयन या उसको दी जाने वाली फीस के सम्बन्ध में कोई प्राविधान नहीं बनाये है और न ही राज्य सरकार ने प्लीडर को दी जाने वाली फीस हेतु धनराशि की व्यवस्था की है। इन अनुवर्ती कार्यो के अभाव में 9–ए (1) के हितकर प्राविधान केवल कागजी और काल्पनिक होकर रह गये है। वर्तमान कानूनी व्यवस्था में यह लगभग असम्भव है कि कोई अधिवक्ता बिना पर्याप्त पारिश्रमिक पाये किसी व्यक्ति को कानूनी सहायता दे। बार काउन्सिल आफ इण्डिया द्वारा विरचित अधिवक्तागण के **''आचरण व शिष्टाचार के मानदण्ड''** में कानूनी सहायता देना अधिवक्ता का कर्तव्य बताया गया है।

नियम 46– प्रत्येक अधिवक्ता विधि व्यवसाय के प्रचलन में वह ध्यान रखेगा कि ऐसा हर व्यक्ति जिसे कानूनी सहायता की वास्तव में आवश्यकता है, कानूनी सहायता पाने का अधिकारी है चाहे वह इस हेतु पूर्ण या पर्याप्त संदाय करने में असमर्थ हो, तथा किसी अधिवक्ता का आर्थिक दशा की सीमा में, किसी अकिंचन और उत्पीड़त को कानूनी साहयता देना एक अधिवक्ता के समाज के प्रति उच्चतम कर्तव्यों में से एक है।[1]

उक्त नियम में अन्तर्निहित उच्च आदर्श से प्रेरित होने वाले, आचरण व शिष्टाचार के उक्त मानदण्ड पर खरे उतरने वाले अधिवक्ता कितने है ?

इस प्रकार अपने देश में किसी भी साधनहीन व्यक्ति को कानूनी सहायता का जो एक मात्र कानूनी अधिकार प्राप्त है, वह है किसी अपराधिक मामले में विधि व्यवसायी की

---

1. बार काउन्सिल आफ इण्डिया रूल्स भाग–4, अध्याय 2, धारा 6 नियम 46

सेवायें पाने का अधिकार। अन्य मामलों में कानूनी सहायता पाने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। विभिन्न कानूनी उपबन्ध व उ0 प्र0 कानूनी सहायता और परामर्श (प्रक्रिया) योजना 1981 समाज के निर्बल वर्ग को, कतिपय शर्तो के साथ केवल कानूनी सहायता प्रदान करते है, जिसका लाभ उठा पाना व्यक्ति विशेष की क्षमता पर निर्भर करता है।

आपराधिक मामलों में कानूनी सहायता पाने का मूल अधिकार केवल सत्र न्यायालय के विचारणों के सन्दर्भ में प्रभावी सिद्ध हुआ है क्योंकि धारा 304 (1) दण्ड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अन्तर्गत सत्र न्यायालय साधनहीन अभियुक्त को बिना प्रक्रियागत जटिलताओं के तुरन्त ''एमकसक्यूरी'' की सेवाएं उपलब्ध करा देता है। मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय आपराधिक मामलों में साधनहीन अभियुक्त को कानूनी सहायता प्राप्त करने हेतु जिला कानूनी सहायता और परामर्श समिति को विहित प्रपत्र पर आय प्रमाण पत्र के साथ प्रार्थना पत्र देना होता है तथा आवश्यक होने पर कतिपय अन्य औपचारिकताएं भी पूरी करनी होती है। प्रायः अभियुक्त को यह ज्ञात नहीं होता है कि क्या उसे कानूनी सहायता मिल सकती है ? उसे यह भी ज्ञात नहीं होता है कि कानूनी सहायता कहाँ से और कैसे मिल सकती है ? यदि इन बातों का ज्ञान हो भी जाये तो प्रक्रियागत जटिलताओं के कारण यह प्रायः कानूनी सहायता हेतु प्रार्थना पत्र देने से कतराता है।

यह कानूनी सहायता अधिकार है तो, जैसा सुकदास (उपरोक्त) के मामले में कहा गया है, अभियुक्त को कानूनी सहायता प्रदान करने हेतु प्रार्थना पत्र देने की क्या आवश्कयता है ? मजिस्ट्रेट न्यायालय में विचारणीय मामलों में अभियुक्त को कानूनी सहायता दिलाने का सबसे सरल व प्रभावी तरीका है कि धारा 304 (2) दं0 प्र0 सं0 में निहित अधिकारों का प्रयोग कर राज्य सरकार सत्र न्यायालय में अभियुक्त को मिलने वाली सहायता के समान कानूनी सहायता अन्य दण्ड न्यायालयों में उपलब्ध कराने हेतु अधिसूचना जारी करे। इसी प्रकार यदि

उच्च न्यायालय आदेश 33 नियम 9–ए (2) में निहित अधिकार प्रयोग कर व्यवहार वादों में अकिंचन को दिए जाने वाले अधिवक्ता का चयन और उसको दी जाने वाली फीस के सम्बन्ध में नियम बनाये तो देश के निर्बल वर्ग की बहुत सी कानूनी समस्याओं का सरल व शीघ्र निदान हो जायेगा।

धारा 304 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अधिसूचना जारी करने नियम 9–ए (2) व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत नियम बनाने से भी अधिक महत्वपूर्ण है कानूनी साक्षरता। बिना कानूनी साक्षरता के जन साधारण को अपने कानूनी अधिकारों, कानूनी संरक्षणों, यहां तक कि कानूनी सहायता के कानूनी अधिकार और कानूनी सहायता हेतु बनी योजनाओं का ज्ञान नहीं होगा, और ये कानून और योजनाएं केवल कागजी होकर रह जायेंगे। यदि इस दिशा में शीघ्र व प्रभावशाली कदम नहीं उठाये जाते तो मात्र विधि गोष्ठियों में भाषण देने, सामाजिक सुधार हेतु विधायन बनाने या कानूनी सहायता को मूल अधिकार घोषित करने से कुछ लाभ न होगा और देश का दरिद्र व निर्बल वर्ग देश के सुविधावादी बुद्धिजीवियों व विधि शास्त्रियों से प्रश्न पूछेगा–शब्दाडम्बर तो बहुत है, पर यथार्थ में क्या है ?

उत्तर प्रदेश में कानूनी सहायता कार्यक्रमों की रूपरेखा :

विधि की गरिमा न्याय से है। त्वरित एवं सस्ता न्याय सुनिश्चित किया जाना न्याय प्राणाली के समक्ष सबसे बड़ी समस्या एवं चुनौती है। जहां एक तरफ अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य दलित गरीब वर्ग के लोगों की पहुंच आसानी से न्यायालय तक नहीं हो पाती जिससे उन्हें सामाजिक न्याय उपलब्ध हो सके, वहीं दूसरी ओर न्यायालय में लम्बित वादों की संख्या में प्रत्येक वर्ष भारी मात्रा में वृद्धि होने के कारण न्याय प्रणाली के द्वारा शीघ्र एवं सस्ता न्याय उपलब्ध कराने की समस्या और अधिक चिन्ताजनक होती जा रही है। सुशिक्षित एवं साधन सम्पन्न व्यक्ति अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए क्षमता रखते है,

परन्तु न्याय प्राप्त करने में उन लोगों की समस्या विशेष रूप से है, जो साधनहीन, निरक्षर, निर्धन एवं कमजोर है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 क के नीति निर्देशक सिद्धान्त द्वारा यह प्राविधानित किया गया है कि राज्य का दायित्व है कि वह सुनिश्चित करे कि विधि तन्त्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और कोई भी व्यक्ति आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रहे। अनुच्छेद 39 क के द्वारा यह भी निर्देशित किया गया है कि उपर्युक्त विधान योजना द्वारा सामाजिक न्याय को प्राप्त करने हेतु निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाये।

उक्त नीति निर्देशक सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के उद्‌देश्य से केन्द्र स्तर पर **''विधिक सहायता स्कीम क्रियान्वयन समिति''** की पूर्व में स्थापना की गई थी। भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश इस मुख्य संस्था (एपेक्स बाडी) के मुख्य संरक्षक और सर्वोच्च न्यायालय के एक कार्यरत वरिष्ठ न्यायाधीश इस मुख्य संस्था के प्रशासनिक अध्यक्ष थे। उत्तर प्रदेश राज्य के कानूनी सहायता और परामर्श बोर्ड की स्थापना वर्ष 1981 में की गई थी।

वर्तमान में उक्त कार्य हेतु विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के प्रावधानों के अन्तर्गत उ0 प्र0 में उक्त अधिनियम लागू किया जा चुका है। इस अधिनियम के लागू होने पर उत्तर प्रदेश कानूनी सहायता और परामर्श बोर्ड के स्थान पर दिनांक 12–5–97 से उ0 प्र0 राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण का गठन किया गया है और प्रत्येक जिले में जिला कानूनी सहायता और परामर्श समिति के स्थान पर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण का गठन किया गया है। उच्च न्यायालय स्तर पर इलाहाबाद एवं लखनऊ बेंच में स्थापित उच्च न्यायालय कानूनी सहायता एवं परामर्श समितियों को भंग करके उच्च न्यायालय इलाहाबाद में उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति एवं इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ में उच्च न्यायालय विधिक सेवा उपसमिति का गठन किया गया है।

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण में कार्यपालक के अध्यक्ष के रूप में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त अथवा सेवारत न्यायाधीश और सदस्य सचिव के रूप में वरिष्ठ जिला जज की नियुक्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त महाधिक्ता, उ0 प्र0 सचिव राजस्व परिषद, प्रमुख सचिव वित्त, प्रमुख सचिव न्याय, पुलिस महानिदेशक, अध्यक्ष उ0 प्र0 अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग, मुख्य न्यायमूर्ति जी के परामर्श से दो जिला न्यायाधीश, अध्यक्ष बार काउन्सिल इस राज्य प्राधिकरण के नामित सदस्य होते है और इनके अतिरिक्त मुख्य न्यायमूर्ति जी के परामर्श से 7 अन्य व्यक्तियों को नाम निर्दिष्ट सदस्य बनाया जाता है।

इस प्रकार जिले में स्थित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के अध्यक्ष संबंधित जिले के जिला जज होते है और सिविल जज स्तर के एक न्यायिक अधिकारी को जिला प्राधिकरण का सचिव नियुक्त किया जाता है। पुलिस अधीक्षक, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिला शासकीय अधिवक्ता (दीवानी, फौजदारी एवं राजस्व) भी जिला प्राधिकरण के पदेन सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा माननीय मुख्य न्यायमूर्ति जी के परामर्श से 6 अन्य सदस्यों के नाम निर्दिष्ट किया जाता है।[1]

उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति के अध्यक्ष उच्च न्यायालय के सेवारत न्यायाधीश हैं और उच्च न्यायालय के संयुक्त निबन्धक स्तर के एक अधिकारी को इस समिति के सचिव तथा लखनऊ खंडपीड में कार्यरत संयुक्त निबन्धक स्तर के अधिकारी को लखनऊ स्थित उच्च न्यायालय विधिक सेवा उपसमिति के सचिव के रूप में नियुक्त किया जाता है। उच्च न्यायालय समिति के इलाहाबाद में राज्य सरकार के ज्येष्ठतम मुख्य स्थायी अधिवक्ता, लखनऊ में राज्य सरकार के ज्येष्ठतम मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अध्यक्ष हाईकोर्ट बार एशोसिएशन इलाहाबाद, अध्यक्ष एडवोकेट एशोसिएशन हाईकोर्ट, इलाहाबाद, अध्यक्ष बार एशोसिएशन लखनऊ, निबन्धक उच्च न्यायालय, अपर

---

1. कानूनी सेवा कार्यक्रम क्यों, कैसे और किसके लिए : उत्तर प्रदेश विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा प्रकाशित पत्रिका

निबन्धक उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ के पदेन सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त 9 व्यक्तियों को उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति जी के द्वारा सदस्य के रूप में नाम निर्दिष्ट किया जाता है।

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, उच्च न्यायालय, विधिक सेवा समिति/उपसमिति तथा जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किए जा रहे हैः–

1. पात्र व्यक्तियों को विधिक सेवा उपलब्ध कराना।
2. लोक अदालतों का आयोजन करके उक्त समझौते के माध्यम से विवादों का निपटारा करना।
3. निवारक और अनुकूलन विधिक सहायता कार्यक्रमों का संचालन करना।
4. विधिक सेवा उपलब्ध कराने हेतु अत्यधिक प्रभावी एवं कम खर्चीली योजनायें तैयार करके उन्हें क्रियान्वित करना।
5. ग्रामीण क्षेत्रों, गन्दी बस्तियों या श्रमिक कालोनियों में समाज के कमजोर वर्गो को उनके विधिक अधिकारों की जानकारी देने हेतु विधिक साक्षरता शिविरों का आयोजन करना।
6. पारिवारिक विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निपटाने हेतु परिवार परामर्श केन्द्रों की स्थापना करना। वर्तमान में मुख्य रूप से निम्न प्रकार कानूनी सहायता कार्यक्रमों का सम्पादन किया जा रहा है–

(क) <u>परिवार एवं सुलह समझौता केन्द्र की स्थापना</u> :

प्रदेश के प्रत्येक जनपद में परामर्श एवं सुलह समझौता केन्द्र की स्थापना की गई है। जिसमें सामाजिक कार्यकर्ता, न्यायिक अधिकारियों द्वारा संधि वार्ता के आधार पर

पारिवारिक एवं अन्य विवादों का सुलह समझौते के आधार पर निस्तारण कराया जा रहा है यह प्रयत्न किया जा रहा है कि समस्त जिले में सुलह समझौता परामर्श केन्द्रों के माध्यम से अधिक से अधिक वैवाहिक पारिवारिक सिविल एवं अन्य विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निस्तारित करा दिया जाये।

(ख) लोक अदालतों का आयोजन :

राज्य प्राधिकरण उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति तथा विधिक सेवा प्राधिकरणों द्वारा समय–समय पर उच्च न्यायालय तथा दीवानी न्यायालयों में लोक अदालतों का आयोजन किया जा रहा है। दिसम्बर 2000 तक उत्तर प्रदेश में कुल 4924 लोक अदालतों का आयोजन करके 39 लाख से अधिक वादो का निस्तारण कराया जा चुका है।

लोक अदालतों में मुख्य रूप से मोटर दुर्घटना प्रतिकर सम्बन्धी मामले, पारिवारिक मामले, दीवानी मामले तथा शासकीय अपराधिक मामले, बैंक ऋण एवं उपभोक्ता सम्बन्धी विवाद सुलह समझौते के आधार पर तय कराये जाते है लोक अदालतों की मुख्य विशेषता यह है कि लोक अदालतों का अधिनिर्णय दीवानी न्यायालय की डिक्री के समतुल्य है और पक्षकारों पर बाध्यकारी है तथा लोक अदालत के अधिनिर्णय के विरूद्ध किसी भी न्यायालय में कोई भी अपील या पिटीशन दायर नहीं की जा सकती है। इसके साथ ही जिन मुकदमों में पक्षकार लोक अदालत के माध्यम से सुलह समझौता करते है उन वादों में पक्षकारों द्वारा अदा की गयी कोर्टफीस भी उन्हें वापस कर दी जाती है।

इसके साथ ही लोक अदालत के अवसर पर विशेष रूप से आयोजित शिविरों के माध्यम से लघु अपराधिक वादों श्रम, राजस्व, स्टाम्प आदि वादों का भी निस्तारण कराया जा रहा है जिससे वादकारियों को सस्ता एवं सुलभ न्याय प्राप्त हो रहा है।

(ग) विधिक साक्षरता/जागरूकता कार्यक्रम :

समाज के कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को दिन प्रतिदिन काम आने वाले कानूनों की जानकारी देने एवं उनके हित में बनाई गई योजनाओं का लाभ दिलाने के उद्देश्य से समय–समय पर और दूरस्थ क्षेत्रों में विधिक साक्षरता शिविरों एवं विधिक जागरूकता कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जा रहा है। इन योजनाओं के माध्यम से सामान्य जनता को विधिक साक्षरता उपलब्ध करायी जाती है और मुख्य–मुख्य विधिक विषयों पर सरल भाषा में प्रकाशित करायी गयी ज्ञानमाला पुस्तकों को भी निःशुल्क वितरित किया जाता है। इसके अतिरिक्त बड़े बड़े मेलों और प्रदर्शनियों में भी कानून सहायता कार्यक्रमों के प्रचार हेतु कैम्प आयोजित किये जाते है और होर्डिंग्स, पम्पलेट्स तथा हैण्ड बिल्स के माध्यम से विभिन्न कानूनी सहायता कार्यक्रमों का प्रचार किया जा रहा है।

(घ) कानूनी सेवाएं प्रदान करना :

समाज के कमजोर एवं निर्बल वर्ग के व्यक्तियों को निःशुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध कराना इस प्राधिकरण का मुख्य उद्देश्य है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(अ) कानूनी सेवा प्राप्त करने हेतु पात्रता :

कोई भी ऐसा व्यक्ति निःशुल्क कानूनी सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है जिसकी समस्त श्रोतों से वार्षिक आय 25 हजार रूपये तक है। इसके अतिरिक्त निम्न श्रेणी के व्यक्ति भी निःशुल्क कानूनी सेवा प्राप्त करने के अधिकारी है और उनके लिए वार्षिक आय की कोई सीमा निर्धारित नहीं है।

1. अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य।
2. संविधान के अनुच्छेद 23 में तथा निर्दिष्ट मानव दुर्व्याचार बेगार का सताया हुआ।
3. स्त्री या बालक।

4. मानसिक रूप से अस्वस्थ या अन्यथा असमर्थ।

5. अनपेक्षित अभाव जैसे बहुविनाश, जातीय हिंसा, अत्याचार, बाढ़, सूखा, भूकम्प या औद्योगिक विनाश की दशाओं के अधीन सताया हुआ व्यक्ति।

6. कोई औद्योगिक कर्मकार।

7. अभिरक्षा में जिसके अन्तर्गत अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम 1956 की धारा 2 के खण्ड (6) के अर्थ में किसी संरक्षणग्रह में या किशोर न्याय अधिनियम 1986 की धारा 2 के (न) के अर्थ में किसी किशोर ग्रह में या मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 की धारा 2 के खण्ड (6) के अर्थ में किसी मनोचिकित्सीय अस्पताल या मनोचिकित्सीय परिचर्चा गृह में अभिरक्षा में रखा गया व्यक्ति।

(ब) जिन मामलों में कानूनी सेवा प्रदान नहीं की जायेगी :

निम्नलिखित मामलों में किसी व्यक्ति को कानूनी सेवा प्रदान करने से इन्कार किया जा सकता है:–

1. न्यायालय की अवमानना के मामले में।

2. निर्वाचन से सम्बन्धित कार्यवाही में।

3. मानव का दुर्व्यहार के पीड़ित के सिवाय अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 के अधीन कार्यवाहियों में।

4. सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अधीन कार्यवाहियों में सिवाय किसी व्यक्ति के जो इस अधिनियम के अधीन किसी निर्योग्यता के अधीन रखा गया हो।

5. किसी व्यक्ति को जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन किये गये किसी अपराध का अभियुक्त हो।

(स) <u>कानूनी सेवा प्रदान करने का स्वरूप</u> :

कानूनी सेवा प्राप्त करने वाले पात्र व्यक्ति को निःशुल्क अधिवक्ता की सेवायें उपलब्ध कराने के साथ ही न्याय शुल्क तथा विभिन्न अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपियां प्राप्त करने में होने वाली व्यय की प्रतिपूर्ति भी एक निश्चित सीमा तक की जाती है।

(द) <u>विधिक सेवा कैसे प्राप्त की जाय ?</u> :

उच्च न्यायालय/दीवानी न्यायालय में कानूनी सेवा प्राप्त करने के लिए कोई भी पात्र व्यक्ति क्रमशः उच्च न्यायालय विधि सेवा समिति/उपसमिति एवं दीवानी न्यायालय में स्थित जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के सचिव को सादे कागज पर अथवा संलग्न प्रारूप पर आवेदन पत्र प्रस्तुत कर सकता है जिसमें मुकदमे से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण दिया जायेगा और पात्रता के सम्बन्ध में समस्त श्रोतों से आय का प्रमाण पत्र अथवा जाति प्रमाण पत्र संलग्न किया जायेगा। आय में सम्बन्धित प्रमाण पत्र स्वयं के शपथ पत्र के माध्यम से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

(य) <u>विधिक सेवा प्रदान किये जाने वाले व्यक्ति का दायित्व</u> :

प्रत्येक विधिक सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने आवेदन पत्र में कोई तथ्य न छिपाये और जिला प्राधिकरण/उच्च न्यायालय समिति को पूर्ण सहयोग प्रदान करे। यदि विधिक सहायता प्राप्त व्यक्ति द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता है अथवा अधिवक्ता के साथ सहयोग नहीं किया जाता है अथवा उसके द्वारा व्यक्तिगत तौर पर अपना वकील नियुक्त कर लिया जाता है तो उसे उपलब्ध कराई गयी कानूनी सहायता वापस ली जा सकती है।

= = = =0= = = =

अध्याय– 3

कानूनी सहायता का प्रमुख साधन– लोक अदालतें

(अ) लोक अदालतों की अवधारणा

(ब) लोक अदालतों के उद्देश्य

(स) लोक अदालतों का उद्‌भव एवं विकास

(द) लोक अदालतों का संगठन, प्रक्रिया, क्षेत्राधिकार एवं शक्तियाँ

"न्याय में देरी न्याय को नकारना है" यह कहावत प्रायः प्रयुक्त की जाती है। न केवल आज बल्कि प्रारम्भ से ही न्याय में विलम्ब को न्याय व्यवस्था की एक गम्भीर त्रुटि माना जाता है और इसे संविधान में घोषित सामाजिक न्याय के लक्ष्य के मार्ग में एक प्रमुख बाधा माना जाता है।

पिछले कुछ वर्षो में इस विषय पर काफी बहस हुयी है। न्यायालयों में एकत्र होता मुकदमों का बोझ तथा विवादों के निस्तारण में लगता लम्बा समय, चिन्तकों के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बना हुआ है। इस समस्या का हल निकालने के लिए विधायक, बुद्धिजीवी, राजनीतिक तथा न्यायविद् समय–समय पर प्रयास करते रहे हैं। इसके लिए न्यायालयों और न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि की गयी है। लेकिन इससे कोई सन्तोषजनक हल नहीं निकल पाया। संविधान की भावना एक ऐसे न्याय को देने की है जो गरीबों और दलितों को भी उसी प्रकार प्राप्त हो जैसा सम्पन्नों को प्राप्त होता है।

न्यायालयों से मुकदमो का बोझ कम करने की चिन्ता और संविधान में वर्णित न्याय संबंधी उद्देश्य को प्राप्त करने के प्रयासों से **"लोक अदालत"** का विचार अस्तित्व में आया जहां छोटे मुकदमों का निपटारा जल्दी सौहार्दपूर्ण तरीके से तथा स्थायी रूप से होता है। यह लोकहित–वाद के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रयोग है। यह आशा की जाती है कि इससे हमारे देश के न्यायतन्त्र में एक **"क्रान्तिकारी परिवर्तन"** दृष्टिगोचर होगा।[1]

लोक अदालत की अवधारणा :

भारत में लोक अदालत का विचार यद्यपि नया है, लेकिन हमारे देश में **"पंच परमेश्वर"** व **"न्याय पंचायत"** की अत्यन्त पुरानी धारणायें पायी जाती है। लोक अदालत का विचार इन पुराने विचारों का एक विस्तार है। लोक अदालत का सार इसके स्वैच्छिक चरित्र और बातचीत के द्वारा हल किये गये निर्णयों पर आधारित है। इसमें वादी अपनी इच्छा

1. आशुतोष सिन्हा : लोक अदालत (लेख) नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली, 26 जनवरी 1986

से आता है, उस पर भागीदारी करने के लिए कोई दबाव नहीं होता। अगर उन्हें यह लगता है कि वे किसी निर्णय पर पहुंच सकते हैं तो वे भागीदारी करते है, अन्यथा नही। ये दोनों पक्षों की जिम्मेदारी है कि वे किसी निष्पक्ष और साफ सुथरे निर्णय पर पहुंचे। यदि विवादित पक्षों को निर्णय पंसद नहीं आता तो वे नियमित न्यायालयों में जाकर न्याय प्राप्त कर सकते है।

लोक अदालत में जनता के सदस्य जिसमें कानूनी व्यवसाय के लोग शामिल होते है, दोनों पक्षों को सुलह कराने में मदद करते हैं और स्थापित कानूनों के अन्तर्गत उन्हें उनके अधिकारों और जिम्मेदारियों के विषय में बताते हैं तथा सामान्य परिस्थितियों में अदालत का रूप स्पष्ट करते है। "कानूनी सहायता समिति" तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं की टोलियां लोगों को, विवादों को निपटाने का प्रयत्न करने के लिए राजी करती है। और विषय से सम्बन्धित कानूनों की जानकारी देती है।[1]

लोक अदालत का सिद्धान्त लोगों के विवादों को बातचीत से, सम्मति से, समझा–बुझाकर और सांत्वना देकर सुलझाने पर बल देता है और लोगों की इच्छानुसार जल्दी और किफायती तरीके से न्याय दिलाता है।

संक्षेप में लोक अदालत का सिद्धान्त जल्दी और सस्ते तरीके से न्याय दिलाना है। जिसमें समाज के प्रभावी लोग और न्यायाधीश हिस्सा लेते है और बातचीत तथा आपसी सहमति (सम्मति) द्वारा अपने झगड़ों को सुलझाते है।[2]

9 अगस्त, 1988 को दिल्ली में आठवीं लोक अदालत का उद्‌घाटन करते हुए दिल्ली के तत्कालीन गवर्नर **रोमेश भण्डारी** ने कहा **"लोक अदालत के सिद्धान्त के जरिये न्याय दिलाने के पारम्परिक तरीके को आज की परिस्थितियों के अनुसार ढाल दिया गया है"।** उन्होंने इसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि "इस नवीन पद्धति से न्याय

---

1. माधव मेनन : लोक अदालत इन दिल्ली दि हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली
2. दीवान पारस : जस्टिस एट डोर स्टेप (लेख) ट्रि ब्यून (चंडीगढ) 25 दिसम्बर, 1985

जल्दी, सस्ता और गरीबों की पहुंच में हो गया है। लोक अदालत न्याय के पारम्परिक तरीके (लोक पंचायत) को उचित व नया रूप देती है। जहां विवाद सुलझाने के लिए लोगों के विचार लिए जाते है"।[1]

सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश **इ0 एस0 बेंकटरमैया** ने लोक अदालत को **"कृष्ण सन्धि"** (महाभारत ग्रन्थ में भगवान कृष्ण द्वारा कौरवों को दिया गया सन्धि प्रस्ताव) कहा था उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुये कहा– **"यदि सम्बन्धित विवाद रखने वाले पक्ष इसके सिद्धान्त के अनुसार आचरण नहीं करते है तो उन्हें वास्तविकता में कानूनी महाभारत लड़नी होगी"।**[2]

लोक अदालत व्यवस्था वर्तमान न्यायिक व्यवस्था की स्थानापन्न नहीं वरन् पूरक के तौर पर देखी जाती है, क्योंकि यह मुकदमों के बोझ को कम करती है।

प्रो0 **पारस दीवान** ने लोक अदालत व्यवस्था को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा दिये गये **"स्वराज"** और **"सर्वोदय"** के जुड़वां विचार का व्यवहारिक रूप कहा है। स्वराज का विचार केवल विदेशी शासन से मुक्ति ही नहीं, बल्कि पिछड़ेपन, गरीबी और निरक्षरता से छुटकारे को भी शामिल करता है। सर्वोदय के सिद्धान्त का अर्थ है गरीब व अमीर के भेद से ऊपर उठकर सभी का अभ्युदय, यह हमें रचनात्मक एवं प्रभावी रूप से उस तबके के लिए काम करने को प्रेरित करता है जो कि शताब्दियों से शोषित होकर गरीबी और अज्ञानता के गहरे कीचड़ में फंसे हुये है।[3] भारतीय संवधिान सभी प्रकार के न्याय सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक, विधि के समक्ष समता एवं संरक्षण की वकालत करता है।

इसलिए 'लोक अदालत' की अवधारणा में कुछ भी नया नहीं है यह मध्यस्थता और सांमजस्य के द्वारा प्रभावी कानूनी तन्त्र के निर्माण को एक व्यवहारिक रूप देने का प्रयास है। यह अदालत से बाहर विवाद सुलझाने का असरदार तरीका है जो सम्बन्धित पक्षों के बीच

---

1. द हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली 9 अगस्त, 1993
2. इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली 29–08–1993 पृ0 2
3. पारस दीवान : दि जस्टिस एट डोर स्टेपआक पीपुल, दि लोक अदालत सिस्टम, लीगल एड न्यूजलेटर, अप्रैल–जून 1992 पृ0 10

प्रभावशाली एवं अनुभव वाले लोगों की मध्यस्थता से संभव होता है। यह पंचायत व्यवस्था का ही प्रतिरूप है, जिसने वर्षो तक हमारे गांवों में कार्य किया है।[1]

प्रायः यह माना जाता है कि भारतीय बीच–बचाव या पंचायत से निर्णय कराने की अपेक्षा मुकदमे बाजी से अदालतों के द्वारा विवादों का हल निकालने की कोशिश करते है। यहां पूरी ईमानदारी के साथ यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि अब तक न्याय की ऐसी कोई सस्ती एवं प्रभावशाली व्यवस्था नहीं खोजी गयी है जो कि अदालतों के बिना संतोषजनक रूप से विवादों को सुलझा सके। आन्तरिक रूप से ज्यादातर विवाद ऐसे होते है जिसमें कानून का कोई उलझा हुआ अथवा गंभीर प्रश्न नहीं होता जिसके लिए न्यायालय के समक्ष जाने की आवश्यकता पड़े। यदि आरम्भ से ही समाज के प्रभावी सदस्य एक सकारात्मक भूमिका अदा करें तो वे सम्बन्धित पक्षों को बातचीत के जरिये सुलझाव करने को राजी करने में सफल हो जायेंगे और विवाद नहीं होंगे।

यदि बातचीत असफल हो जाती है तो मध्यस्थता के जरिये एवं उसके असफल होने पर पंचायत और अन्त में अदालत के लिए सलाह दी जा सकती है। चूंकि भारतीय न्यायिक व्यवस्था अत्यधिक व्यवसायिक है, इसलिए इसके सदस्यों को आरम्भिक अवस्था में ही अदालत की दखलंदाजी के बिना विवाद को खत्म करने का प्रयास करना चाहिए जैसा कि अन्य देशों में होता है ताकि अदालत के समय को उन मुकदमो के लिए बचाया जा सके जिसमें कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न छिपा होता है।

एक बार मुकदमा अदालत में जाता है तब यह पंक्ति में लग जाता है लम्बे समय तक लटकने के कारण सम्बन्धित पक्षों के बीच कड़वाहट और दूरियों को बढ़ा देता है। इस प्रकार विवादों के हल को और भी मुश्किल बनाता है। न्यायमूर्ति **ए0 एम0 अहमदी** कहते है कि **"बातचीत का जो अवसर मुकदमे की प्रारम्भिक अवस्था में खो दिया जाता है।**

1. एच0 डी0 शौरी : क्लोज लुक एट लोक अदालत, ट्रिब्यून (चंडीगढ) 5–3–1986

वह "लोक अदालत" नामक व्यवस्था की नवीन पद्धति से देने का प्रयास किया जाता है। बातचीत के जरिये एक हल निर्णय तक पहुंचने के लिए "लोक अदालत" एक प्रभावी मंच है"।[1]

लोक अदालतों का उद्देश्य :

लोक अदालत का मुख्य उद्देश्य सांमजस्यपूर्ण एवं ऐच्छिक तरीकों से विवाद को सुलझाना है। लोगों को दैनिक जीवन में काम आने वाले कानून के विषय में जानकारी देकर, प्रारम्भिक न्यायिक व्यवस्था की शिक्षा देकर उन्हें अधिकारों और कर्तव्यों के विषय में सजग बनाती है। सामाजिक कार्यकर्ताओं को अतिरिक्त कानूनी बल के रूप में कार्य करने के लिए तैयार करती है।[2]

लोक अदालत के उद्देश्यों को बताते हुये भारत के उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश **श्री आर0 एन0 मिश्रा** ने 29 अप्रैल को नई दिल्ली में कहा **"लोक अदालत का उद्देश्य शीघ्रता पूर्वक और किफायत से विवाद सुलझाना ही नहीं, बल्कि लोगों को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करना भी है। इसका उद्देश्य लोगों को उन अधिकारों के बारे में सजग बनाना है जो कि उनको संविधान द्वारा दिये गये है, साथ ही समाज के कमजोर तथा निम्न सुविधा प्राप्त वर्ग जो न्याय के लिए अदालत नहीं जा सकते, को न्याय दिलाना है"**।[3] भू0 पू0 कानून राज्य मन्त्री पूर्व न्यायाधीश **एच0 आर0 भारद्वाज** का मत है– **"वर्षो से न्याय निरन्तर मंहगा होता जा रहा है और सामान्य व्यक्ति को अपने छोटे–छोटे झगड़े सुलझाने के लिए दूर–दूर तक न्याय लेने जाना पड़ता है। लोक अदालत व्यवस्था और कानूनी सहायता योजना को समाज के कमजोर वर्ग को कम से कम समय में सस्ते से सस्ता न्याय दिलाने के लिए खोजा गया है"**।[4]

---

1. जस्टिस ए0 एम0 अहमदी, भारत के उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश द्वारा, 6–11–91 को वार्सिलोना में आयोजित "विश्व विधि वेत्ता" सम्मेलन में संबोधन, प्रकाशित लीगल एड न्यूज लेटर जून 92 मार्च 93 पृ0 19
2. पारस दीवान : जस्टिस एट डोर स्टेप (ट्रिब्यून) चंडीगढ़, दिसम्बर 29, 1985
3. नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली अप्रैल 30, 1988 पृ0 3
4. नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली अप्रैल 30, 1988 पृ0 3

यह सत्य है कि न तो व्यापक विधायी घोषणायें और न ही महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय उन लोगों के लिए थोड़ा सा भी काम आ सकते है, जिनको उनके अधिकारों के लिए लागू कानूनों और विभिन्न कारणों के फैसलों के विषय में कोई जानकारी नहीं है। लोक अदालत का उद्देश्य गरीबों और पिछड़े वर्गो के अधिकारों के लिए कानूनी शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाना है।

लोक अदालत और कानूनी सहायता शिविर प्रायः पूरक के रूप में प्रयुक्त होते है दोनों का प्रमुख उद्देश्य उन विवादों को सुलझाना है जो न्यायालय तक नहीं पहुंचे है या जो न्यायालय में लटके हुये है। उनका लक्ष्य लोगों तक न्यूनतम कानूनी साक्षरता एवं प्राथमिक न्यायिक व्यवस्था की जानकारी पहुंचाना, जमीनी स्तर पर उनकी भागीदारी संभव बनाना, सामाजिक कार्यकताओं को अतिरिक्त कानूनी बल की तरह कार्य करने के लिए शिक्षित करना, प्रारम्भिक न्याय दिलाना और अन्ततः सामंजस्यपूर्ण तकनीकी व स्वैच्छिक कार्यो के जरिये सामाजिक न्याय दिलाना है। ये सभी वे महत्वपूर्ण उद्देश्य है जो कानून के शासन और प्रजातान्त्रिक सरकार का समर्थन करते है और न्याय को पिछड़े क्षेत्रों की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से के द्वार तक पहुंचाते हैं।[1]

लोक अदालत एक अनुभव है जो कि गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता दिलाने के लिए ही नहीं बल्कि गरीबी और शोषण के खिलाफ युद्ध में ''कानूनी तन्त्र'' को शामिल करने तथा कानूनी व्यवस्था को समाज के लिए अधिक प्रासंगिक बनाता है।

लोक अदालत आन्दोलन अधिवक्ताओं की नयी मौलिक तथा बहुआयामी प्रतिभा का प्रयोग सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को करने का अवसर देता है। यह मुकदमे बाजी को गरीबों के जीवन का महत्वपूर्ण एवं ध्यान देने योग्य हिस्सा नहीं मानता है। इसलिए अदालत को कानूनी कार्यवाहियों का केन्द्र बताने से इन्कार करता है।

---

1. एन0 आर0 माधव मेनन : द लोक अदालत एक्सपेरीमेन्ट(हिन्दुस्तान टाइम्स) नई दिल्ली अक्टूबर 5,1985 पृ0 9

न्यायालय के विभिन्न स्तरों पर अत्यधिक मात्रा में अधूरे मुकदमे, न्यायिक प्रशासन के समक्ष आने वाली समस्याओं में अग्रणी हैं। इस विषय पर सरकार एवं न्यायधीशों के द्वारा बहुत सारी संगोष्ठियां आयोजित की गई है। लोक अदालत का विचार इस समस्या के समाधान का उपाय प्रतीत होता है। यू0 एन0 आई0 के साथ एक साक्षात्कार में भारत के उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश **वेंकटरमैया** ने कहा था कि **''सामाजिक और व्यक्तिगत शान्ति को बढावा देने में और देश के न्यायालयों में अधूरे मुकदमो की समस्या सुलझाने में लोक अदालत एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है''**।[1]

लोक अदालत का उद्भव एवं विकास :

अदालती मुकदमे बाजियों के विकल्प के रूप में विवादी विभिन्न प्रकार के तरीकों का विवाद सुलझाने के लिए सहारा ले रहे है जो कि अनौपचारिक, तकनीक में साधारण विधि में आसान और प्रशासन में सस्ते है। न्यायिक सुधार अब राष्ट्रीय कार्यसूची का विषय बन चुका है।

लोक अदालत के खोजकर्ता भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश **पी0 एन0 भगवती** है जिन्होंने भारत में लोक अदालत की यान्त्रिकी के जरिये न्याय को फैलाने वाले प्रभावी तरीके पर सामाजिक जोर दिया है।[2]

न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती ने यह प्रयोग तब शुरू किया जब वे गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे। 1971 में गुजरात सरकार ने गरीब लोगों एवं पिछड़े वर्ग के लिए कानूनी सहायता के प्रश्न पर एक समिति गठित की। समिति की अध्यक्षता न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती ने की। इस समिति ने 15 अगस्त 1971 में इस बावत विवरण प्रस्तुत किया जिसमें कानूनी सहायता के लिए सकारात्मक एवं व्याख्यात्मक सुझाव दिये। यह विवरण गुजरात सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया और कानूनी सहायता योजना गुजरात में सन् 1972 में सरकार द्वारा दिए गए आदेशों के अनुरूप लागू कर दी गयी।

---

1. सी0 जी0 स्ट्रेसेज : रोल आफ लोक अदालत (इण्डियन एक्सप्रेस) अगस्त 19, 1989 पृ0 2
2. शौरी : क्लोज लुक एट लोक अदालत (ट्रिव्यून) मार्च 5, 1985

1977 में भारत के संविधान के भाग चार के अधिनियम 39 ए जिसमें राज्य के नीति निदेशक तत्व है, को शामिल करके संविधान में संशोधन किया गया। **अधिनियम 39** ए इस प्रकार है **"राज्य कानूनी व्यवस्था के कार्य को सुनिश्चित करेगा, समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा देगा, विशिष्ट रूप से आवश्यक व्यवस्थापन या योजना का किसी अन्य तरीके से मुफ्त कानूनी सुविधा प्रदान करेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कोई भी नागरिक आर्थिक या किसी अन्य अक्षमता के कारण न्याय प्राप्त करने वाले अवसरों से वंचित न रह पाये"**।[1]

संवैधानिक उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिए तथा पर्याप्त कानूनी सहायता को देश में समान रूप से स्थापित करने के लिए सरकार ने 1976 में समिति गठित की, उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती एवं न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर इस समिति के सदस्य थे। इस समिति ने अपना विवरण 1977 में **"रिपोर्ट आन नेशनल ज्यूडीकेयर इक्वल जस्टिस सोशल जस्टिस"** नाम से पेश किया।

यह विवरण पत्र विस्तृत है इसके सुझावों के कारण भारत सरकार ने 1980 में भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति **पी0 एन0 भगवती** की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। जिसका नाम **"कमेटी फार इम्पलीमेटेशन आफ लीगल एड स्कीम्स"** (CILAS) पड़ा।[2]

CILAS को स्थापित करने का लक्ष्य सभी प्रदेशों और केन्द्र शासित प्रदेशों में कानूनी सहायता कार्यक्रम को समान रूप से लागू करना और दिशा देना था। कानूनी सहायता कार्यक्रम को पूरे देश में लागू करने के लिए इस समिति ने एक आदर्श योजना बनाई। सरकार कानूनी सहायता के कार्यक्रम से सम्बन्धित है क्योंकि यह संवैधानिक आज्ञा पत्र का क्रियान्वयन है।

---

1. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 39 ए जिसे 42वें संशोधन अधिनियम के द्वारा शामिल किया गया।
2. अल्टरनेट डिस्प्यूट रिजोल्यूशन, क्राइस्ट चर्च, न्यूजीलैण्ड में 23–27 अप्रैल 1980 के बीच "कामन बैल्थ ला" मंत्रियों की बैठक में भारत सरकार द्वारा जारी कागजात।

1981 में न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती ने कानूनी सहायता और सलाह की नई योजना शुरू की जो कि सभी राज्यों द्वारा स्वीकार कर ली गयी। 30 अप्रैल 1982 को यह गुजरात सरकार द्वारा एक प्रस्ताव के जरिये लागू कर दी गयी। गुजरात सरकार ने एक **''कानूनी सहायता व परामर्श बोर्ड''** गठित किया। जिसके सभापति मुख्यमन्त्री व उपसभापति उच्च न्यायालय के न्यायधीश बने। ''गुजरात उच्च न्यायालय कानूनी सहायता समिति'' भी गठित की गयी। जिसके सभापति गुजरात उच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीश न्यायमूर्ति मजूमदार थे।

मार्च 1982 में गुजरात राज्य में गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम0 पी0 ठक्कर ने पहली बार लोक अदालत प्रक्रिया प्रारम्भ की। **देश की पहली लोक अदालत गुजरात के 'जूनागढ़' जिले के 'ऊना' कस्बे में लगी** जिसका उद्घाटन भारत के उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन न्यायाधीश डी0 ए0 देसाई ने किया। इस पद्धति की सफलता का आभास गुजरात राज्य में हुआ जब 10,000 हजार से भी अधिक मुकदमे इन अदालतों के जरिये सुलझाये गये। कुछ उपयोगी काम तमिलनाडु और महाराष्ट्र में भी हुआ, दिल्ली, उ0 प्र0, उड़ीसा, हिमांचल प्रदेश तथा राजस्थान आदि प्रदेशों ने भी इस व्यवस्था की उपयोगिता को देखा।

भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के तौर पर न्यायमूर्ति पी0 एन0 भगवती के काल में 'लोक अदालत' व्यवस्था एक आन्दोलन में बदल गयी। लगभग हर सप्ताह एक या दूसरी जगह इस तरह की अदालतों के आयोजित होने की खबर सुनायी देती थी। उच्च न्यायालयों ने भी अपने न्याय के दायरे में लोक अदालतों के सत्र आयोजित कराने के लिए कार्यक्रम बनाये।

''उच्च न्यायालय में पहली लोक अदालत 1987 में राजस्थान में जयपुर में लगी।[1]

---

1. टाइम्स आफ इण्डिया, नवम्बर, 8 1987

न्यायमूर्ति श्री पी0 एन0 भगवती के उत्तराधिकारियों ने लोक अदालत आन्दोलन को मजबूत करने के लिए अपने प्रयास जारी रखे। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति आर0 एन0 मिश्रा ने कहा कि लोक अदालतों ने अपनी क्षमता उच्च स्तर तक साबित कर दी है। ये उच्चतम न्यायालय में भी आयोजित की जायेगी।[1]

लोक अदालत को कानूनी स्तर दिलाने के प्रयास :

पहले बहुत सी जगहों पर लोक अदालतें बहुत सारे मुकदमों को शीघ्रतापूर्वक कम कीमत में पंचायत के जरिये या पक्षों के बीच में सुलह कराके सुलझाने के लिए बुलायी जाती थी। वर्तमान में लोक अदालत स्वेच्छापूर्वक, सांमजस्य पूर्व तरीके से काम करने वाली संस्था है। इसने त्वरित न्याय प्रशासन में स्वयं को अग्रदूत सिद्ध किया है। इसलिए ऐसा समझा गया जिला, प्रदेश एवं राष्ट्रीय स्तर पर कानूनी सहायता कार्यक्रम को प्रभावी गति प्रदान करने के लिए एक वैधानिक न्यायिक सेवा प्राधिकरण का गठन उचित होगा।

यह भी महसूस किया गया कि इस प्रकार का कानूनी आधार सामान्य अदालतों के बोझ को कम ही नहीं करेगा बल्कि न्याय को गरीब और जरूरत मंद के द्वार तक ले जायेगा और न्याय को अधिक त्वरित और सस्ता बनायेगा।

विधिक सेवाओं प्राधिकरण अधिनियम 1987 :

लोक अदालतों को कानूनी आधार प्रदान करने के लिए 29 अगस्त, 1981 को एक विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किया गया। 30 धाराओं वाला यह विधेयक सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए महत्वपूर्ण था।[2] संसद ने सन् 1987 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम पारित कर दिया और 11 अक्टूबर 1987 को इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गयी। लेकिन कतिपय कारणों से इस विधेयक का क्रियान्वयन 9–11–95 से किया गया। इस अधिनियम का प्रारंभ निम्नांकित शब्दों से होता है–

---

1. टाइम्स आफ इण्डिया, नवम्बर, 8 1987
2. कुसुम : सक्सेस आफ लोक अदालत हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली मई 12, 1989

"समाज के कमजोर वर्गों को यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये, निःशुल्क एवं सक्षम विधिक सेवा उपलब्ध कराने के लिए विधिक सेवा प्राधिकरण का गठन करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि विधिक प्रणाली का प्रवर्तन समान अवसर के आधार पर न्याय का संबर्धन करे, लोक अदालत आयोजित करने के लिए अधिनियम"।[1]

यह अधिनियम लोक अदालतों की स्थापना के लिए प्राविधान करता है। विभिन्न पक्षों के बीच किसी भी विवाद के हल और समझौते के लिए व्यवस्था करता है चाहे उसका क्षेत्र दीवानी, फौजदारी, राजस्व और किसी भी ट्रिव्यूनल के अन्तर्गत क्यों न हो, इसके लिए विवादरत पक्षों को सम्बन्धित न्यायालय या ट्रिब्यूनल में इस प्रार्थना के साथ आवेदन करना होगा, कि वे विवाद को आपस में सुलझाना चाहते है। अधिनियम का अध्याय 6 लोक अदालतों का वर्णन करता है। इस अधिनियम का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि लोक अदालत का हर फैसला नागरिक अदालत के समकक्ष समझा जायेगा। फैसले के विरूद्ध किसी भी अन्य अदालत में अपील नहीं की जा सकती है। इस प्रकार लोक अदालत के निर्णय अंतिम होगें। यद्यपि इनमें सरलता एवं शीघ्रता पर बहुत जोर दिया जाता है लेकिन यह निष्पक्षता की कीमत पर नहीं किया जाना चाहिए। लोक अदालतें न्याय समानता और निष्पक्षता आदि कानूनी सिद्धान्तों से निर्देशित होती है। लोक अदालतों को प्रभावी रूप देने के लिए अधिनियम ने उन्हें वही अधिकार दिए है जो कोड आफ सिविल प्रोसीजर 1908 के तहत नागरिक अदालतों को मुकदमों को सुलझाने के लिए मिले है।[2]

इस अधिनियम के प्राविधानों के अनुसार लोक अदालतों में सामान्य अदालतों की भारी भरकम प्रक्रिया के स्थान पर शीघ्रतापूर्वक एवं अनौपचारिक रूप से विवाद सुलझाने पर

1. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987
2. कुसुम : सक्सेस आफ लोक अदालत, दि हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली मई 12, 1989

बल दिया जाता है। कभी–कभी शंका होती है कि क्या इससे इच्छित उद्देश्य प्राप्त होगा ? वकीलों की अनुपस्थिति में दोनों पक्ष कभी–कभी प्रक्रिया सम्बन्धी तकनीक के कारण कठिनाई महसूस कर सकते है। इस स्थिति में अदालत के पास यह देखने की अतिरिक्त जिम्मेदारी होती है कि कार्य की जानकारी या सहायता के अभाव में या वकीलों की मदद के बिना दोनों पक्षों में से कोई विपत्ति में न पड़ पाये। अधिनियम की सबसे बड़ी कमी यह है कि वही मुकदमे लोक अदालतों तक लाये जा सकते है जिनमें विवादरत पक्ष आवेदन करके यह निवेदन करते हैं कि वे विवाद का समझौता या निर्णय चाहते हैं। इस प्रकार के आवेदन पर एक मुख्य अधिकारी (एक महत्वपूर्ण व्यक्ति जिससे आवेदन किया गया है) मुकदमे को लोक अदालत ले जाने का आदेश देगा। ऐसा समझा जाता है कि जब दोनों पक्ष अपने विवाद को निपटाने के लिए राजी हो जाते है तो वे ऐसा मुख्य अधिकारी के समक्ष भी कर सकते है जिसके समक्ष मुकदमा चल रहा है। एक घुमावदार रास्ते से जाकर दोहराव, समय और श्रोतों को नुकसान कराकर कोई लाभ नहीं है।[1]

"दि लीगल सर्विस अथारिटी एक्ट 1987" ने लोक अदालतों के गठन और कार्य के विषय में विस्तृत प्रावधान किए। पर इस अधिनियम के व्यवहार में कुछ परेशानियां हुयी इसलिए न्यायमूर्ति एस0 बी0 मजूमदार और अन्य के ध्यान दिलाने पर सरकार ने इसे संशोधित किया। संशोधित विधेयक राज्य सभा के द्वारा 11 जनवरी 1991 में पास कर दिया गया और लोकसभा के समक्ष पेश किया गया जिसे मार्च 1991 में पास कर दिया गया। जिसमें प्राविधान किया गया कि धारा 107(1) और धारा 108(1) को एक साथ पढ़ा जाये। (विधेयक तब तक सुस्त रहता है जब तक वह संसद के दोनों सदनों के द्वारा मंजूर नहीं कर लिया जाता) संशोधन विधेयक इस अधिनियम के प्रावधानों पर सेक्सन 20 समेत कई संशोधन करता है। सुझाये गये संशोधनों में से एक था कि यदि लोक अदालत के समक्ष दोनों पक्ष

---

1. कुसुम : सक्सेस आफ लोक अदालत, दि हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली मई 12, 1989

नहीं मानते है तो मुकदमा खत्म नहीं होगा उसे दुबारा उस अदालत में ले जाया जायेगा जहां वो चल रहा था। इसके अलावा अधिनियम के अनुसार लोक अदालतों को लगाने से संभावित न्यायिक व्यवस्था संविधान की सामान्य अदालतों का समान्तर स्वरूप सामने आयेगा।

पर्याप्त संसदीय व्यवस्थापन के अभाव में अनेक राज्यों ने गरीबों को कानूनी सहायता दिलाने के लिए इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी स्वयं की योजनायें बनायी है। कुछ राज्यों जैसे कि बिहार, कर्नाटक इत्यादि ने गरीबों को कानूनी सहायता दिलाने के लिए अपनी विधान सभाओं में अधिनियम पारित किये है। भारत में अधिकतर राज्यों ने इस सम्बन्ध में विधायन नहीं बनाया है। लेकिन कुछ निश्चित योजनाओं और नियमों की घोषणा की है जिससे कि समाज के उपेक्षित वर्ग को कानूनी सहायता दी जा सके।[1]

<u>सुप्रीम कोर्ट में लोक अदालत</u> :

सुप्रीम कोर्ट ने पहली बार लोक अदालत 19 नवम्बर 1989 को लगायी यह 'जन न्यायालयों के विचार' के विकास के पथ में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था।[2] तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति बेंकटरमैया ने इस लोक अदालत का उद्घाटन किया। इस लोक अदालत में 396 मुकदमे आये। जिसमें 12 मोटर दुर्घटना से सम्बन्धित थे, 87 श्रम मामलों, 13 सर्विस सम्बन्धी मामले तथा 1 विवाह सम्बन्धी मुकदमा था। सुप्रीम कोर्ट के परिसर में इन मुकदमों को सुलझाने के लिए एक–एक न्यायाधीश की अध्यक्षता में 5 न्यायालय बनाये गये थे। जो विभिन्न श्रेणी के मुकदमों को देख रहे थे। सामंजस्य पैनल में विभिन्न उच्च न्यायालयों के अवकाश प्राप्त और वर्तमान न्यायाधीश शामिल किए गए थे।[3]

इससे पूर्व मुख्य न्यायाधीश बेंकटरमैया ने लोक अदालत का उद्घाटन करते हुए कहा कि एक बड़ी संख्या में इकट्ठे हुये मुकदमें जैसे भूमि सम्बन्धी, दैनिक मजदूरी सम्बन्धी स्थायी अध्यापकों तथा दिहाड़ी मजदूरों और भूमि सुधार जैसे मामले लोक अदालत के माध्यम

---

1. मोहम्मद सरदार अलीखान : कानूनी सहायता की प्रक्रिया, विधिक सहायता संवाद पत्र अक्टूबर 93 मार्च 94
2. द हिन्दुस्तान टाइम्स (एडीटोरियल) 22 नवम्बर 1989
3. द टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली नवम्बर 21, 1989 पृ0 1

से सुलझाये जा सकते है। सुप्रीम कोर्ट की बार एसोसियेशन के अध्यक्ष **डा0 वाई0 एस0 चित्रे** ने **लोक अदालत को न्यायिक प्रक्रिया के पूर्ण भारतीयकरण की दिशा में एक कदम कहा जो न केवल एक 'भूमि चिन्ह' है बल्कि एक नई दिशा को स्थापित करने वाला है।**[1]

एक सभ्य समाज में विवादों के निपटारे की प्रभावी प्रक्रिया की आवश्यकता है, समाज में **''जंगल राज''** या **''मात्स्य न्याय''** नहीं हो सकता इसलिए प्रत्येक सभ्य समाज को विवादों को सुलझाने की प्रक्रिया बनानी पड़ती है। इन विकल्पों की खोज में एक ऐसी नई प्रक्रिया की आवश्यकता है जिसकी सबल तकनीक हो, जहां अधिकारों की जानकारी दी जाये और न्याय प्रक्रिया त्वरित और सस्ती हो और औपचारिक न्याय व्यवस्था और कानूनी व्यवसाय ने इस तथ्य को अनदेखा किया है और लोगों ने मँहगे न्याय, न्याय में देरी, अनिश्चितता और विषमता पर प्रश्न करना प्रारम्भ कर दिया है।[2]

देश के बहुत से राज्यों में अब लोक अदालतें अस्तित्व में आ चुकी है, उत्तर प्रदेश में स्थायी लोक अदालतें प्रतिमाह लगने लगी है। साठ के दशक में गुजरात में प्रारम्भ के सुफल अब सारे देश में दिखने लगे है और लोगों को सस्ते और त्वरित न्याय की उम्मीद बंधने लगी है। इन अदालतों से वर्तमान न्यायिक प्रक्रिया को एक नवजीवन मिल सकता है जो मुकदमों के बोझ और मंहगे न्याय की बुराइयों से ग्रसित होकर पतन की ओर अग्रसर हो रही है। लेकिन लोक अदालत वर्तमान व्यवस्था का विकल्प नहीं बल्कि एक पूरक प्रयास है।[3]

लोक अदालतों का संगठन एवं प्रक्रिया :

प्रारम्भ में लोक अदालतों के संगठन एवं कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों अलग–अलग तरीके अपनाते थे लेकिन विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के पारित और लागू होने के बाद लोक अदालतों के संगठन और प्रक्रिया में एक रूपता लायी गयी।

---

1. द टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली नवम्बर 21, 1989 पृ0 5
2. एन0 आर0 माधव मेनन : द लोक अदालत एक्सपेरीमेंट, हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली अक्टूबर 5 1985 पृ0 91
3. पारस दीवान : जस्टिस एट डोर स्टेप, ट्रिब्यून (चंडीगढ) दिसम्बर 25, 1985

लोक अदालतों का आयोजन :

लोक अदालतें समान्यतया पहले राज्य या जिला कानूनी सहायता परामर्श बोर्ड के द्वारा आयोजित की जाती थी लेकिन उक्त अधिनियम के पास होने के बाद राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण और जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के द्वारा लोक अदालतों का आयोजन किया जाता है।

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अध्याय 6 में अनुच्छेद 19 में लोक अदालतों के आयोजन के सम्बन्ध में निम्नांकित व्यवस्थायें की गयी है–

1. अनुच्छेद 19 (1) राज्य या जिला प्राधिकरण, ऐसे अन्तराल पर और ऐसे स्थान पर तथा ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए ऐसे क्षेत्रों के लिए लोक अदालत का आयोजन कर सकता है, जिन्हें वह ठीक समझे।

2. किसी क्षेत्र के लिए आयोजित प्रत्येक लोक अदालत क्षेत्र में उतने न्यायिक अधिकारी होगें जो लोक अदालत के आयोजक राज्य या जिला प्राधिकरण द्वारा विहित किए जाये। और वैसी अर्हताएं तथा अनुभव रखने वाले ऐसे अन्य सदस्य होंगे जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाये।

3. किसी लोक अदालत को, उस क्षेत्र में, जिसके लिए लोक अदालत आयोजित की जाती है, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन गठित किसी सिविल, दाण्डिक या राजस्व या किसी अधिकरण की अधिकारिता के भीतर आने वाले किसी विषय की बावत विवाद का अवधारण करने और पत्रकारों के बीच समझौता या पारिनिर्धारण करने की अधिकारिता होगी।

लोक अदालतों के आयोजन की तैयारी :

लोक अदालतों में दो तरह के मुकदमे आते है:–

1. वे मुकदमे जो न्यायालयों में अनिर्णीत पड़े है।
2. वे मामले जो अभी न्यायालय में नहीं पहुंचे है। लेकिन न्यायालयों में जाने की स्थिति में है।

जिला एवं सत्र न्यायाधीश और आयुक्त अपने अधीनस्थ न्यायाधीशों से विभिन्न न्यायालयों में लम्बित उन मुकदमों की सूची तैयार करने को कहते है जिन्हें वे समझौते या बातचीत के द्वारा हल होना संभव मानते है। इनमें दीवानी, राजस्व, छोटे आपराधिक मामले, श्रम मामले और औद्योगिक विवाद आदि होते है। सूची तैयार होने के बाद वे विभिन्न श्रेणियों में मुकदमों को वर्गीकृत करते है और निर्धारित प्रपत्र पर सम्बन्धित पक्षों को सूचित करते है और पत्र व्यवहार करते है।

लोक अदालतों में सम्बन्धित पक्षों को उपस्थित होने की सूचना दी जाती है। प्रारम्भ में लोक अदालतों का उद्‌घाटन करने के लिए सुप्रीम कोर्ट या हाईकोर्ट के न्यायाधीश को बुलाया जाता था जिससे कि लोक अदालतों को गरिमा प्रदान की जा सके लेकिन अब स्थायी लोक अदालतें लगने के बाद स्थानीय स्तर पर ही जिला एवं सत्र न्यायाधीश तथा जिलाधिकारी आदि उपस्थित रहते है।

प्रचार अभियान :

लोक अदालतों से अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो इसके लिए स्थानीय विधिक सेवा प्राधिकरण प्रचार करते है लोगों को अपने विवादों को लोक अदालत में सुलझाने के लिए प्रेरित करते है, लोगों में विधिक जागरूकता लाने के लिए प्रचार साहित्य बाँटा जाता है।

<u>प्रशासन की संलग्नता :</u>

लोक अदालतों के आयोजन में यद्यपि जिला न्यायालय के कर्मचारी योजना बनाते है, लेकिन प्रशासनिक अधिकारियों के सहयोग के बिना यह कार्य संभव नहीं होता है। इसलिए लोक अदालतें अवकाश के दिन रखी जाती है।

'विधिक सहायता कार्यान्वयन समिति' (CILAS) ने इस सम्बन्ध में कुछ **मार्गदर्शक सिद्धान्त** निर्धारित किए है जो कि निम्नांकित हैः–

1. यह आवश्यक है कि लोक अदालतें अनुभवी और प्रतिभावान व्यक्तियों द्वारा चलाई जाये इसलिए लोक अदालत के न्यायाधीश समान्यतः सेवा निवृत्त न्यायधीशों, लोकोन्मुख भावना वाले वकीलों और विधि अध्यापकों में से होना चाहिए। चयन समुदाय में इनकी ख्याति वृत्तिक, सत्यनिष्ठा और सामाजिक कार्य के प्रति उनके सम्मान के आधार पर किया जाये।

2. लोक अदालत की धारणा नई है और कार्य उस कार्य से भिन्न है जो उन्हें सामान्य क्रम में करना पड़ा है। अतः लोक अदालत न्यायाधीशों को लोक अदालत के उद्देश्य और पद्धति और युद्ध स्तरीय विधिक सहायता कार्यक्रम से परिचित करा देना आवश्यक है।

3. लोक अदालत न्यायधीशों को किसी मानदेय का संदाय नहीं किया जाना चाहिए अपितु जब वे लोक अदालत में आते है तो उनके लिए वाहन या उसकी प्रतिभूति और आवश्यक आतिथ्य सत्कार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

4. विधिक सहायता बोर्ड के लिए यह सलाह है कि वे प्रत्येक जिला के लिए उच्च न्यायालय और न्यायाधीशों के साथ ही बार एसोशियेशन के परामर्श से एक पैनल तैयार कर लें, जिला में आयोजित लोक अदालतों के लिए अपेक्षित संख्या में न्यायाधीश (मध्यस्थ) उन्हीं में से आमेलित कर लिए जाए जो पैनल में है।

---

5. न्यायाधीशों के अलावा, लोक अदालत के लिए प्रमुख कार्मिकों में विधिक संमान्तर, समाजिक कार्यकर्ता, स्थानीय प्रशासन के कर्मचारी और बार तथा बेंच के सदस्य होने चाहिये उन सभी को लोक अदालत के उद्देश्य और पद्धति बतला दी जानी चाहिए। जिससे इस कार्य में उनकी रूचि बढ़ जाये और वे इसकी सफलता में योगदान कर सके।

6. विधि अध्यापकों और विधि विद्यार्थियों के कार्य पर विशेष बल दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रारम्भिक सर्वेक्षण और अनुसंधान करने के लिए और इसके दक्ष कार्यकरण में समर्थक सेवायें प्रदान करने के लिए वे सर्वाधिक उपयुक्त है।

7. स्थानीय प्रशासन के प्रमुख कर्मचारियों और अवस्थान के आग्रही नेताओं को महत्व दिया जाना चाहिए और उन्हें आरम्भिक समारोहों और पर्यवेक्षी कार्यो में सहयोजित किया जाना चाहिए।

8. लोक अदालत के संचालन के आरम्भ से अंत तक समाज विरोधी तत्वों पर गहरी नजर रखनी चाहिए।

9. चूंकि बैठक के न्यायाधीशों के कार्यक्रम में अनौपचारिक रूप से सहयोजित होने की संभावना है अतः राजनैतिक दलों के संभवतः उद्घाटन और विदाई समारोहों के सिवाय उलझाव से बचना वांछनीय है।

<u>न्यायालय :</u>

लोक अदालतों में न्यायाधीश प्रायः अवकाश प्राप्त या वर्तमान न्यायिक अधिकारी, वरिष्ठ लोक सेवा अधिकारी या मजिस्ट्रेट आदि होते है। प्रत्येक न्यायालय की सहायता के लिए एक सांमजस्य कर्ताओं का समूह होता है प्रायः इनकी संख्या तीन होती है। सामंजस्य कर्ताओं में प्रायः समाज सेवक, बुद्धिजीवी और समाज के प्रभावी लोग होते है। प्रत्येक लोक

अदालत की सहायता के लिए एक लिपिक होता है जो न्यायालय के सभापति के निर्देशों का पालन करता है, आपसी समझौता को तैयार करता है, अभिलेख सुरक्षित रखता है, और समझौता पर सम्बन्धित पक्षों के हस्ताक्षर कराता है।

लोक अदालत का सत्र :

एक लोक अदालत एक निश्चित स्थान पर पूरे दिन चलने वाला कार्यक्रम है। यह प्रायः अवकाश के दिन होता है जिसकी पहले से सूचना दे दी जाती है। किस तरीके से आपसी सुलह समझौता कराया जाये। इसके लिए स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता है। उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश **न्यायमूर्ति ए० एम० अहमदी** ने दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा 7 मार्च 1992 को लोक अदालत पर आयोजित एक कार्यशाला में कहा **''जहां तक संभव है हमने किसी विशेष पद्धति को आरोपित नहीं किया है हमने इसके लिए स्थानीय न्यायिक संस्थाओं को स्वतन्त्र छोड़ दिया है, हम यह स्वयं जानना चाहते है कि लोक अदालत के माध्यम से विवादों के हल की सर्वोत्तम पद्धति क्या है।''**

लोक अदालत का दृष्टिकोण :

लोक अदालतों में वे सभी पक्ष अपने मामले ला सकते है जो सुलह और समझौते के द्वारा अपने विवादों का हल चाहते है। जब एक पक्ष अपने विवाद हल के लिए आवेदन करता है तो अदालत विवाद की प्रवृत्ति जानने का प्रयास करती है। दोनों पक्षों को अपने सामने बुलाती है और समझा बुझा कर समझौता कराती है।

लोक अदालत का सार इसके ऐच्छिक चरित्र और बातचीत के द्वारा निकाले जाने वाले हल पर निहित है। यह एक ऐसा मंच है जिसमें जो वादी विवाद का हल चाहते है उन्हें मंच प्राप्त होता है। इनमें सहभागिता करने पर न तो कोई पुरस्कार मिलता है और सहभागिता

न करने पर न ही कोई बाध्यता आरोपित होती है। यह सम्बन्धित पक्षों पर निर्भर है कि वे विवाद के हल का वो हल ढूढें जो उन्हें सबसे अधिक न्यायोचित और पक्षपात रहित लगता हो। लोक अदालत तो केवल लोगों को विवादों के हल के लिए प्रेरित करती है और सम्वन्धित पक्षों को कानूनी सहायता प्रदान करती है।[1]

इस प्रकार लोक अदालत में जो दृष्टिकोण अपनाया जाता है वह विवेक और निष्पक्षता पर आधारित है। यह ऐसा हल निकालने का प्रयास करती है, जिनसे सम्बन्धित पक्षों के कानूनी अधिकार और कर्तव्य संरक्षित हो।

जब एक बार कोई हल निकल आता है तो तुरन्त अदालत के लिपिक द्वारा लिखा जाता है, और सम्बन्धित पक्षों और उनके पैरवी कर्ताओं के हस्ताक्षर होते है लोक अदालत का न्यायधीश यह देखने के बाद कि विवाद का हल बिना किसी दबाव के सुलह समझौते के आधार पर हुआ है, अपने हस्ताक्षर कर देता है। और ऐसा निर्णय एक न्यायालय का अभिलेख बन जाता है।

लोक अदालतों का क्षेत्राधिकार :

लोक अदालतों में प्रायः भूमि सम्बन्धी, पारिवारिक विवाद, भूमि अधिग्रहण सम्बन्धी विवाद, मोटर दुर्घटना सम्बन्धी विवाद आते है। **विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम का अनुच्छेद 19 (3)** लोक अदालत के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट करते हुए कहता है **''किसी लोक अदालत को, उस क्षेत्र में, जिसके लिए लोक अदालत आयोजित की जाती है, तत्सम प्रवृत्त किसी विधि के अधीन गठित किसी सिविल, दाण्डिक या राजस्व न्यायालय या किसी अधिकरण की अधिकारिता के भीतर आने वाले किसी विषय की बावत विवाद का अवधारण करने और पक्षकारों के बीच समझौता या परिनिर्धारण करने की अधिकारिता होगी।''**[2]

1. एन0 आर0 माधव मेनन : लोक अदालत इन दिल्ही हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली नवम्बर 21, 1989
2. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987

लोक अदालतों द्वारा मामलों का संज्ञान :

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 (विधिक सेवा प्राधिकरण संशोधन अधिनियम 1994) के अनुच्छेद 20 के अनुसार लोक अदालतों के द्वारा मामलों का संज्ञान निम्नांकित रूप में किया जायेगा।

1. जहां धारा 19 की उपधारा (5) के खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी मामले में उस मामले को परिनिर्धारण के लिए लोक अदालत को निर्दिष्ट करने के लिए।

   (क) उनके पक्षकार सहमत है या

   (ख) उसका कोई पक्षकार न्यायालय को आवेदन करता है और यदि ऐसे न्यायालय का प्रथम दृष्टया समाधान हो जाता है कि ऐसे परिनिर्धारण की संभावनाए है या

2. न्यायालय का समाधान हो जाता है कि वह मामला लोक अदालत द्वारा ज्ञान दिये जाने के लिए समुचित मामला है, तो न्यायालय उस मामले को लोक अदालत को निर्दिष्ट करेगा। परन्तु खंड (i) के उपखंड (ख) या खण्ड (ii) के अधीन कोई मामला लोक अदालत को ऐसे न्यायालय द्वारा पक्षकारों को सुनवाई या युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् ही निर्दिष्ट किया जायेगा अन्यथा नहीं।

3. तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुये भी धारा 19 की उपधारा (i) के अधीन लोक अदालत का आयोजन करने वाला प्राधिकरण या समिति धारा 19 की उपधारा (5) के खंड (ii) में निर्दिष्ट किसी मामले के किसी एक पक्षकार से ऐसे आवेदन की प्राप्ति पर कि ऐसे मामले को लोक अदालत द्वारा अवधारित किया जाना आवश्यक है ऐसे मामले को लोक अदालत की अवधारणा के लिए निर्दिष्ट कर सकेगी। परन्तु लोक अदालत को कोई मामला

अन्य पक्षकार को सुनवाई का युक्ति युक्त अवसर देने के पश्चात् ही निर्दिष्ट किया जायेगा, अन्यथा नही।

4. जहां कोई मामलाउपधारा (i) के अधीन लोक अदालत को निर्दिष्ट किया जाता है या जहां उपधारा (ii) के अधीन उसे कोई निर्देश किया गया है वहां लोक अदालत उस मामले या विषय का निपटारा करने के लिए अग्रसर होगी और पक्षकारों के बीच समझौता करायेगी या परिनिर्धारण करेगी।

5. प्रत्येक लोक अदालत इस अधिनियम के अधीन अपने समक्ष किसी निर्देश का अवधारण करते समय पक्षकारों के बीच समझौता कराने या परिनिर्धारण करने के लिए अत्यधिक शीघ्रता से कार्य करेगी और न्याय, साम्या, ऋजुता और अन्य विधिक सिद्धान्त द्वारा मार्गदर्शित होगी।

6. जहां लोक अदालत द्वारा इस आधार पर कोई अधिनिर्णय नही दिया गया है कि पक्षकारों के बीच कोई समझौता या परिनिर्धारण नहीं हो सका है वहां उस मामले का अभिलेख उसके द्वारा उस न्यायालय को, जिससे उपधारा (i) के अधीन निर्देश प्राप्त हुआ था, विधि के अनुसार निपटाने के लिए लौटा दिया जायेगा।

7. जहां लोक अदालत द्वारा कोई अधिनिर्णय इस आधार पर नहीं किया है कि पक्षकारों के बीच उपधारा (ii) में निर्दिष्ट विषय में कोई समझौता या परिनिर्धारण नहीं हो सका है वहां वह लोक अदालत पक्षकारों को किसी न्यायालय से उपचार प्राप्त करने की सलाह देगी।

8. जहां मामले का अभिलेख उपधारा (5) के अधीन न्यायालय को लौटाया जाता है वहां ऐसा न्यायालय ऐसे मामले पर उस प्रक्रम से कार्यवाही करेगा जिस तक उपधारा (i) के अधीन ऐसा निदेश करने से पूर्व कार्यवाही की गई थी।

लोक अदालत के अधिनिर्णय :

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 (जो 1994 में संशोधित हुआ) की धारा 21 के अनुसार लोक अदालत के अधिनिर्णय के सम्बन्ध में निम्नांकित नियम है:–

1. लोक अदालत का प्रत्येक अधिनिर्णय, यथास्थिति, सिविल न्यायालय की डिक्री या किसी अन्य अदालत का आदेश समझा जायेगा और जहां किसी लोक अदालत द्वारा धारा 20 की उपधारा (i) के अधीन उसको निर्दिष्ट किसी मामले में समझौता कराया या परिनिर्धारण किया गया है वहां ऐसे मामले में संदत्त न्यायालय, न्यायालय फीस, अधिनियम, 1870 के अधीन उपबन्धित रीति से लौटा दी जायेगी।
2. लोक अदालत द्वारा किया गया प्रत्येक अधिनिर्णय अन्तिम और विवाद के सभी पक्षकारों पर आबद्धकर होगा तथा अधिनिर्णय के विरूद्ध किसी न्यायालय में कोई अपील नहीं होगी।

लोक अदालत की शक्तियाँ :

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 (1994 में संशोधित) का अनुच्छेद 22 लोक अदालत की निम्नांकित शक्तियों का उल्लेख करता है:–

1. लोक अदालत की इस अधिनियम के अधीन बोर्ड अवधारण करने के प्रयोजनों के लिए वही शक्तियां प्राप्त होगी। जो सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन सिविल न्यायालय में, निम्नलिखित में से किसी विषय की बावत विचारण करते समय निहित होती है, अर्थात्

क. किसी साक्षी को समन कराना, हाजिर कराना और शपथ पर उसकी परीक्षा करना।

ख. किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और उसको पेश किया जाना।

ग. शपथ पत्र पर साक्ष्य ग्रहण करना।

घ. किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या दस्तावेज अथवा ऐसे अभिलेख या दस्तावेज की प्रति की अध्यपेक्षा करना और,

ङ. ऐसे अन्य विषय जो विहित किये जाये।

2. उपधारा (i) में अन्तर्विष्ट शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना प्रत्येक लोक अदालत को उसके समक्ष आने वाले किसी विवाद के अवधारण के लिए अपनी प्रक्रिया विनिर्दिष्ट करने की अपेक्षित शक्ति होगी।

3. लोक अदालत के समक्ष सभी कार्यवाही भारतीय दण्ड संहिता की धारा 193 धारा 210 और धारा 228 के अर्थ के भीतर न्यायिक कार्यवाही समझी जायेगी और प्रत्येक लोक अदालत दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजन के लिए सिविल न्यायालय समझा जायेगा। लोक अदालत आन्दोलन भारत की न्यायिक व्यवस्था के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में सामने आया है। संविधान में उल्लिखित आर्थिक, और सामाजिक न्याय को व्यवहारिक रूप देने में और न्याय को गरीबों के द्वार तक पहुंचाने में इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धिया रही है।

विधिक सहायता योजना क्रियान्वयन समिति के सचिवालय के विवरण के अनुसार 1994 तक सारे देश में 9027 लोक अदालतें लगायी जा चुकी थी जिसमें 42, 37, 147 विवादों का लोक अदालत द्वारा हल किया गया। जिसमें 2, 26, 144 मोटर दुर्घटना से सम्बन्धित मामले थे और क्षतिपूर्ति की धनराशि 485,99,09,323 रूपये थी।[1]

1994 तक लोक अदालतों द्वारा लाभान्वित होने वाले लोगों की संख्या 17,88,528 थी जिसमें अनुसूचित जाति के लोग 3,09,790 थे। अनुसूचित जनजाति के लोग 1,70,069, पिछडे वर्ग के 64,183 महिलायें 1,72,030 बच्चे 7,479 तथा सामान्य वर्ग के व्यक्ति 10,64,970 थे।[2]

1. CILAS के द्वारा प्रकाशित सूचना के आधार पर (लीगल एड न्यूज लेटर) अक्टूबर 93 से मार्च 94 में प्रकाशित।
2. CILAS के द्वारा प्रकाशित सूचना के आधार पर (लीगल एड न्यूज लेटर) अक्टूबर 93 से मार्च 94 में प्रकाशित।

उत्तर प्रदेश में कानूनी सहायता और परामर्श बोर्ड 1981 में स्थापित हुआ 1981 से मार्च 1994 तक उत्तर प्रदेश में 1673 लोक अदालतें लगायी गयी जिसमें 1,70,2,265 मुकदमे निर्गीत हुये जिसमें 15,942 मोटर दुर्घटना के वाद थे, 6,879 व्यवहारिक विवाद, 85,9,219 छोटे आपराधिक मामले थे तथा 5, 94,171 राजस्व मामले थे।[1]

1993 में इलाहाबाद हाईकोर्ट तथा उसकी लखनऊ खण्डपीठ में भी लोक अदालतें लगायी गयीं। इस प्रकार लोक अदालत समय की पुकार है और संविधान में उल्लिखित कानूनी सहायता के लक्ष्य को पूरा करने का एक प्रमुख साधन है। लोक अदालतों के द्वारा जनता में न्यायपालिका के प्रति आस्था बढ़ी है लोंगो में अपने विधिक अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी है, आपसी सद्भाव और सौहार्द का वातावरण बढ़ा है, और न्याय को सूदूरवर्ती क्षेत्रों तक पहुंचाने के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता मिली है।

= = = =0= = = =

1. लीगल एड न्यूज लेटर अप्रैल 93 सितम्बर 93

अध्याय— 4

कानूनी सहायता के अन्य साधन

(अ) उपभोक्ता संरक्षण (उपभोक्ता संरक्षण फोरम)

(ब) परिवार संरक्षण (पारिवारिक न्यायालय)

(स) परिवार परामर्श केन्द्र

(द) विधिक साक्षरता शिविर

(य) न्याय पंचायतें

"कानूनी सहायता" के लक्ष्य को तभी पाया जा सकता है, जब हम कानूनी अधिकारों से परिचित हों। कानूनी अधिकारों को जानने के लिये आवश्यक एवं व्यवहारिक शर्त है कानूनी सहायता। कानूनी साक्षरता के लिये आवश्यक है जागरूकता।

प्राचीनकाल में उपभोक्ता एक साधारण व्यक्ति था उसकी आवश्यकताएं कम थीं तथा मुख्यतः रोटी कपड़ा और मकान तक सीमित थी। उसकी जरूरत की अधिकतर वस्तुओं का निर्माण और उत्पादन उसी गांव या शहर में होता था जहां वह रहता था। उपभोक्ताओं के मध्य दूरी कम थी तथा उनकी नीयत भी साफ थी इसीलिये दुकानदार उपभोक्ता की शिकायत पर तत्काल निराकरण कर देते थे। लेकिन धीरे–धीरे परिस्थितियों में बदलाव आना शुरू हुआ। आबदी बढ़ने के साथ उपभोक्ताओं की इच्छाएं और आवश्यकताएं बढ़ने लगी समाज उपभोक्ता वादी संस्कृति में पलने बढ़ने लगा। इसके फलस्वरूप निर्माताओं और उपभोक्ताओं के बीच की दूरी निरन्तर बढ़ती गई।

औद्योगीकरण से बाजार में भाँति–भाँति की नई बस्तुएं आने लगीं। सेवाओं के नित नये आयाम भी विकसित हुए। अपने बहुमूल्य समय को अन्य उपयोगी कार्यो में लगाने की आवश्यकता ने दिन प्रतिदिन काम में आने वाले नये उपकरणों का सृजन अन्वेषण किया। कई वस्तुएं जो पहले मनोरंजन का साधन समझी जाती थी या केवल अभिजात्य वर्ग के लिये थीं धीरे–धीरे जन–सामान्य के लिये भी अपरिहार्य होती चली गयी। उदाहरण के तौर पर रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीफोन, टेलीविजन, मोटरकार आदि जो पहले उच्च वर्ग की वस्तुएं थीं अब वह प्रत्येक वर्ग के उपभोक्ताओं के पास देखी जा सकती है।

विज्ञान और तकनीकी विकास से इन वस्तुओं में तेजी से निरंतर सुधार आता गया और साथ ही साथ जहां पहले किसी अमुक वस्तु के निर्माता एक या दो होते थे वहां अब बढ़कर अनेक हो गये हैं, जिससे उपभोक्ता को एक ही वस्तु की कई किस्में बाजार में

देखने को मिलती हैं, इससे उपभोक्ता को चुनाव में तकलीफ होने लगी, क्योंकि निर्माता बहुत थोड़ा सा अन्तर करके प्रस्तुत करते हैं। इन परिस्थितियों में सबसे दुर्भाग्यपूर्ण मोड़ तब आया जब कुछ असामाजिक तत्वों ने शीघ्र लाभ कमाने की नीयत से अनुचित और संदिग्ध प्रणालियों का प्रयोग करना शुरू कर दिया। इसके परिणाम स्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की गुणवत्ता में गिरावट आनी शुरू हो गई। कतिपय अनुचित और संदिग्ध प्रणालियाँ निम्न प्रकार हैं:–

1. मिलावट 2. कम माप व तौल 3. आवश्यक वस्तुओं का अभाव 4. मंहगाई 5. जमाखोरी 6. कालाबाजारी 7. नियत मूल्य से अधिक दाम वसूलना 8. वस्तुओं और सेवाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी/सूचना न जारी करना 9. भ्रामक विज्ञापन 10. दोषपूर्ण सेवा प्रदान करना आदि।

(अ) **उपभोक्ता संरक्षण** :

उपभोक्ता वर्ग समाज का सबसे बड़ा वर्ग है, जो किसी एक व्यक्ति जाति, वर्ग या दल तक सीमित नहीं है और इसमें समाज के हर आयु और वर्ग के व्यक्ति शामिल हैं। कोई भी व्यक्ति जो किसी माल या सेवा को भुगतान करके प्राप्त करता है वह उपभोक्ता है, चाहे वह वस्तु या सेवा नगद भुगतान करके ली गई हो, उधार अथवा किश्तों पर।

किसी भी व्यापार या व्यवसाय का प्रथम उद्देश्य यह है कि उसके करने वाले की आर्थिक आय बढ़े और उसे लाभ प्राप्त हो। इस व्यवसाय के अन्तर्गत व्यवसायी को धन देकर उसके बदले उपभोग की वस्तुओं या अन्य सामग्री प्राप्त करने वाला व्यक्ति उपभोक्ता कहलाता है। जब तक साहूकार या व्यंवसायी द्वारा लाभ के उद्देश्य के साथ ही साथ उपभोक्ता को बेहतर सेवायें या वस्तुयें प्रदान करने का लक्ष्य ध्यान में रखा जाता है तब तक उस व्यवसायी एवं उपभोक्ता का सम्बन्ध अबाधगति से चलता रहा है परन्तु ज्यों ही व्यवसायी

द्वारा अपने लाभ को सर्वोपरि रखकर काम किया जाता है त्यों ही उपभोक्ता का शोषण शुरू हो जाता है और उपभोक्ता को उपलब्ध करायी जाने वाली सामग्रियों अथवा सेवाओं की गुणवत्ता में कमी आने लगती है व्यवसाय के तकनीकी करण के परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत लाभ का सिद्धान्त भी समाज में धीरे-धीरे फलने फूलने लगा। जिसके परिणाम स्वरूप घटिया स्तर की सामग्री अथवा सेवाओं की आपूर्ति के कारण समाज में अशान्ति एवं तनावपूर्ण वातावरण उत्पन्न होने लगा। यह समस्या केवल भारत में ही नही बल्कि पूरे विश्व में अपना स्थान बनाने लगी परिणाम स्वरूप इस स्तर पर उपभोक्ता को सुरक्षा दिये जाने की आवश्यकता महसूस की गई। संयुक्त राज्य अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जान0 एफ0 कैनेडी ने 15 मार्च 1962 को चार मूलभूत उपभोक्ता अधिकारों के बारे में घोषणा की थी, उक्त ऐतिहासिक घोषणा की याद में 15 मार्च को विश्व उपभोक्ता दिवस मनाया जाता है। उक्त घोषणा के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा 9 अप्रैल 1985 को महासभा में आम सहमति से उपभोक्ता के अधिकारों के संरक्षण के प्रति 7 प्रस्ताव पारित किये गये और उपभोक्ताओं के निम्न अधिकारों को मान्यता दी गयीः-

1. सुरक्षा का अधिकार।
2. जानक़ारी प्राप्त करने का अधिकार।
3. वस्तुओं और सेवाओं के चयन का अधिकार।
4. शिकायत की सुनवाई का अधिकार।
5. क्षतिपूर्ति का अधिकार।
6. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।
7. स्वस्थ वातावरण का अधिकार।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र के प्रवर्तक **प्रो0 अर्मव्य सेन** कहते है **''यदि सामाजिक सुरक्षा तन्त्र न हो तो व्यापक भुखमरी और अकाल की स्थिति सहज ही उत्पन्न हो जाती है''।**[1]

गाँधी जी का मत था **''जो व्यक्ति भूख से पीड़ित हो और अपना पेट भरने के अलावा कोई और इच्छा न हो, उसका पेट ही उसका भगवान है। जो उसको रोटी दे दे वही उसका स्वामी है। उसी में वह ईश्वर के भी दर्शन कर सकता है''।**[2]

समय–समय पर लोगों ने न केवल यह अनुभव किया कि उन्हें त्रुटिपूर्ण वस्तुओं के क्रय अथवा दोषपूर्ण सेवाओं की वृद्धि के कारण होने वाले कष्ट से निवारण हेतु कोई सुलभ न्यायिक व्यवस्था मिलनी चाहिये, बल्कि व्यक्तिगत तथा संगठित रूप से इस सम्बन्ध में उन्होंने आवाज उठाई। कुछ स्वैच्छिक संस्थाएं इसमें अग्रणी बनीं और उन्होंने नेतृत्व की बागडोर संभाली। केन्द्रीय सरकार से यह मांग होने लगी कि उपभोक्ता हितों के संरक्षण के लिये उचित व्यवस्था की जाये। फलस्वरूप उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 एक केंद्रीय अधिनियम के रूप में पारित हुआ।

संसद द्वारा पारित इस अधिनियम पर राष्ट्रपति ने 24 दिसम्बर 1986 को हस्ताक्षर किये, इसीलिये 24 दिसम्बर को राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस मनाया जाता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में उपभोक्ताओं के छः अधिकार इस प्रकार वर्णित किये गये हैः–

1. जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिये परिसंकल्पमय माल और सेवाओं के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार।
2. माल या सेवाओं की गुणवत्ता, मात्रा, शक्ति, मानकता, शुद्धता, कम्पोजीशन और मूल्य के बारे में सूचित किये जाने सम्बन्धी सूचना का अधिकार।

---

1. सूर्य नारायण पाण्डेय : उपभोक्ता संरक्षक पृ0 11
2. यंग इण्डिया 20 मई 1926

3. जहां भी संभव हो वहां प्रतिस्पर्धा मूल्यों पर विभिन्न किस्मों के माल व सेवा सुलभ कराने व चुनने का अधिकार।

4. सुने जाने और यह आश्वासन दिये जाने का अधिकार कि उपभोक्ता के हितों पर समुचित पीठों/मंचों में सम्यक रूप से विचार किया जाये।

5. अनुचित व्यापारिक व्यवहार या उपभोक्ताओं के अनैतिक शोषण के विरूद्ध प्रतिकार प्राप्त करने का अधिकार।

6. उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने, व्यापारिक दांव पेचों के बारे में जागरूक करने और अनेक शोषणों के विरूद्ध आवाज उठाने सम्बन्धी उपभोक्ताओं को शिक्षा देने का अधिकार।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 :

यह अधिनियम 24 अक्टूबर 1986 को लागू हुआ जिसकी प्रमुख व्यवस्थायें निम्नांकित थी–

अधिनियम के उद्देश्य :

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 देश के सामाजिक, आर्थिक कानूनों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम है। उपभोक्ताओं के संरक्षण के लिये बनाये गये कानूनों में से यह सर्वाधिक प्रगतिशील और व्यापक कानून है। यह नया कानून इंग्लैंड, अमेरिका आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में लागू उपभोक्ता संरक्षण कानूनों तथा व्यवस्थाओं का गहराई से अध्ययन करने के बाद बनाया गया है। इसे तैयार करने से पूर्व उपभोक्ताओं, व्यापार तथा उद्योग के प्रतिनिधियों से विचार विमर्श किया गया था। सरकारी स्तर पर भी सम्बन्धित मन्त्रालयों से विचार विमर्श किया गया।

इस कानून का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को बेहतर संरक्षण प्रदान करना है। यह कानून वर्तमान कानूनों की तरह दण्डात्मक तथा निरोधक नहीं है। इसके उपबन्धों में क्षतिपूर्ति की व्यवस्था है। इस अधिनियम में उपभोक्ताओं की शिकायतों को शीघ्र सरल तरीकों से तथा कम खर्चे में दूर करने की व्यवस्था है। इस प्रयोजन के लिये इस अधिनियम में राष्ट्रीय, राज्य तथा जिला स्तरों पर एक तीन स्तरीय अर्ध न्यायिक तन्त्र की स्थापना करने की व्यवस्था है। इस अधिनियम में उपभोक्ताओं के अधिकारों का उल्लेख किया गया है।

अधिनियम का विस्तार तथा क्षेत्र :

इस अधिनियम की प्रमुख व्यवस्थायें संक्षेप में इस प्रकार हैं:—

यह अधिनियम सभी वस्तुओं तथा सेवाओं पर लागू होता है। केवल वही वस्तुयें तथा सेवायें इसके अन्तर्गत नहीं आयेगी जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने विशिष्ट रूप से छूट दी हो। यह निजी सार्वजनिक सहकारी सभी क्षेत्रों पर लागू होता है। इस अधिनियम के उपबन्धों में क्षतिपूर्ति की व्यवस्था है। इसमें उपभोक्ताओं के निम्नलिखित अधिकारों का वर्णन है:—

1. ऐसे माल के विपणन के विरूद्ध संरक्षण पाने का अधिकार जो जीवन और सम्पत्ति के लिये खतरनाक हो।
2. अनुचित व्यापार व्यवहारों से उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिये माल की गुणवत्ता, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक और मूल्य के बारे में सूचित किये जाने का अधिकार।
3. जहां भी सम्भव हो वहां प्रतिस्पर्धा मूल्यों के माल की विभिन्न किस्मों को सुलभ कराये जाने का अधिकार।
4. सुनवाई तथा इस आश्वासन का अधिकार कि उपभोक्ताओं के हितों का समुचित मंचों पर सम्यक रूप से विचार किया जायेगा।

5. अनुचित व्यापारिक व्यवहार या उपभोक्ताओं के अनुचित शोषण के विरूद्ध क्षतिपूर्ति का अधिकार और उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

6. इस अधिनियम में केन्द्रीय तथा राज्य स्तरों पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना करने की व्यवस्था की गई है। जिनका मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं के अधिकारों को बढ़ावा देना तथा उनकी रक्षा करना होगा। उपभोक्ताओं की शिकायतें को शीघ्र सरल तरीके से तथा कम खर्च में दूर करने के लिये इस अधिनियम में राष्ट्रीय राज्य तथा जिला स्तरों पर एक तीन स्तरीय अर्ध न्यायिक तन्त्र की स्थापना करने की व्यवस्था है। राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग (जो 'राष्ट्रीय आयोग' के नाम से जाना जायेगा) होगा। राज्य स्तर पर उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग (जो 'राज्य आयोग' के नाम से जाना जायेगा) होगें। और जिला स्तर पर उपभोक्ता विवाद प्रतितोष फोरम (जिन्हें ''जिला फोरम'' के नाम से जाना जायेगा) होंगे।

इस अधिनियम के उपबन्ध इस समय लागू किसी कानून के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे, न कि उसके अल्पीकरण में।

उपभोक्ता कौन है ?

अधिनियम की धारा 2 (1) (घ) में उपभोक्ता की परिभाषा दी गयी है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो क्रय अथवा भुगतान के आधार पर किसी वस्तु या सेवा का उपभोग करता है उसे उपभोक्ता कहा जाता है। यहां तक कि अगर कोई व्यक्ति किसी वस्तु या सेवा का उत्पादक है तो यह भी ऐसी वस्तुओं अथवा सेवाओं का उपभोक्ता हो सकता है जिसे उसने क्रय या भुगतान के आधार पर प्राप्त किया है।[1]

1. उपभोक्ता संरक्षण एवं कानून उ0 प्र0 राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा 2001 में प्रकाशित

वस्तुओं के मामले में उपभोक्ता का तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो निम्नलिखित वर्गों में आता है:–

1. वह व्यक्ति जो प्रतिफल का भुगतान करे अथवा उसके भुगतान का वचन देकर अथवा उसका आंशिक भुगतान कर और आंशिक भुगतान का वचन देकर अथवा किसी आस्थिगित (Deferred) भुगतान की पद्धति के अधीन किसी सेवा या किन्हीं सेवाओं को किराये पर लेता है।
2. प्रतिफल का भुगतान कर सेवाओं को वास्तव में किराये पर लेने वाले व्यक्ति से भिन्न लाभ का भोग करने वाला व्यक्ति भी जो वास्तव में किराये पर लेने वाले व्यक्ति के अनुमोदन से ऐसी सेवाओं का उपभोग करता है।

परिवादी कौन है ?

अधिनियम की धारा 2 (1) (बी) में परिवादी की परिभाषा दी गयी है जिसके अनुसार निम्नलिखित वर्गों में आने वाले व्यक्ति परिवादी की परिभाषा में आते हैं और उन्हें परिवाद दर्ज कराने का अधिकार है–

1. उपभोक्ता
2. कोई भी स्वैच्छिक संगठन जो कम्पनी अधिनियम, 1956 अथवा सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 अथवा उस समय लागू किसी अन्य कानून की तहत पंजीकृत हो।
3. केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें अथवा राज्य क्षेत्र प्रशासन।

परिवाद क्या है ?

अधिनियम की धारा 2 (1) '(सी) के अन्तर्गत परिवाद की परिभाषा दी गयी है जिसके अनुसार परिवाद का तात्पर्य परिवादी द्वारा निम्नलिखित रूप से लगाये गये आरोपों से है:–

1. किसी व्यापारी द्वारा किये गये किसी अनुचित व्यापारिक व्यवहार के कारण परिवादी को हानि अथवा नुकसान हुआ है।
2. परिवाद में वर्णित माला में एक या अधिक त्रुटि है।
3. परिवाद में वर्णित सेवाओं में किसी प्रकार की कोई कमी है।
4. विक्रेता ने परिवाद में वर्णित माल के लिये निम्नलिखित मूल्यों से अधिक मूल्य लिया हो।

(क) उस समय लागू किसी कानून द्वारा अथवा उसके अधीन निर्धारित किया गया मूल्य या।

(ख) माल पर लिखा गया मूल्य अथवा,

(ग) ऐसे माल से युक्त किसी पैकेट पर अंकित मूल्य।

<u>परिवाद सुनवाई की अधिकारिता</u> :

अधिनियम की धारा 11, 17 एवं 21 में उपभोक्ता की ओर से प्रस्तुत परिवाद पर विभिन्न अधिकारणों के क्षेत्राधिकारी के बारे में प्राविधान किये गये हैं जिनके अनुसार –

1. यदि वस्तुओं अथवा सेवाओं का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के लिये मांगी गयी रकम रू0 500000 से कम है तो परिवाद उस जिला फोरम के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है जो राज्य सरकार द्वारा उस जिले के लिये अधिसूचित किया गया है जहां कि परिवाद का कारण उत्पन्न हुआ है अथवा जहां विपक्षी निवास करता है। (धारा 11)
2. यदि वस्तुओं अथवा सेवाओं का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के लिये मांगी गयी राशि रू0 500000 से अधिक है परन्तु रू0 20,00,000 से अधिक नहीं है तो परिवाद सम्बन्धित राज्य सरकार अथवा संघ राज्य क्षेत्र द्वारा अधिसूचित राज्य आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। (धारा 17)

3. यदि वस्तु अथवा सेवाओं का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के लिये मांगी गयी राशि रू0 बीस लाख से अधिक है तो परिवाद राष्ट्रीय आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

परिवाद दायर करने की प्रक्रिया :

किसी वस्तु अथवा सेवा के सम्बन्ध में उपभोक्ता सम्बन्धी शिकायत मिलने पर परिवाद प्रस्तुत करने के लिये अधिनियम में जो प्रक्रिया निर्धारित की गयी है वह अत्यन्त ही सरल है और त्वरित निस्तारण पर बल देती है। इस प्रक्रिया का संक्षेप में निम्न रूप से अवलोकन किया जा सकता है:–

1. जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग के समक्ष परिवाद प्रस्तुत करने के लिये परिवादी को किसी प्रकार का शुल्क अदा नहीं करना पड़ता है।
2. परिवादी अथवा उसके द्वारा प्राधिकृत कोई भी अभिकर्ता व्यक्तिगत रूप से परिवाद प्रस्तुत कर सकता है।
3. परिवाद फोरम अथवा आयोग को डाक द्वारा भी भेजा जा सकता है।

फोरम अथवा आयोग के समक्ष परिवाद प्रस्तुत करने के निर्धारित प्रारूप में तथा परिवाद पत्र में निम्नलिखित सूचनायें देनी होती है:–

1. परिवादी का नाम विवरण तथा पता।
2. विपक्षी अथवा विपक्षीगण का नाम विवरण और पता जहां तक मालूम हो सके।
3. विवाद से सम्बन्धित घटना अथवा घटनायें साथ ही साथ वह घटना या घटनायें कब और कहां घटित हुई।
4. परिवाद में लगाये गये आरोपों के समर्थन में दस्तावेज अगर कोई हो।
5. वह उपसम जो परिवादी चाहता है।

साथ ही परिवाद पत्र पर परिवादी अथवा उसके द्वारा अधिकृत अभिकर्ता के हस्ताक्षर होने चाहिए।

<u>उपलब्ध उपसम या राहत</u> :

परिवादी द्वारा अपने परिवाद पत्र में जो आरोप लगाया गया है और तदनुसार जो उपसम मांगा गया है उसका विधिवत् परीक्षण फोरम/आयोग द्वारा किया जाता है जो कि एक अर्ध न्यायिक प्रक्रिया है। फोरम अथवा आयोग द्वारा संतुष्ट होने पर परिवादी को निम्नलिखित में से कोई एक या अधिक उपसम प्रदान किया जा सकता है:–

1. माल में से त्रुटि को दूर करना।
2. माल को बदलना।
3. उपभोक्ता द्वारा माल के सम्बन्ध में जो मूल्य दिय गया है उसे वापस कराया जाना।
4. खराब माल या वस्तु के कारण उपभोक्ता को जो हानि या क्षति पहुंचती है उसके लिये क्षतिपूर्ति कराया जाना।

<u>अपील</u> :

जिला फोरम के निर्णय के विरूद्ध राज्य आयोग के समक्ष अपील फोरम के निर्णय के 30 दिन की अवधि के भीतर प्रस्तुत की जा सकती है। राज्य आयोग के निर्णय के विरूद्ध अपील निर्णय के 30 दिन के अन्दर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आयोग के निर्णय के विरूद्ध 30 दिन के अन्दर सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की जा सकती है।

राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील करने के लिये कोई भी शुल्क देय नहीं है।

अपील प्रस्तुत करने की प्रक्रिया लगभग वही है जो परिवाद प्रस्तुत करने की है। अन्तर केवल इतना है कि अपील हेतु आवेदन पत्र के साथ जिला फोरम या राज्य आयोग जैसी भी स्थिति हो, का आदेश संलग्न करना अनिवार्य है। इसके साथ ही अपीलकर्ता को उन कारणों का भी उल्लेख करना आवश्यक है जिनके आधार पर अपील प्रस्तुत की जा रही है।

अपील का निर्णय करने के लिये समय सीमा :

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का मूल उद्देश्य उपभोक्ता की शिकायतों की सरलता, शीघ्रता एवं कम से खर्चे में निपटाया जाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिनियम तथा उसके अन्तर्गत बनायी गयी नियमावली में कुछ प्रभावी व्यवस्था की गयी है जो निम्न प्रकार हैः–

1. परिवादी अथवा अपीलार्थी अथवा उसके द्वारा प्राधिकृत अभिकर्ता एवं विपक्षी को सुनवाई की तिथि पर उपस्थित होना अनिवार्य है। अगर सुनवाई किसी अन्य तिथि के लिए स्थगित कर दी गयी है तो उस तिथि पर भी उसकी उपस्थिति अनिवार्य है चाहे वह जिला फोरम के समक्ष कार्यवाही हो अथवा आयोग के समक्ष।

2. राष्ट्रीय आयोग, राज्य आयोग और जिला स्तर पर कार्यरत फोरम से यह अपेक्षा की गयी है कि यथा सम्भव परिवादों का निस्तारण विपक्षी पर नोटिस तामील होने की तारीख से 3 माह के अन्तर्गत कर दिया जाय परन्तु यह अपेक्षा उसी परिस्थिति में की गयी है जहां परिवाद के अन्तर्गत माल का विश्लेषण करना अथवा उसके परीक्षण की आवश्यकता नहीं है। जिस मामले में माल के विश्लेषण एवं परीक्षण की आवश्यकता होती है वहां यह समय सीमा 5 माह निर्धारित की गयी है।

3. जहां तक अपील के निस्तारण का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में राष्ट्रीय आयोग एवं राज्य आयोग दोनों से यह अपेक्षा की गयी है कि अपील के प्रथम सुनवाई की तारीख से 90 दिनों के अन्दर अपील का निस्तारण कर दिया जाय।[1]

इस अधिनियम में प्रथमतः वर्ष 1991 तथा इसके पश्चात् वर्ष 1993 में कुछ संशोधन भी किये गये। पुनः संशोधन हेतु भारत सरकार ने केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद की मांग पर एक वर्किंग ग्रुप का गठन किया गया।

उत्तर प्रदेश में उपभोक्ता संरक्षण :

उत्तर प्रदेश में उपभोक्ता आन्दोलन 1986 में उपभोक्ता संरक्षण कानून बनने के कुछ पहले ही शुरू हुआ और कानून के क्रियान्वयन में सरकारी ढिलाई के चलते कभी गति नहीं पकड़ सका। विभिन्न उपभोक्ता आंदोलनकारियों के शुरूआती प्रयासों के परिणाम स्वरूप राज्य सरकार को कार्यवाही के लिए आगे आना पड़ा और प्रदेश में अनेक उपभोक्ता संगठनों की नीवं पड़ी लेकिन अधिकांश संस्थायें कोई प्रभावी कार्य नहीं कर पायीं और सक्रिय ढंग से कार्य करने वाली संस्थायें भी अपने क्षेत्र में सीमित होकर रह गयी। राज्य का कोई भी उपभोक्ता आंदोलनकारी न ही अपनी राष्ट्रीय छवि बना पाया और न ही प्रदेश के उपभोक्ता संगठनों को प्रभावी नेटवर्क और नेतृत्व मिल सका।

आर्थिक संसाधनों की कमी और उग्र राजनीतिक मुद्दों की गर्मी को रहते उपभोक्ता संरक्षण में प्रभावी प्रयास नहीं हो पाये यद्यपि दो–तीन संस्थायें और पांच–सात लोग सच्चे मन से उपभोक्ता आंदोलन को आगे बढ़ाने का कार्य करते रहे हैं।

प्रदेश में वर्तमान में अस्सी से अधिक उपभोक्ता संगठन स्थापित हो चुके हैं । इनमें अधिकांश प्रदेश की राजधानी लखनऊ में है लेकिन उपभोक्ताओं को कोई प्रभावी राहत मिलती प्रतीत नहीं होती है। यद्यपि अब राज्य में 72 जिलों में जिला उपभोक्ता फोरम सक्रिय

---

1. उपभोक्ता संरक्षण एवं कानून

हैं लेकिन जब तक प्रत्येक जिले में सक्रिय उपभोक्ता संगठन गठित नहीं हो जाते और राज्य सरकार के उत्साही सहयोग के अलावा भी पृथक से राज्य के संगठनों को एक मंच और नेटवर्क पर नहीं लाया जाता तब तक लगता नहीं है कि राज्य के गरीब पीड़ित और ग्रामीण उपभोक्ता को न्याय मिल सकेगा।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 स्थापित हो जाने के बाद उत्तर प्रदेश में अधिसूचना सं. सी. पी.–72/उन्तीस–10–सी. पी. (8)–87 दिनांक 31–08–87 के माध्यम से उत्तर प्रदेश उपभोक्ता संरक्षण नियमावली 1987 स्थापित की गयी। प्रदेश के मण्डलीय मुख्यालयों लखनऊ, आगरा, बरेली, फैजाबाद, गढ़वाल (देहरादून), गोरखपुर, झाँसी, कानपुर, कुमायूँ (नैनीताल), मेरठ, मुरादाबाद एवं वाराणसी में दिनांक 05–02–88 को 12 जिला फोरम उपभोक्ता संरक्षण स्थापित किये गये जिनका कार्यक्षेत्र प्रत्येक मण्डल में आने वाले जिले थे। दिनांक 05–02–88 को राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण उ0 प्र0 की गयी जिसमें माननीय उच्च न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायमूर्ति के0 एस0 प्रधान, श्री श्री प्रकाश गोयल तथा श्रीमती विद्या सोनकर को सदस्य नियुक्त किया गया।

दिसम्बर 1989 में प्रदेश के शेष 51 जिलों में जिला फोरम स्थापित किये गये ये जिला फोरम पूर्व में कार्यरत जिला फोरमों के अतिरिक्त थे। इस प्रकार प्रदेश में कुल 63 जिला फोरम अर्थात् प्रत्येक जिले में जिला फोरमों का गठन कर दिया गया। प्रदेश में शिकायतों के निस्तारण में हो रहे विलम्ब तथा लम्बित शिकायतों की बढ़ती संख्या को देखते हुए दिनांक 7 सितम्बर 1995 को लखनऊ, आगरा, बरेली एवं मुरादाबाद में एक–एक अतिरिक्त जिला फोरम की स्थापना की गयी। शासन द्वारा घोषित नव जनपदों में से दिनांक 12/13 मार्च 1997 को पडरौना (कुशीनगर), भदोही (संत रविदास नगर), ऊधमसिंह नगर, अम्बदेकर नगर तथा महोबा में कुल पांच जिला फोरम स्थापित किये गये है। इस प्रकार प्रदेश में 72 जिला फोरम स्थापित है।

प्रदेश के नवसृजित शेष जनपदों में कौशाम्बी, ज्योतिबाफूले नगर, गौतमबुद्ध नगर, साहूजी महाराज नगर, श्रावस्ती, चन्दौली, महामाया नगर तथा बलरामपुर में भी जिला फोरम स्थापित किये जाने हेतु शासन द्वारा निर्णय ले लिया गया है।

प्रदेश ने शासन स्तर पर पहली "राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद का गठन अधिसूचना संत्र सी. पी.–104/29–10–सी. पी. (12)–87 दिनांक 11–08–87 के माध्यम से किया गया था। जिसमें 22 सरकारी सदस्य तथा 45 गैर सरकारी सदस्य नामित किये गये। इस परिषद का कार्यकाल दिनांक 10–08–90 को समाप्त हो गया।

राज्य में दूसरी बार राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद का गठन कार्यालय ज्ञाप संख्या 154/29–10–91 सी. पी.–41/90 दिनांक 19 मार्च 1991 के माध्यम से किया गया था। यह परिषद कार्यालय ज्ञाप सं. वी. आई. पी. 62/29–10–92–सी. पी. 41/90 दिनांक 29 जनवरी 93 द्वारा भंग कर दी गयी।

राज्य में तीसरी बार राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद का गठन अधिसूचना सं. सी. पी. 594/29–08–97 सी. पी. 41/90 दिनांक 14 मार्च, 1997 के माध्यम से किया गया जिसमें गैर–सरकारी 24 सदस्यों में 8 विधान परिषद व विधान सभा सदस्य, 8 उपभोक्ता संरक्षण संगठनों के प्रतिनिधि एवं 8 व्यापार मण्डल सेवा उपक्रमों, निर्माताओं, फुटकर विक्रेताओं तथा चैम्बर्स आफ कामर्स के प्रतिनिधियों हेतु आरक्षित कर दिये गये है लेकिन अधिसूचना जारी हो जाने के एक वर्ष बाद भी गैर–सरकारी सदस्यों का नामांकन नहीं हो सका है जिसके कारण परिषद की बैठक नहीं हो पा रही है।

उपभोक्ता संरक्षण कार्यक्रम के मण्डल स्तर पर समुचित अनुश्रवण एवं समन्वय हेतु सहायक खाद्य आयुक्त को पदेन उप–निदेशक (उपभोक्ता संरक्षण) घोषित किया गया है। उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय में स्वैच्छिक संगठनों की मांग पर सहायक निदेशक के रिक्त

पद पर एक पूर्णकालिक सहायक निदेशक की नियुक्ति गतवर्ष कर दी गयी है। साथ ही निदेशालय को सुदृढ़ करने हेतु तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के 8 पदों की स्वीकृति दी गयी है। उपभोक्ता संरक्षण विभाग को स्वतन्त्र अस्तित्व देने हेतु पूर्णकालिक महानिदेशक का एक पद भारतीय प्रशासनिक सेवा के सीनियर स्केल अथवा प्रांतीय सिविल सेवा (पी. सी. एस.) के सलेक्शन ग्रेड में सृजित किया गया है। उपरोक्त प्रयासों से शासन ने उपभोक्ता आंदोलन को गति प्रदान करने का प्रयास किया है परन्तु आंदोलन अभी इसका लाभ नहीं उठा सका है क्योंकि पदेन उपनिदेशक, उपभोक्ता संरक्षण को किसी भी कार्य के प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया गया है। निदेशालय में पदों के सृजन हो जाने के बाद नियुक्तियों की प्रक्रिया जारी है।

निदेशालय में पूर्णकालिक महानिदेशक के पद की स्वीकृति मिल जाने के बावजूद भी शासन द्वारा अंशकालिक नियुक्ति की गयी है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि गत वर्ष दिसम्बर 96 से फरवरी 97 तक महानिदेशक के पद का अतिरिक्त कार्यभार देख रहे श्री कुश वर्मा, आई0 ए0 एस0 ने अपने छोटे से कार्यकाल में ही उपभोक्ता आन्दोलन को जो प्रेरणा व गति प्रदान की वह 9 वर्ष के उपभोक्ता आंदोलन को कभी प्राप्त नहीं हो सकी।

स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठनों द्वारा बराबर मांग किये जाने के बाद भी राज्य सरकार उपभोक्ता कार्यक्रम के प्रचार–प्रसार तथा स्वैच्छिक संगठनों के नेटवर्क के लिए एक भी नियमित पत्र/पत्रिका का प्रकाशन नहीं करा सकी है जबकि प्रत्येक प्रदेश में इस कार्यक्रम पर पाक्षिक/मासिक/तैमासिक पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप से किया जा रहा है।

प्रदेश में कार्यरत 72 जिला फोरमों हेतु स्वीकृत व कार्यरत स्टाफ का विवरण निम्न प्रकार है :–

विवरण	आशुलिपिक	रीडर	लिपिक	अर्दली	चपरासी	चौकीदार
स्वीकृत पदों की संख्या	72	72	72	72	72	3
कार्यरत कर्मचारियों की सं.	55	45	23	65	66	1
रिक्त पदों की संख्या	17	27	49	07	06	2

उपरोक्त चार्ट से स्वतः स्पष्ट है कि कुल स्वीकृत 363 पदों के विरूद्ध 256 कर्मचारी कार्यरत है तथा 107 कर्मचारियों के पद रिक्त हैं। सफाई कर्मचारियों की नियुक्ति किसी भी जिला फोरम में नहीं की गयी है तथा न ही पद स्वीकृत है। जिला फोरमों में सफाई कर्मचारी के अभाव में गन्दगी का माहौल बना हुआ है।

प्रदेश के 72 जिला फोरमों में अध्यक्ष के 10 पद, सदस्य के 24 पद तथा महिला सदस्य के 19 पद रिक्त हैं। इन रिक्तियों के चलते जिला फोरमों का कार्य प्रभावित हो रहा है। जिला फोरमों की नियमित बैठक न हो पाने के कारण कर्मचारियों के वेतन के मद में हो रहे व्यय का सरकार पर आर्थिक बोझ बढ़ता जा रहा है तथा शिकायतें भी लम्बित हो रही है।

अभी हाल ही में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने शासन को निर्देशित किया है कि लम्बित प्रकरणों (पेन्डेन्सी) को देखते हुए प्रदेश में राज्य आयोग की चार बेंच और स्थापित की जायें ताकि लम्बित शिकायतों/अपीलों का निस्तारण हो सके और आगे भी उपभोक्ता कानून की परिधि में आने वाली शिकायतों का निस्तारण निर्धारित 90 दिन के अन्दर हो सके।

जिला फोरम के प्रधानों व सदस्यों तथा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की माँग है कि उनको दिया जाने वाला मानक बढ़ाया जाय तथा उन सभी की नियुक्तियाँ पूर्णकालिक आधार पर की जाय। कई जिला फोरम के प्रधानों की शिकायत है कि उनका वेतन ही निर्धारित नहीं किया गया जबकि उनको कार्य करते हुए डेढ़ से दो वर्ष होने को आ रहे है। अतिथि सत्कार हेतु भी कुछ धनराशि निर्धारित किये जाने की माँग की है।

उपभोक्ता आंदोलन में स्वैच्छिक संस्थाओं की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। इन संस्थाओं से जुड़े लोगों का यह दायित्व है कि वे समाज में सभी प्रकार से त्रस्त एवं शोषित उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने में उनकी सहायता करें और उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में वर्णित प्रक्रिया का लाभ व न्याय उन तक पहुंचाने में उनकी मदद करें। भारत सरकार ने ऐसे सक्रिय संगठनों को तथा उपभोक्ता संगठनों को आर्थिक सहायता पहुंचाने की दृष्टि से ''उपभोक्ता कल्याण निधि'' की स्थापना की है जिसमें से प्रदेश के लगभग तीन दर्जन संगठनों को आर्थिक सहायता दी गयी है।[1]

प्रदेश के सभी जिलों में 15 मार्च को **''विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस''** मनाया जाता है। इस अवसर पर सेमिनार व संगोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं और समाज के बुद्धिजीवियों, स्वयंसेवी संगठनों और उपभोक्ताओं द्वारा सक्रियता से भाग लिया जाता है। वैसे तो स्वयं सेवी संगठन पूरे वर्ष ही सक्रिय रहते हैं परन्तु 15 मार्च के आस–पास उनकी सक्रियता और गतिशीलता सराहनीय और प्रशंसा योग्य हो जाती है।

प्रदेश सरकार ने उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में सराहनीय कार्य करने वाली पांच स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रतिवर्ष प्रथम पुरस्कार रू0 50,000/– द्वितीय रू0 40,000/– तृतीय रू0 30,000/– चतुर्थ रू0 20,000/– एवं पंचम पुरस्कार रू0 10,000/– नकद एवं प्रशस्ति पत्र के माध्यम से सम्मानित करने की योजना स्थापित की है। इस योजना के अन्तर्गत दो बार में दस संस्थाओं को पुरस्कृत किया जा चुका है। उपभोक्ता संगठनों की माँग है तथा सुझाव भी कि उपभोक्ता पुरस्कारों हेतु कार्यकलाप सम्बन्धी रिपोर्ट प्रेषित करने की सूचना सीधे स्वैच्छिक संगठनों को भी उपलब्ध कराई जाय क्योंकि इसकी सूचना समय रहते संगठनों को प्राप्त नहीं हो पाती है जिस कारण वे अपनी उपलब्धियों से शासन को अवगत नहीं करा पाते हैं।

---

1. अरूण कुमार मिश्र : उत्तर प्रदेश में उपभोक्ता आंदोलन उपभोक्ता संरक्षण (उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'उपभोक्ता संरक्षण' में पृ0 20)

उपभोक्ता संरक्षण का संक्षिप्त इतिहास :

उपभोक्ता संरक्षण के मामले में सबसे पहले कदम संयुक्त राज्य अमेरिका ने उठाया, अमेरिकी संसद में 15 मार्च 1962 को उपभोक्ता अधिकारों का बिल प्रस्तुत किया गया। अपने देश में 10 दिसम्बर 1986 को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम भारतीय संसद में पारित किया गया, इसी वर्ष 24 दिसम्बर 1986 को इस अधिनियम को राष्ट्रपति ने स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् जून 1987 को केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद का गठन किया गया तथा इसकी पहली बैठक 28 सितम्बर 1987 को हुयी, उपभोक्ता कल्याण निधि नियमावली की स्थापना 25 नवम्बर 1992 को की गयी, इसके बाद 18 जून 1993 को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (संसोधन) पारित किया गया।

उत्तर प्रदेश ने 31 अगस्त 1987 को उत्तर प्रदेश उपभोक्ता संरक्षण नियमावली बनायी, 5 फरवरी 1988 को 'राज्य आयोग उपभोक्ता संरक्षण उत्तर प्रदेश' का गठन हुआ तथा इसीदिन उत्तर प्रदेश के सभी 12 मण्डलीय मुख्यालयों पर जिला फोरम उपभोक्ता संरक्षण का गठन किया गया, तथा 26 दिसम्बर 1989 को राज्य के 45 मैदानी जिलों में जिला फोरमों का गठन किया गया। बाकी बचे हुये राज्य के पर्वतीय क्षेत्र में 30 दिसम्बर 1989 को 6 जिला फोरमों का गठन किया गया। आवश्यकता को देखते हुये उ0 प्र0 सरकार ने लखनऊ, आगरा, बरेली एवं मुरादाबाद में एक-एक अतिरिक्त जिला फोरमों का गठन 7 सितम्बर, 1995 को किया तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा बनाये गये नये जिले अम्बेदकर नगर एवं ऊधम सिंह नगर में 12 मार्च 1997 को जिला फोरमों को गठन किया गया। इनके अतिरिक्त बाद में बनाये गये नये जिले भदोही, पडरौना तथा महोबा में 13 मार्च 1997 को जिला फोरमों की स्थापना की गयी।

(ब) पारिवारिक संरक्षण :

किसी भी समाज में परिवार एक ऐसी प्राथमिक अनौपचारिक संस्था है जिस पर न केवल व्यक्ति के व्यक्तित्व की नींव पड़ती है बल्कि उसके स्वस्थ सामाजिक जीवन के विकास में सहायक होती है। भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताओं में से एक मुख्य विशेषता प्राचीन काल से चली आ रही संयुक्त परिवार की सरंचना है जिसमें कम से कम तीन पीढ़ियों के सदस्य एक साथ रहते हैं और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में एक साथ भाग लेते हैं, सुख, दुःख सभी स्थितियों में सामूहिक रूप से सम्मिलित होते हैं। ऐसे संयुक्त परिवार में जहां वयोवृद्ध सदस्यों का प्रेम, स्नेह व उनके जीवन के अनुभवों का लाभ छोटों को मिलता है वहीं उन्हें भी परिवार के कनिष्ठ सदस्यों द्वारा मान–सम्मान दिये जाने से उनमें असुरक्षा व अकेलेपन की भावना नहीं आने पाती है जिससे अनेक सामाजिक समस्याओं, मानसिक रोगों एवं पारिवारिक विवादों को पनपने का अवसर ही नहीं मिलता है। यदि किसी कारणवश परिवार में सदस्यों के मध्य किसी प्रकार का विवाद उत्पन्न हो भी जाता है तो संयुक्त परिवार के वरिष्ठ सदस्य अपने अनुभवों के आधार पर अपनी सूझबूझ से विवाद के कारण का समाधान ढूंढ़कर व सदस्यों को समझा बुझाकर विवाद को हल कर देते हैं। और पारिवारिक सुख शान्ति को बनाये रखने के अपने दायित्व को पूर्ण करते हैं तथा पारिवारिक विवादों को न्यायालय में जाने से रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

विश्व को **'वसुधैव कुटुम्बकम'** का यद्यपि हमने ही संदेश दिया है किन्तु हमारे ही संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। समय के साथ साथ भारतीय समाज की पारिवारिक संरचना पर पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का कुप्रभाव पड़ा है। इसे पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति द्वारा किया गया सांस्कृतिक अतिक्रमण कहना अधिक उपयुक्त होगा। कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक भौतिकतावाद में विवाह, परिवार, नाते–रिश्ते भी उपभोक्ता संस्कृति से अछूते

नहीं रह गये हैं। आज सामान्य रूप से संयुक्त परिवारों का स्थान एकाकी परिवार लेते जा रहे हैं, जिससे परिवार का अर्थ केवल माता पिता व उनके बच्चों से ही लगाया जाता है। आर्थिक प्रतियोगिता के इस युग में कहीं अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, तो कहीं जीवन स्तर ऊँचा रखने के लिये एक ही परिवार में माता पिता दोनों नौकरी करते हैं घर में बच्चे अपने आपको अकेला महसूस करते हैं, उन्हें वह प्यार, सुरक्षा व अपनापन नहीं मिल पाता है जिसके वे स्वाभाविक रूप से पाने के अधिकारी हैं फलतः अनेक पारिवारिक विवादों का जन्म होता है जिसके निस्तारण के लिये न्यायालयों की शरण लेनी पड़ती है। यह सम्भव है कि कालान्तर में संयुक्त परिवार प्रणाली में कोई दोष या विकृतियाँ आ गयी हों तभी संयुक्त परिवारों में टूटन शुरू हुई हो, कुछ रूढ़िवादी परम्पराएं भी संयुक्त परिवार में घुटन पैदा करने या तोड़ने के लिये जिम्मेदार हो सकती है तो ऐसे में वर्तमान परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित कर संयुक्त परिवार के गठन में उपजे दोषों को दूर करने पर विचार किया जा सकता है किन्तु यह उचित नहीं है कि संयुक्त परिवार की धारणा को ही नकारा जाये। आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी जिम्मेदार व्यक्ति पारिवारिक विवादों को कम करने तथा पारिवारिक सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने के लिये भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर संयुक्त परिवार परम्परा को सुदृढ़ बनाने एवं संयुक्त परिवार की आवश्यकता पर पुनः विचार करें, ऐसा संयुक्त परिवार जिसके प्रत्येक सदस्य को सम्मान एवं मानव गरिमा के साथ जीवन निर्वाह का अधिकार हो तभी हम अपनी भावी पीढ़ी के लिए एक स्वस्थ एवं आदर्श समाज का निर्माण कर सकेंगे।

विवाह और कानून :

समाज की प्रारम्भिक इकाई के रूप में परिवार ही समाज के स्वरूप, उसकी सभ्यता, संस्कृति एवं उसके आदर्शों का निर्माण करता है। सुखी परिवार के बिना सुखी समाज

की कल्पना असम्भव है क्योंकि सभी मनुष्य आजीवन परिवार से जुड़े रहते हैं और परिवार में ही उनका समाजीकरण होता है। समाज द्वारा स्वीकृत मापदण्डों को अपनाते हुए परिवार परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए स्त्री–पुरूष को एक दूसरे के सम्मिलन से ही विवाह रूपी संस्था की सृष्टि फलदायी होती है। वैवाहिक सम्बन्ध जितना पवित्र एवं मधुर रहेगा परिवार उतना सुखी एवं समृद्ध होगा। इस प्रकार सुखी विवाह सुखी परिवार और सच पूछिये तो सुखी समाज की आधारशिला है। प्रत्येक धर्म में विवाह को न केवल पवित्र बंधन माना गया है बल्कि विवाह को एक धर्मनिष्ठ संस्था के रूप में मान्यता दी गयी है जिसकी बैध सन्तानों की उत्पत्ति में एक अहम भूमिका है।[1]

यद्यपि न्यायालय द्वारा प्रत्येक धर्म में किये गये विवाह कुछ अवस्थाओं में विच्छेदित किये जा सकते हैं परन्तु आज भी विवाह विच्छेदन को एक स्वस्थ समाज की परम्परा के रूप में मान्यता नहीं दी जाती है और आज के बदलते हुये नैतिक मूल्यों के माहौल में भी तलाकशुदा पति–पत्नी को प्रथम दर्जा नहीं दिया जाता। यदि हम स्वस्थ एवं सुखी समाज की कामना करते हैं तो हमें वैवाहिक संस्था को पवित्र एवं मजबूत बनाना चाहिये जिसके लिये विवाह सम्बन्धी विधिक जानकारी समाज के हर व्यक्ति को दी जानी उपयोगी है ताकि वे अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति सजग रह सकें और परिवार रूपी संस्था को कायम रखने में अपना आवश्यक योगदान दे सकें। इतना ही नहीं प्रत्येक नर–नारी को पारिवारिक या वैवाहिक शोषण से बचाये जाने के लिये एक स्वच्छ समृद्ध एवं विकसित समाज की ही आवश्यकता है।

भारतीय समाज में प्रमुखतः तीन सम्प्रदाय के लोग निवास कर रहे हैं, हिन्दू, मुस्लिम एवं ईसाई। अतः आवश्यक है कि इन तीनों सम्प्रदायों में विवाह के लिये अपनाये जाने वाले नियम एवं रीति रिवाजों का संक्षिप्त उल्लेख किया जाय।

---

1. विधिक सेवा पत्रिका, अप्रैल सितम्बर 2001 पृ0 1

कोई भी स्त्री पुरूष जो हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिख सम्प्रदायों से सम्बन्धित है वे अपने–अपने सम्प्रदाय में प्रचलित रीति रिवाजों के अनुसार वैवाहिक अनुष्ठान पूर्ण कर सकते हैं परन्तु कानून की दृष्टि से वैध विवाह के लिये हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5 के अन्तर्गत दी गयी आवश्यकताओं को पूरा करना होगा जो निम्न प्रकार हैः–

(क) वर एवं वधू का हिन्दू होना आवश्यक है अर्थात् वर वधू हिन्दू, सिख, बौद्ध या जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित होना चाहिये।

(ख) विवाह के समय न तो वर की कोई जीवित पत्नी होनी चाहिये और न तो वधू का कोई पहले से पति होना चाहिये अर्थात् पुरूष या स्त्री एक समय में एक से अधिक स्त्री पुरूष नहीं रख सकते हैं।

(ग) विवाह के समय वर एवं वधू को स्वस्थचित होना चाहिए। उसमें अपने भले बुरे के निर्णय की सम्पूर्ण शक्ति होना चाहिए अन्यथा ऐसा विवाह शून्यकरणीय होगा और पीड़ित पक्षकार नयायालय के माध्यम से वैवाहिक संबंध विच्छेदित करा सकते हैं।

(घ) विवाह के समय वर की आयु 21 वर्ष एवं वधू की आयु 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये।

(ङ) वर या वधू को सपिण्ड अथवा ऐसे नातेदारों में नहीं आना चाहिये, जिसका वैवाहिक बन्धन हिन्दू विधि के अनुसार निषिद्ध हो।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 7 में उन रीतियों का उल्लेख किया गया है जो दोनों पक्षकरों में मे किसी एक पक्ष की रीति रिवाज या रूढ़िजन्य कर्म द्वारा हो सकता है और जब तक विवाह कृत्य एवं कर्म सम्पन्न नहीं हो जाता तब तक उसको पूर्ण नहीं समझा जा सकता।

हिन्दुओं के बहुसंख्यक समाज में प्रचलित धार्मिक रीति के अनुसार पाणिग्रहण तथा सप्तपदी का सम्पादन होना आवश्यक है जिसके अनुसार विवाह अग्नि के सामने मंत्रों के उच्चारण से होता है और विवाह की पूर्णता वर वधू द्वारा अग्नि के सम्मुख सात फेरे लगाकर की जाती है। जैसे ही सातवां फेरा पूर्ण होता है विवाह भी पूर्ण हो जाता है विवाह की अनुष्ठापित प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न करने से इस प्रकार विवाह संस्कार का रूप ले लेता है।

सिख धर्म के अनुसार विवाह की जो प्रक्रिया है उसे आनन्द कारज कहते हैं। कई सिखों के विवाह एवं हिन्दुओं की विवाह पद्धति एक जैसी है और विवाह का अनुष्ठान स्प्तपदी की रस्म पूर्ण करने पर ही सम्पन्न माना जाता है। आनन्द कारज की रस्म में वर–वधू गुरूग्रन्थ साहब के सम्मुख उसे साक्षी मानकर शपथ ग्रहण करते हैं। गुरूवाणी का उच्चारण किया जाता है और अरदास की जाती है तत्पश्चात वर वधू गुरूग्रन्थ साहब के शब्दों का उच्चारण करते हैं तथा उसके चारों ओर 4 फेरे लगाते हैं और हर फेरे में गुरूग्रन्थ साहब को नमन किया जाता है और प्रसाद बाँटा जाता है तब विवाह की रस्म पूरी होती है।

बौद्ध धर्म में विवाह की पद्धति आचार्य द्वारा वर–वधू त्रिशरण सहित पंचशील ग्रहण करवाते हैं और दोनों से सहर्ष परस्पर वैहाविक जीवन यापन करने के लिये स्वीकृति प्राप्त होने पर भिक्खू द्वारा दोनों को भगवान बुद्ध के द्वारा आदेशित 5–5 कृत्यों का आजीवन निर्वाह करने की प्रतिज्ञा दिलायी जाती है और उसके पश्चात एक दूसरे को माला पहनाई जाती है। उसके बाद कन्या का पिता उसके दाहिने हाथ को वर के दाहिने हाथ में रखकर बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष अपनी लड़की को वर को समर्पित करता है और वर की स्वीकृति के पश्चात वर–वधू को सिन्दूर लगाता है और अंगूठी पहनाता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म में विवाह सम्पन्न समझा जाता है।

जैन धर्म को मानने वालों में विवाह के लिये सप्तपदी की रस्म आवश्यक है जो वेदी या हवन कुण्ड के पास रखी जाती है और पंच परमेष्टि को नमस्कार करने के पश्चात सप्तपदी की रस्म के पश्चात विवाह सम्पन्न होता है।

आर्य समाज पद्धति के अनुसार विवाह वैदिक रीति से सम्पन्न किया जाता है। इसके अनुसार कोई भी आर्य समाज मत का मानने वाला चाहे वह किसी जाति, धर्म या सम्प्रदाय का मानने वाला हो यदि आर्य समाजी है तो आर्य समाज पद्धति से हुआ उसका विवाह वैध होगा। इस संबंध में आर्य समाज वैलिडेशन एक्ट, 1937 के प्राविधानों के अनुसार कोई भी पूर्व में हुआ विवाह चाहे किसी जाति, उपजाति या धर्म के मानने वालों के बीच आर्य समाजी पद्धति से यदि हुआ है तो उसे मान्यता प्रदान की गयी है।

मुस्लिम विधि में विवाह का सम्पादन एक करार के रूप में होता है। अतः मुस्लिम विवाह वैधानिक अर्थ में एक वैवाहिक संविदा होता है जिसके लिये वर–वधू को उसी प्रकार सक्षम होना चाहिये जैसा कि किसी संविदा के करने के लिये व्यक्ति को सक्षम होना चाहिये। मुस्लिम विवाह को वैध होने के लिये निम्नलिखित शर्तों का अनुपालन आवश्यक है:–

1. विवाह के समय वर की तीन से अधिक जीवित पत्नियाँ नहीं होनी चाहिए और वधू का कोई जीवित पति नहीं होना चाहिए।
2. कोई भी मुस्लिम स्त्री इद्दत अथवा प्रसव की अवधि जो भी अधिक हो, के दौरान विवाह नहीं कर सकती है।

निम्नलिखित श्रेणी में आने वाले वर–वधू का विवाह शून्य (बातिल) होता है :

1. माँ, दादी और उसके ऊपर का कोई सम्बन्ध।
2. पुत्री, पौत्री और उसके नीचे का कोई सम्बन्ध।
3. भतीजी या उसकी पुत्री और उसके नीचे का कोई रिश्ता।

4. चाची, मौसी, बुआ या उसके ऊपर का कोई रिश्ता।

5. माँ अथवा उसके ऊपर का कोई रिश्ता।

6. पत्नी की पुत्री अथवा उसके नीचे का कोई रिश्ता।

7. श्वसुर की पत्नी और उसके दादा, दादी।

8. पुत्र की स्त्री अथवा अपने पौत्र की स्त्री।

9. पुत्री के पुत्र की स्त्री।

10. दूध का रिश्ता अर्थात् पक्षकारों में दूध का रिश्ता हो तो ऐसी स्थिति में विवाह नहीं हो सकता।

3. कोई भी मुस्लिम पुरूष ऐसी दो स्त्रियों को एक साथ पत्नी के रूप में नहीं रख सकता है जो कि एक दूसरे से इस प्रकार से संबंधित हों कि यदि उनमें से एक पुरूष होता तो दूसरे के साथ उसका विवाह वर्जित होता।

4. मुस्लिम विधि में विवाह एक संविदा माना गया है जिसमें प्रस्ताव या पैगाम वर या वधू की ओर से आता है और दूसरे पक्ष द्वारा स्वयं अथवा आवश्यकतानुरूप प्रतिनिधि के माध्यम से स्वीकार किया जा सकता है। प्रस्ताव तथा स्वीकृति दोनों एक ही बैठक में होना चाहिए तथा उपयुक्त और स्पष्ट भाषा का प्रयोग होना चाहिए और मेहर तय किया जाना आवश्यक है। इस कार्य के लिये हनफी मत के अुनसार दो गवाह होने चाहिए जबकि शिया महजब के अनुसार गवाहों की कोई आवश्यकता नहीं है। परम्परा के अनुसार निकाह पढ़े जाने के साथ विवाह मुकम्मल पूर्ण हो जाता है।

5. ईसाइ विधि में भी विवाह की एक निर्धारित प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत गिरजाघर में विवाह सम्पन्न कराया जाता है। विवाह का समय एवं स्थान पहले से निर्धारित

कर दिया जाता है, परन्तु ईसाई विवाह के लिये कुछ निम्नलिखित आवश्यक शर्तें हैं जिन्हें भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872 में दिया गया है:–

1. वर–वधू में से किसी एक का ईसाई होना आवश्यक है।
2. वर की उम्र 21 वर्ष और वधू की उम्र 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये।
3. विवाह के समय वर की कोई जीवित पत्नी एवं वधू का कोई जीवित पति नहीं होना चाहिए।
4. विवाह अधिनियम के अन्तर्गत सक्षम अधिकारी तथा दो गवाहों के समक्ष सम्पन्न किया जाना चाहिए।
5. पक्षकारों के मौके पर मौजूद लोगों के सामने जीसेस क्राइस्ट के समक्ष यह शपथ लेना आवश्यक है कि दोनों पति पत्नी के रूप में एक दूसरे को स्वीकार कर रहे हैं।

विशेष विवाह अधिनियम :

विशेष विवाह अधिनियम , 1954 के प्राविधानों के अनुसार किसी भी धर्म के मानने वाले स्त्री पुरूष विधिवत् विवाह कर सकते हैं और उस अधिनियम के अन्तर्गत विवाह सम्पन्न किये जाने पर विवाह का विधिवत् प्रमाण पत्र जारी किया जाता है जिस पर पक्षकारों के अलावा 3 साक्षी भी अपने हस्ताक्षर करते हैं। ऐसे सम्पन्न किये गये विवाह को विदेशों में भी मान्यता और स्वीकृति प्रदान की गयी है और विशेष रूप से पासपोर्ट आदि के मामले में सुविधा रहती है। इस प्रकार विवाह सम्पन्न कराने के लिये आवश्यक शर्तें निम्न प्रकार हैं।

1. किसी भी पक्षकार के कोई भी पति पत्नी जीवित न हो।
2. कोई भी पक्षकार जड़ या पागल न हो।
3. पुरूष की आयु 21 वर्ष और स्त्री की आयु 18 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

4. दोनों पक्षकारों में प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी नहीं होनी चाहिए, लेकिन यदि किसी पक्ष की पारिवारिक प्रथा ऐसे विवाह की अनुमति देती है तो विवाह सम्पन्न हो सकता है।

5. विवाह करने के लिये किसी विशेष रीति की आवश्यकता नहीं है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत किये जाने वाले विवाह के सम्बन्ध में पक्षकारों द्वारा द्वितीय अनुसूची में दिये गये प्रपत्र पर जिले के विवाह अधिकारी की सूचना दिया जाना आवश्यक है, जहां कम से कम विगत 30 दिनों से (नोटिस देने की तिथि से) दोनों में से एक रह रहे हों। धारा–5 के प्राविधानों के अनुसार प्रस्तावित विवाह के पूर्व विवाह अधिकारी को 30 दिन की नोटिस दिया जाना आवश्यक है और विवाह अधिकारी ऐसी सभी प्राप्त सूचनाओं को अपने कार्यालय में नियत प्रारूप में रखेगा, जिसे कोई भी व्यक्ति बिना किसी शुल्क दिये हुये इसका निरीक्षण कर सकता है और यह नोटिस उसके कार्यालय में किसी स्थान पर सामान्य लोगों की जानकारी के लिये चस्पा की जायेगी। यदि दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार सम्बन्धित विवाह अधिकारी के क्षेत्र में निवास नहीं कर रहा है तो धारा–5 के अन्तर्गत दी गयी नोटिस उस पक्षकार के स्थायी निवास स्थान पर भेजी जयेगी और उसे जिले के विवाह अधिकारी के कार्यालय में उसको किसी स्थान पर सभी की जानकारी के लिये चस्पा किया जायेगा। इस संबंध में यदि 30 दिन के अन्दर किसी को कोई आपत्ति हो तो आपत्ति कर सकता है। अन्यथा 30 दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात इन प्राविधानों के अन्तर्गत यह विवाह अधिनियम के द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्पन्न किया जायेगा।

विवाह का रजिस्ट्रीकरण :

कभी–कभी विवाह के अस्तित्व एवं इसे सिद्ध किये जाने के सम्बन्ध में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है कि पक्षकारों का विधिमान्य विवाह हुआ है या नहीं।

यह कठिनाई विवाह के रजिस्ट्रीकरण किये जाने से काफी हद तक दूर हो सकती है। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा–8 के प्राविधानों के अनुसार कोई भी सम्पन्न किये गये विवाह का रजिस्ट्रीकरण, यदि पक्षकार इच्छुक हों तो अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमों के अन्तर्गत रजिस्ट्रार को विहित फीस का संदाय करने पर ही विवाह रजिस्टर में जैसा विहित किया गया है, प्रविष्टि करा सकेंगे। यह रजिस्टर निरीक्षण के लिये सुलभ रहेगा और इसमें उल्लिखित कथन साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होंगे और विहित फीस देकर इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि रजिस्ट्रार कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में हिन्दू विवाह पंजीकरण नियमावली, 1973 में प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है।

मुस्लिम विधि के अन्तर्गत विवाह के पंजीकरण की कोई व्यवस्था नहीं की गयी है और इस विषय में विवाद उठने पर सम्बन्धित पक्षकार को यह सिद्ध करना होता है कि–

1. क्या वास्तव में पक्षकारों के बीच बैध विवाह हुआ था ?
2. क्या पक्षकारों में दीर्घकाल तक पति–पत्नी के रूप में सहवास किया गया है ?

   अथवा

3. किसी पुरुष ने स्त्री से उत्पन्न संतान का पितृत्व विधिवत स्वीकार किया है ?

इसके अतिरिक्त यदि विवाह सम्बन्धी अन्य प्रत्यक्ष साक्ष्य जैसे विवाह के समय उपस्थित साक्षियों का कथन, लिखित साक्ष्य, निकाहनामा इत्यादि भी प्रमाण पत्र के लिये प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

ईसाई धर्म के अन्तर्गत विवाह का पंजीकरण किया जाना आवश्यक है जैसा इस सम्बन्ध में भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872 के प्राविधानों में किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत पक्षकारों के विवाह का पंजीकरण यदि किया गया है तो वह विवाह को साबित करने के लिये पर्याप्त प्रमाण होगा।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 की धारा–15 के प्राविधानों के अन्तर्गत भी पक्षकार अपना विवाह पंजीकृत करा सकते हैं चाहे उनका विवाह इस अधिनियम के बाद या पहले किसी समय किसी धर्म या रीति रिवाज के अनुसार किया गया हो।

धारा–15 के अन्तर्गत ईसाई अधिनियम 1872 एवं विशेष विवाह अधिनियम 1954 के अन्तर्गत सम्पन्न किये गये विवाह को छोड़कर अन्य विवाहों का पंजीकरण निम्न शर्तो के अधीन किया जा सकता है :–

1. यह कि पक्षकारों के विवाह सम्पन्न होने के पश्चात वे बतौर पति–पत्नी एक साथ निवास कर रहे हों।
2. दोनों पक्षकारों में से किसी का पति या पत्नी जीवित न हो।
3. कोई भी पक्षकार पागल या विकृत या अस्वस्थ मस्तिष्क का न हो।
4. दोनों पक्षकारों की आयु 21 वर्ष से कम न हो।
5. दोनों पक्षकारों के बीच प्रतिषिद्ध कोटि की नातेदारी न हो अथवा जब तक कि दोनों पक्षकारों को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह स्वीकार्य न हो।

पक्षकार संबंधित विवाह अधिकारी के जिले में प्रार्थना पत्र देने के 30 दिन के पूर्व से निवास कर रहे हों ऐसे विवाह के पंजीकरण हेतु पक्षकारों द्वारा निर्धारित प्रारूप में एक प्रार्थना पत्र दिया जाता है जिसकी प्रविष्टि विवाह अधिकारी द्वारा रजिस्टर में अंकित की जाती है और 30 दिन की नोटिस दिये जाने के पश्चात यदि इसके विरूद्ध कोई आपत्ति नहीं प्राप्त होती है तो धारा–15 के अन्तर्गत शर्तों की पूर्ति होने पर विवाह अधिकारी द्वारा विवाह प्रमाण पत्र पंजिका पर अंकित करके जारी किया जाता है जिस पर दोनों पक्षकार और तीन साक्षियों के हस्ताक्षर होते हैं।

आज की सामाजिक संरचना एवं समाज के सभी वर्गों के लोगों की बदलती जीवनशैली विवाह के बंधन के पुराने स्वरूप एंव संबंधों के स्थायित्व एवं आपसी प्रेम–भाव को बहुत तेजी से प्रभावित कर रही है। पूर्व में जो विवाह एक पवित्र एवं सामाजिक संरचना के लिए एक महत्वपूर्ण आधार समझा जाता था और हिन्दू धर्म के मानने वालों के अनुसार इसे एक संस्कार अथवा जन्म–जन्मान्तर का संबंध मानकर पति–पत्नी के संबंधों को कभी न टूटने वाला संबंध माना जाता था, वह आज की बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में, पहले के जैसे स्थिति नहीं रह गयी है यही कारण है कि सभी धर्मों का विवाह जो एक पवित्र बंधन एवं स्थायी संबंध के में स्वीकार किया जाता है वह आज बहुत से विवादों से युक्त हो गया है और न्यायालयों में विवाह सम्बन्धी तमाम विवाह विच्छेदन एवं भरण–पोषण आद से संबंधित मामले लाखों की संख्या में विचाराधीन हैं। यह मनुष्य का स्वभाव है कि संबंध जितना ही निकट होता है उतनी ही अधिक उसके द्वारा एक दूसरे से अपेक्षायें भी रखी जाती हैं और इन अपेक्षाओं की पूर्ति न होने पर पति–पत्नी का आपस में मतभेद एवं विवाद होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि विवाह से संबंधित पुर्नस्थापना न्यायिक पृथक्करण एवं विवाह विच्छेदन के तमाम मामले हिन्दू, मुस्लिम और सिख, ईसाई धर्मो के मानने वालों के बीच काफी संख्या में होते हैं।

विवाह का पुर्नस्थापन :

विवाह के पश्चात आज बदलते हुए सामाजिक परिवेश में कुछ बिन्दुओं पर पति–पत्नी में विवाद होना स्वाभाविक है परन्तु स्थिति तब गम्भीर हो जाती है जब पति या पत्नी विवाद होने के कारण अपने जीवन साथी को त्याग देते हैं और दूसरा पक्षकार अपने वैवाहिक अधिकारों से वंचित हो जाता है। ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार अपने वैवाहिक कर्तव्यों का पालन कराने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर सकता है।

इसकी व्यवस्था हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 9 मुस्लिम विधि तथा भारतीय तलाक अधिनियम की धारा 32 (जो ईसाईयों पर लागू है) में की गयी है।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 के अन्तर्गत सम्पन्न विवाह के सम्बन्ध में इसी अधिनियम की धारा 22 में विवाह में पुर्नस्थापना का प्राविधान है।

न्यायिक पृथक्करण :

कभी—कभी वैवाहिक मतभेद होने के कारण पति—पत्नी को एक ही छत के नीचे रहना एवं अपने दाम्पत्य कर्तव्यों का निर्वाह करना सम्भव नहीं होता है परन्तु पीड़ित पक्षकार तलाक भी नहीं प्राप्त करना चाहता और उसे उम्मीद रहती है कि हो सकता है कुछ दिन अलग रहने के परिणाम स्वरूप दूसरे पक्षकार को अपनी गल्तियों का अहसास हो जाये और वह फिर से सारी गलत फहमियों को भूलकर एक साथ रहने के लिए आ जाये इसके लिये हिन्दू विवाह अधिनियम तथा भारतीय तलाक अधिनियम दोनों में व्यवस्था की गयी है। इन दोनों अधिनियमों के तहत पीड़ित पक्षकार न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्राप्त कर सकते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि पक्षकार कानूनी तौर पर पति—पत्नी के रूप में नहीं रहेंगे और उन्हें सहचर्य का कोई अधिकार नहीं रह जाता। भारतीय तलाक अधिनियम में (न्यायिक पृथक्करण को) डाईवोर्स ए मेन्साइट टोरो कहा गया है परन्तु मुस्लिम विधि में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में मुस्लिम विधि में केवल विवाह विच्छेदन ही विकल्प शेष रह जाता है।

विशेष विवाह अधिनियम के अन्तर्गत सम्पन्न विवाह के संबंध में उसी अधिनियम की धारा—23 के अन्तर्गत न्यायिक पृथक्करण की व्यवस्था की गयी है।

विवाह विच्छेद अर्थात् तलाक प्राप्त करने का अधिकार :

हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अन्तर्गत विवाहित स्त्री–पुरूष दोनों ही को एक दूसरे से तलाक प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। पति या पत्नी एक दूसरे के खिलाफ हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा–13 के अन्तर्गत विवाह विच्छेद की डिक्री प्राप्त कर सकते हैं। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा–13 के अन्तर्गत निम्नलिखित आधारों पर तलाक प्राप्त किया जा सकता है:–

1. दूसरे पक्ष ने जारता की है अर्थात् अपने पति या पत्नी से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति के साथ मैथुन किया है।
2. दूसरे पक्ष ने प्रथम पक्ष से शारीरिक या मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया है अर्थात पत्नी को चरित्रहीन बताया हो, बेइज्जत किया हो, मारपीट की हो, या जारता का झूठा आरोप लगाया हो या अन्य व्यवहार से शारीरिक या मानसिक क्रूरता की हो।
3. दूसरे पक्ष ने निरन्तर दो वर्ष तक प्रथम पक्ष को छोड़ दिया हो।
4. दूसरा पक्ष असाध्य रूप से विकृत चित्त रहा हो।
5. दूसरा पक्ष शारीरिक रूप से किसी गुप्त रोग या कुष्ठ रोग से पीड़ित हो।
6. दूसरे पक्ष ने संसार से सन्यास ले लिया हो।
7. दूसरा पक्ष जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक समय से यह नहीं सुना गया कि वह जीवित है।
8. दूसरे पक्ष ने अपने धर्म को त्याग कर अन्य धर्म अपना लिया हो।
9. यदि न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों को पुनः स्थापना की डिग्री के एक वर्ष के पश्चात भी पक्षकारों में सहवास न हुआ हो।

उपरोक्त आधारों के अतिरिक्त पत्नी को अपने पति के विरूद्ध तलाक प्राप्त करने का अधिकार तब भी दिया गया है जब कि उसके पति ने विवाह के पश्चात बलातसंग, गुदामैथुन या पशुगमन का अपराध किया है। तलाक प्राप्त करने के लिये सामन्यतः विवाह के एक वर्ष पश्चात ही प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है परन्तु विशेष परिस्थितियों में धारा–14 के अनुसार न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने एक वर्ष से पहले भी यह प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है।

मुस्लिम विधि में विवाह एक संविदा माना गया है और इस सम्बन्ध को तलाक द्वारा तोड़ा जा सकता है। मगर तलाक देने का अधिकार पति–पत्नी में समान नहीं है। मुस्लिम धर्म में तलाक की निन्दा की गयी है। हजरत मुहम्मद साहब के अनुसार अल्लाह को सबसे अप्रिय चीज तलाक लगती है और तलाक देना तभी उचित है जबकि पति–पत्नी में समझौता व सुलह से रहना असम्भव हो गया हो और परिवार के हित में एक यही विकल्प रह गया हो कि पति–पत्नी अलग हो जाएँ।

एक ही बार तीन तलाक कहकर विवाह बन्धन को तोड़ने की विधि (तलाक उल विद्दत) को साधारणतया अनियमित एवं घृणित माना गया है। तलाक देने का सबसे अच्छा तरीका यह माना जाता है कि पति–पत्नी को जबकि वह तुहर (वह पवित्रत्व अवधि जो दो मासिक धर्मों के बीच होती है जबकि पति–पत्नी में नियमतः सम्भोग सम्भव हो) में हो एक बार तलाक दे सकता है। यह तलाक अगली तीन लगातार तुहर तक निलम्बित रहता है। इस अवधि में पति–पत्नी के रिश्तेदार उनकी समस्यायें, समझाकर उनमें मेल–मिलाप करा दें या पति–पत्नी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लें तो तलाक प्रभावहीन हो जाता है अन्यथा लागू हो जायेगा (तलाक–उस–सुम्मत)

मुस्लिम विधि में पत्नी को पति से नयायालय द्वारा तलाक लेने का हक मुस्लिम विवाह अधिनियम 1939 की धारा–2 में दिया गया है, जिसके आधार निम्नलिखित हैंः–

1. यदि पति 4 वर्ष से लापता हो।

2. यदि पति ने 2 वर्ष तक पत्नी के भरण–पोषण की व्यवस्था करने में उपेक्षा की हो या असफल रहा हो।

3. यदि पति को 7 वर्ष या उससे अधिक अवधि के कारावास का दण्ड अन्तिम रूप से दिया गया हो।

4. यदि पति 3 वर्षों तक वैवाहिक कर्तव्यों का पालन बिना समुचित कारण के करने में असफल रहा हो।

5. यदि पति नपुंसक हो।

6. यदि पति दो वर्ष से पागल या कोढ़ या उग्ररतिज रोग से पीड़ित हो।

7. यदि 15 वर्ष (बालिंग/वयस्कता) की आयु होने के पहले किसी स्त्री का विवाह उसके संरक्षक ने किया हो और 18 वर्ष की आयु प्राप्त होन से पूर्व पत्नी ने विवाह रद्द कर दिया हो परन्तु यह आधार तभी लागू होगा जबकि उस अवधि में पति पत्नी में वैवाहिक संबंध स्थापित न हुआ हो।

8. यदि पति पत्नी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता है अर्थात् :–

(अ) अप्रायः उसे मारता है या,

(ब) क्रूर आचरण से उसका जीवन दुःखी करता है या,

(स) कुख्यात स्त्रियों की संगत में रहता है या,

(द) गर्हित जीवन व्यतीत करता है या,

(ध) पत्नी को अनैतिक जीवन व्यतीय करने पर मजबूर करने का प्रयत्न करता है या,

(न) पत्नी की सम्पत्ति बेचता है या उसे उस सम्पत्ति पर उसके अधिकार का प्रयोग करने से रोकता है या,

(य) उसका अपना धर्म आचरण करने से रोकता है या,

(र) उसे कुरान में निहित निर्देशों के अनुसार उसकी दूसरी पत्नी यदि कोई है, के साथ ठीक व्यवहार नहीं करता है।

9. पति द्वारा पत्नी पर झूठे जारकर्म का आरोप लगाने पर।

यदि मुस्लिम पति–पत्नी में विवाह के पहले या बाद में ऐसा करार हुआ हो जिसके अनुसार कुछ दशाओं में पत्नी द्वारा पति को तलाक देने का अधिकार प्राप्त हो तो विधि द्वारा तलाक प्राप्त करने के कुछ आधार ये हैं (तफवीज–ए–तलाक)

(अ) माँगने पर तुरन्त देय मेहर का पति द्वारा न दिया जाना

(ब) पति द्वारा पत्नी की सहमति के बिना दूसरा विवाह करना

(स) पति द्वारा दुर्व्यवहार करना

(द) पति द्वारा करार के विरूद्ध पत्नी के साथ रहने के लिए दूसर पत्नी लाना।

ईसाई समुदाय में पति–पत्नी को अपने विवाह को तलाक की डिग्री से समाप्त करने के अधिकारों में बराबरी नहीं है क्योंकि पत्नी को अपने पति से तलाक प्राप्त करने के जो अधिकार दिये गये हैं उनको साबित किया जाना सरल नहीं है भारतीय तलाक अधिनियम 1969 की धारा –10 के अन्तर्गत ईसाई पत्नी से केवल जारता के आधार पर तलाक ले सकती है जिसके लिए उसे जिला न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय में प्रार्थना पत्र/याचिका प्रस्तुत करना होगा। ईसाई पत्नी अपने ईसाई पति से जिन आधारों पर तलाक प्राप्त कर सकती है उसका उल्लेख भी भारतीय तलाक अधिनियम की धारा–10 में किया गया है जिसके अन्तर्गत पत्नी को अपने पति से तलाक लेने के लिए निम्न आधारों को साबित किया जाना अवश्यक है:–

1. पति ईसाई धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को मान लें और दूसरी औरत से विवाह कर लिया हो।

2. संगोत्र जारता का अपराधी है।

3. जारकर्म सहित दो पत्नी रखने का अपराधी है।

4. जारकर्म सम्बन्धित औरत से विवाह का अपराधी है।

5. बलात्कार, गुदा मैथुन या पशुगमन का अपराधी है।

6. निर्दयता के साथ जारकर्म जिसमें निर्दयता इस श्रेणी की हो कि पत्नी को मात्र निर्दयता के आधार पर विवाह विच्छेद का हकदार बना दें।

तलाक के सम्बन्ध में केरल के उच्च न्यायालय की पूर्णपीठ द्वारा दिये गये एक महत्वपूर्ण निर्णय मेरी सोनिया जकारिया बनाम भारत सरकार (1995 डी0 एम0 सी0 पेज 27) है जिसमें धारा–10 में उल्लिखित प्राविधानों पर विचार करते हुए इसके कुछ अंश को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, और 21 के प्राविधानों के प्रतिकूल माना है और उसे उस सीमा तक धारा–10 के प्राविधान विभेदकारी माना है जिसमें पत्नी को पति के विरूद्ध तलाक के लिए प्रस्तुत की गयी याचिका में क्रूरता एवं अभित्यजन के साथ जारता का आधार भी सिद्ध करना था जबकि अन्य धर्मो के मानने वाली स्त्रियों को क्रूरता अथवा अभित्यजन के साथ–साथ जारता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि वह क्रूरता अथवा अभित्यजन के आधार पर ही विवाह विच्छेदन का अनुतोष प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार केरल उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय के अनुसार धारा–10 के प्राविधानों में पत्नी के लिये क्रूरता और अभित्यजन के साथ सिद्ध करने की बाध्यता को बिलोपित कर दिया गया और अब क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर भी कोई ईसाई महिला तलाक की डिक्री प्राप्त कर सकती है।

केरल उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त दिये गये निर्णय को पुनः बाम्बे उच्च न्यायालय के द्वारा दिये गये पूर्णपीठ के निर्णय प्रगति बर्गीज बनाम शीज जार्ज वर्गीज (ए0

आई0 आर0 1997 पृष्ठ–349) में भी पुनः धारा–10 को उस सीमा तक विलोपित किया गया है जिसमें स्त्री से यह अपेक्षा की गयी है कि वह तलाक प्राप्त करने के लिए निर्दयता और अभित्यजन के साथ–साथ जारता को भी वह सिद्ध करे। इसे संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21 के प्राविधानों के प्रतिकूल बताया गया है। उपरोक्त दोनों निर्णयों से अब यह विधिक स्थिति स्पष्ट है कि ईसाई स्त्री भी तलाक प्राप्त करने के लिये क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर विवाह विच्छेदन की डिक्री प्राप्त कर सकती है और इसके साथ–साथ उसे जारता के आरोप सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह गयी है।

आपसी सहमति से तलाक :

हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 में रजामंदी से तलाक प्राप्त करने का प्राविधान धारा–13 बी में किया गया है जिसके अन्तर्गत दोनों पति–पत्नी को विवाह के एक वर्ष के पश्चात संयुक्त रूप से एक आवेदन सक्षम न्यायालय के सम्मुख देना होता है जिसमें दोनों पक्षकार यह उल्लेख करते हैं कि वह एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग रह रहे हैं तथा वे इस बात के लिये परस्पर सहमत हो गये हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए। ऐसे आवेदन को न्यायालय में दाखिल करने की तारीख से 6 माह की अवधि के पश्चात दोनों पक्षकारों को न्यायालय के सम्मुख बुलाया जाता है और यदि दोनों पक्षकार न्यायालय के समक्ष रजामंदी से तलाक लेने की सहमति प्रकट करते हुऐ अपना बयान देते हैं तो उसके आधार पर न्यायालय पक्षकारों की रजामंदी के आधार पर तलाक की डिक्री पारित करके विवाह का विच्छेदन कर देता है। रजामंदी से तलाक प्राप्त करने के लिये पक्षकारों द्वारा दिये गये संयुक्त आवेदन पर 6 माह या उससे अधिक समय न्यायालय द्वारा इसलिये दिया जाता है कि इस बीच यदि पक्षकारों के बीच में आपसी मतभेद समाप्त हो जाय तो वह इस रजामंदी के तलाक के प्रार्थना पत्र को वापस भी ले सकते हैं।

मुस्लिम पत्नी अपना पूरा मेहर की रकम के बदले खुला–विधि से पति की सम्मति से तलाक ले सकती है। इसी प्रकार जब मुस्लिम पति–पत्नी दोनों तलाक के लिये राजी हों तो मुबारत विधि से दोनों तलाक ले सकते हैं।

ईसाईयों में पारस्परिक तलाक (Mutual Divorce) लेने का कोई प्राविधान भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 में नहीं दिया गया है। जहां तक ऐसे विवाह का सम्बन्ध है जो भिन्न धर्मों वाले पति–पत्नी के बीच में विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अन्तर्गत सम्पन्न हुआ है उसमें पति–पत्नी को इसी अधिनियम की धारा–28 के अन्तर्गत पारस्परिक सहमति से तलाक प्राप्त करने के अधिकार दिये गये हैं और वे सम्बन्धित न्यायालय में पारस्परिक सहमति से तलाक प्राप्त करने हेतु आवेदन कर सकते हैं जिसकी प्रक्रिया भी लगभग वही है जो हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत पारस्परिक सहमति से तलाक प्राप्त करने की है।

<u>वाद विवाद एवं दौरान मुकदमा भरण–पोषण</u> :

पति–पत्नी के बीच न्यायालय में वैवाहिक विवाद के प्रस्तुत किये जाने पर धारा–24 हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के प्राविधानों के अनुसार ऐसे लम्बित मामलों में कोई भी पक्षकार जिसके पास आय का कोई पर्याप्त साधन नहीं है वह दूसरे पक्ष से भरण–पोषण एवं मुकदमे का खर्च प्राप्त करने का अधिकारी होता है। कानून की यह सामान्य अवधारणा है कि आर्थिक मामले में पत्नी की स्थिति पति से कमजोर होती है और वह अपने पति पर निर्भर रहती है। इसलिये भरण–पोषण एवं मुकदमे का खर्च प्राप्त करने के अधिकार का प्रयोग प्रायः पत्नी द्वारा ही अपने पति के विरूद्ध किया जाता है, यदि उसे पास स्वतंत्र आय का कोई श्रोत नहीं है और वह मुकदमे का व्यय उठाने के लिए सक्षम नहीं है तो धारा–24 के अन्तर्गत आवेदन पत्र देकर वह भरण–पोषण एवं वाद व्यय न्यायालय के आदेश से प्राप्त कर सकती हे। इस आवेदन की सुनवाई मूल वाद की सुनवाई से पहले की जानी आवश्यक

होती है और वह भरण पोषण या मुकदमे का खर्च मुकदमे की सुनवाई के दौरान ही देय होता है। इसके अतिरिक्त यदि पति–पत्नी में विवाह विच्छेद हो जाता है तो उस स्थिति में भी पत्नी अपने पति से धारा–25 के अन्तर्गत भरण–पोषण प्राप्त कर सकती है। यदि न्यायालय के द्वारा डिक्री पारित किये जाने के समय ऐसा कोई आदेश नहीं पारित किया गया है तो इस संबंध में मुकदमे की सुनवाई के पश्चात भी प्रार्थना पत्र दियेजाने पर वह जब तक दूसरा विवाह नहीं कर लेती और उसका चरित्र साफ हो एवं उसके पास आय के अन्य कोई साधन न हो तो वह पूर्व पति से भरण–पोषण का खर्च प्राप्त कर सकती है।

विशेष विवाह अधिनियम 1954 और भारतीय तलाक अधिनियम 1869 की धारा–36 के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा अंतरिम भरण–पोषण का आदेश किया जा सकता है। उसके अनुसार पुर्नस्थापन, न्यायिक पृथक्करण एवं तलाक के मामले में यदि पत्नी के पास आय का अन्य कोई स्वतंत्र साधन नहीं है तो न्यायालय पति की आय को ध्यान में रखते हुये उचित धनराशि उस वाद व्यय एवं भरण–पोषण के लिए प्रदान कर सकता है।

<u>बच्चों की अभिरक्षा</u> :

जब किसी हिन्दू पति–पत्नी में मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण विवाह विच्छेद की स्थिति आ जाती है और एक पक्षकार द्वारा दूसरे के विरूद्ध तलाक का मुकदमा न्यायालय में दायर कर दिया जाता है तो उस स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि ऐसे पति–पत्नी के बीच संतान को किसकी अभिरक्षा में दिया जाय। हिन्दू पति–पत्नी के बच्चों की संरक्षता के बावत हिन्दू आवयस्कता एवं संरक्षता अधिनियम, 1958 लागू होता है जिसके अन्तर्गत अवयस्क पुत्र एवं अविवाहिता पुत्री का संरक्षक उसकां पिता होता है। पिता के मरने के पश्चात उसकी माता उसकी संरक्षक होती है, परन्तु जहां पुत्र एवं अविवाहित पुत्री की आयु 5 वर्ष से कम होती है तो उस स्थिति में ऐसे पुत्र या पुत्री की संरक्षक उसकी माता होती है किन्तु नाजायज

संतान होने की स्थिति में पुत्र अथवा पुत्री दोनों की अभिरक्षा एवं संरक्षकत्व माता का ही होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पिता को अपने पुत्र अथवा पुत्री को अपनी अभिरक्षा में लेने का कोई अधिकार नहीं है। वास्तव में यह न्यायालय को निर्णय करना होता है कि बच्चों की अभिरक्षा उनकी माता को दी जाय या पिता को दी जाय जिसमें बच्चे का भविष्य सुरक्षित रह सके, इसलिये यदि न्यायालय को यह विश्वास है कि पुत्र एवं पुत्री को पिता की अभिरक्षा में दिये जाने से बच्चों का भविष्य सुरक्षित नहीं होगा तो उस स्थिति में न्यायालय अपने विवेक से बच्चों को माता की अभिरक्षा में दिये जाने का आदेश पारित कर सकता है। न्यायालय के विवेक पर ही अन्तिम निर्णय निर्भर करता है कि वह बच्चों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए माता या पिता में से उन्हें किसकी अभिरक्षा में देना उचित समझता है, इसलिये जब पति–पत्नी में आपस में कोई तलाक का मुकदमा न्यायालय में लम्बित होता है तो उस स्थिति में पत्नी भी बच्चों को अपनी अभिरक्षा में रखने के लिये न्यायालय से आवेदन कर सकती है। यह आवेदन हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा–26 के अन्तर्गत दिया जाता है जिसमें न्यायालय बच्चों की अभिरक्षा भरण–पोषण एवं शिक्षा के बारे में विचार करके उचित आदेश पारित करता है। जो व्यक्ति हिन्दू नहीं है और वह किसी अवयस्क की अभिरक्षा चाहता है तो उसको भारतीय संरक्षक अधिनियम, 1925 के अन्तर्गत सक्षम न्यायालय में आवेदन करना होगा और यदि न्यायालय ऐसे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त करना समीचीन समझता है तो उसकी संरक्षक के रूप में नियुक्ति करके अवयस्क को अभिरक्षा में देने का आदेश पारित कर सकता है।

द्विविवाह :

हिन्दू विधि में पति अपनी पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकता। यदि कोई पति एक पत्नी के जीवित रहते दूसरी शादी करता है तो ऐसी स्थिति में वह भा0

द0 सं0 की धारा–494 के अन्तर्गत अपराधी है तथा उसे 7 वर्ष की सजा एवं जुर्माने से दण्डित किया जा सकताहै। इसके लिये पत्नी अपने पति के विरूद्ध सक्षम न्यायालय में इस्तगासा दायर कर सकती है। इसके अतिरिक्त दूसरी शादी करने के आधार पर ऐसा किया गया दूसरा विवाह भी कानूनी दृष्टि में शून्य विवाह होता है और उससे पहली पत्नी के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही स्थिति अपने पति के जीवित रहते दूसरा विवाह करने वाली पत्नी की है।

मुस्लिम विधि में चूंकि एक ही समय में चार पत्नियाँ तक रखने का अधिकार है इसलिए मुस्लिम पति द्वारा दूसरा विवाह करने से कोई अपराध नहीं होता और न ही उसको भा0 द0 सं0 धारा–494 के अन्तर्गत दण्डित किया जा सकता है परन्तु अगर मुस्लिम पति एक से अधिक पत्नियाँ रखता है और दोनों के साथ भेदभाव करता है एवं असमानता का व्यवहार करता है तो उस स्थिति में ऐसे पति के विरूद्ध प्रभावित मुस्लिम पत्नी न्यायालय में मात्र इसी आधार पर तलाक प्राप्त कर सकती है।

सभी धर्मावलम्बी राजकीय कर्मचारियों के लिये उ0 प्र0 राज्य कर्मचारी आचरण नियमावली के अन्तर्गत जीवित पति/पत्नी की उपस्थिति में दूसरा विवाह वर्जित है।

<u>दूसरा विवाह कब किया जा सकता है</u> :

पति या पत्नी की मृत्यु होने की दशा में अथवा विवाह विच्छेद करने हेतु तलाक की डिक्री पारित होने के 30 दिन के पश्चात कोई भी पक्षकार दूसरी शादी करने के लिये स्वतंत्र है लेकिन यदि न्यायालय की डिक्री के विरूद्ध कोई अपील प्रस्तुत की गयी हो तो उसके निरस्त होने पर ही दुबारा विवाह किया जा सकता है। यह व्यवस्था हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा–15 के प्राविधानों के अनुसार की गयी है।

मुस्लिम विधि के अनुसार तलाक के पश्चात इद्दत की अवधि या 3 महीने की अवधि बीतने के पश्चात कोई स्त्री विवाह कर सकती है अथवा यदि स्त्री गर्भवती हो तो उस दशा में उसकी संतान के जन्म के पश्चात ही वह विवाह कर सकती है।

ईसाई विधि के अनुसार भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 की धारा--57 के प्राविधानों के अनुसार कोई भी पक्षकार जिला न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री को उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किये जाने पर 6 महीने के पश्चात विवाह कर सकता है अथवा यदि कोई डिक्री उच्च न्यायालय के द्वारा पारित की गयी हो और उसके विरूद्ध कोई अन्य अपील प्रस्तुत न की गई हो तो 6 महीने पश्चात विवाह कर सकता है और यदि अपील की गई हो तो अपील निरस्त होने के पश्चात विवाह कर सकता है।

विशेष विवाह अधिनियम की धारा–30 के प्राविधानों के अनुसार पक्षकारों के विवाह विच्छेद किये जाने की डिक्री पारित किये जाने की अपील प्रस्तुत किये जाने की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात या अपील निरस्त हो जाने के पश्चात विवाह किया जा सकता है।

विवादग्रस्त पति–पत्नी में समझौता– एक सामाजिक अनिवार्यता :

परिवार समाज की प्रारम्भिक ईकाई है। किसी भी समाज की सभ्यता एवं संस्कृति उसके सदस्यों के चरित्र एवं संस्कार से ही देखी जाती है। व्यक्ति की उन्नति इस बात पर निर्भर करती है कि वह सुखी परिवार में पैदा हो और सुखी परिवार में पले और बढ़े। अतः समाज की प्रारम्भिक पाठशाला परिवार है जहाँ से व्यक्ति को समाजीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है। परिवार से ही व्यक्ति के चरित्र का निर्माण एवं विकास होता है परिवार कैसा होगा यह निर्भर करता है पारिवारिक जीवन के वैवाहिक जीवन से। यदि यह कहा जाय कि विवाह परिवार का उद्‌गम स्त्रोत है अतिश्योक्ति नहीं होगी परन्तु आज के बदलते हुए

सामाजिक परिवेश में परिवार की विचारधारा बदलती जा रही है और धीरे–धीरे संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवार होता जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप एक सामाजिक नियंत्रण जो परिवार के सदस्यों पर रहता था वह समाप्त होता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप पति–पत्नी में उत्पन्न छोटे–छोटे विवाद भी मुकदमे का रूप ले रहे हैं जिसका बड़ा ही दुखद परिणाम सामने आ रहा है। न केवल विवादग्रस्त पति–पत्नी का सुखमय जीवन समाप्त हो रहा है बल्कि पक्षकारों से संबंधित रिश्तेदारों, मित्रगण और शुभचिन्तकों पर भी प्रभाव पड़ रहा है। वैवाहिक विवाद में उलझे माँ बाप के मासूम बच्चों की दुखद कहानी अन्तहीन हैं ऐसे बच्चों की हंसी खुशी खत्म होने के साथ–साथ उनका भविष्य अंधकारमय हो रहा है। विवादग्रस्त माता–पिता के बच्चे अपराध की राह पर चल पड़ते है जिससे पूरा समाज प्रभावित हो रहा है। अतः यह समाज के हित में है कि वैवाहिक बन्धन को मजबूत रखते हुये एवं वैवाहिक विवादों को यथाशीघ्र सुलह समझौते के आधार पर सुलझाते हुए छिन्न–भिन्न हो रही पारिवारिक संस्था को बचाया जाय।

पारिवारिक न्यायालय की स्थापना :

नियम कानून बनने के पूर्व भी पति–पत्नी में विवाद होते थे, लेकिन पति परमेश्वर एवं पत्नी गृह लक्ष्मी के रूप में अटूट वैवाहिक बन्धन में बंधे रहते थे और छोटे–मोटे विवाद रिश्तेदार एवं शुभचिन्तकों के माध्यम से सुलझा लिये जाते थे। विवाह विच्छेदन से संबंधित कानून बनने के पश्चात प्रायः यह देखा जा रहा है कि न्यायालयों में तलाक के मामले में बहुत अधिक संख्या में वृद्धि हो रही है, परन्तु न्यायिक कार्यवाही बहुत धीमी गति से हो रही है और इसका खामियाजा बदनसीब बच्चों को भुगतना पड़ता है। यह भी सत्य है कि न्यायिक आदेश से दो दिल एक सूत्र में नहीं बंध सकते हैं इसके लिये आवश्यक है कि प्रेम का धागा टूटने से पहले मजबूत किया जाय। इस संदर्भ में कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 पारित किया

गया और वैवाहिक विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निपटाये जाने के उद्देश्य से ही पारिवारिक न्यायलयों की व्यवस्था की गयी है। केन्द्र सरकार द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 में महत्वपूर्ण संशोधन कर दिनांक 24 सितम्बर, 2001 से भरण–पोषण (गुजारा) दिलाये जाने की 500/– रू0 धनराशि की अधिकतम सीमा समाप्त कर दी गयी है। अब भरण–पोषण/गुजारे की राशि न्यायालय /मजिस्ट्रेट द्वारा मामले की परिस्थितियों में उभयपक्ष की आर्थिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए अपने विवके से निर्धारित की जोयगी। यह भी संशोधन किया गया है कि न्यायालय में प्रकरण के लम्बित रहने के मध्य मासिक अन्तरिम गुजारा राशि दिलाये जाने के प्रार्थना पत्र का निस्तारण शीघ्र यथा सम्भव दो माह में किया जाय। इन ऐतिहासिक संशोधनों से निश्चित रूप से पीड़ित पक्ष को न्यायोचित गुजारा दिलाया जा सकेगा तथा पारिवारिक विवादों के शीघ्र निस्तारण में भी सहायता मिलेगी।

किसी भी वाद के निस्तारण में विलम्ब वादकारी के लिए कष्टकारी होता है किन्तु पारिवारिक वादों के निस्तारण में विलम्ब तो न्याय पाने के उद्देश्य को ही प्रभावित ही नहीं, कभी–कभी समाप्त ही कर देता है। कल्पना कीजिए कि यदि युवा दम्पत्ति में मतभेद हो जाए तथा विवाद न्यायालय तक पहुंच जाये और वाद का निस्तारण 10–15 साल तक न हो सके तो इस अवधि में पति–पत्नी, उनके बच्चे, माता पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य जिस मानसिक त्रासदी में रहते हैं उसकी मात्र कल्पना ही करना भयावह है। इसी प्रकार यदि निर्धन या मध्यम वर्गीय परिवार के भरण–पोषण दिलाने के वाद में पत्नी और उसके बच्चों को समय से भरण पोषण हेतु धन न प्राप्त हो सके तो ऐसे वाद में 5–10 साल बाद भरण पोषण की राशि प्राप्त होने का भी क्या अर्थ रह जाता है। ऐसा भी नहीं है कि विवाह विच्छेद हेतु वाद केवल युवा वर्ग तक ही सीमित हो, विवाह के 40–45 वर्ष के बाद भी पति–पत्नी लड़ते–झगड़ते न्यायालय तक पहुंच जाते हैं। पारिवारिक विवादों में बच्चों की दुर्दशा सबसे

अधिक होती है जो उनमें मानसिक कुंठा, आक्रोश, तनाव, नकारात्मक सोच तथा कठोर स्वभाव को जन्म देती है यह सभ्य समाज के भविष्य के लिये घातक लक्षण है। न्याय प्रक्रिया लम्बी एवं पेचीदा होने के कारण आज न्यायालयों में अनेक पारिवारिक विवाद समय से निस्तारित न हो पाने के कारण लम्बित पड़ें हैं। इसी पृष्ठभूमि में पारिवारिक विवादों की विशेष एवं संवेदनशील स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए विधिक सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण से प्राप्त अनुदान के सहयोग से प्रदेश के सभी जनपद न्यायालयों में जिला प्राधिकरण के तत्वावधान में परामर्श एवं सुलह–समझौता केन्द्र बनाये गये हैं जिनमें संधिकर्तागण मनोवैज्ञानिक ढंग से अपने गहन अनुभवों के आधार पर पारिवारिक विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निस्तारित कराने का प्रयत्न करते हैं। विधिक सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदेश में अभी तक सुलह समझौते के आधार पर पांच हजार से अधिक पारिवारिक विवादों को हल कराने में सफलता मिली है।[1]

परिवार न्यायालय के ऊपर यह दायित्व रखा गया है कि वह वाद की सुनवाई से पूर्व सुलह–समझौते के आधार पर मामले को निस्तारित कराने का पूरा प्रयास करें जिसकी व्यवस्था उ0 प्र0 परिवार न्यायालय नियमावली, 1995 में भी की गयी है। यह प्राविधान किया गया है कि प्रत्येक परिवार न्यायालय के साथ एक परिवार परामर्श केन्द्र स्थापित किया जायेगा जिसमें संधिकर्ता की नियुक्ति करके उन्हें सुलह समझौते के माध्यम से वाद के निस्तारण हेतु लगाया जायेगा परन्तु खेद का विषय है कि अभी तक शासन स्तर से इस उद्देश्य हेतु कोई कदम नहीं उठाया गया जबकि मामले इतने संवेदनशील है कि यदि एक तलाक का मामला वर्षो तक न्यायालय में रहता है तो संबंधित दम्पत्ति के न केवल महत्वपूर्ण युवा वर्ष समाप्त हो जाते हैं बल्कि उनकी सुख शान्ति भी समाप्त हो जाती है और परिवार का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है।

1. वीरेन्द्र कुमार दीक्षित, संपादकीय पारिवारिक विवाद विशेषांक, विधिक सेवा पत्रिका, लखनऊ।

इसके अतिरिक्त प्राधिकरण के मुख्यालय पर पारिवारिक विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निपटाने हेतु एक वैवाहिक प्रकोष्ठ की स्थापना की गई है। जो मामले प्राधिकरण कार्यालय में प्राप्त होते हैं उनमें दोनों पक्षकारों को बुलाकर माननीय कार्यपालक अध यक्ष एवं अन्य अधिकारी द्वारा विवाद को समाप्त कराने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य में प्राधिकरण को कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं का योगदान मिला है जिसके बड़े ही उत्साहवर्धक परिणाम मिल रहे हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक जनपद में पति–पत्नी के विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निस्तारित कराने का प्रयास किया जाय ताकि विवाद न्यायालय तक नहीं पहुंच पाये और यदि दुर्भाग्यवश न्यायालय तक पहुंच जाते हैं तो ऐसी स्थिति में संबंधित न्यायिक अधिकारी को भी यह दायित्व है कि वह जहां तक संभव हो सुलह समझौते के आधार पर प्रारम्भिक स्तर पर ही इसे निस्तारित कराने का प्रयास करें।

<u>पारिवारिक न्यायालय संगठन</u> :

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 के अध्याय 2 में पारिवारिक न्यायालयों का संगठन दिया गया है। धारा 3 में कहा गया है कि राज्य सरकार उच्च न्यायालय से परामर्श करके और अधिसूचना जारी करके राज्य के उस प्रत्येक क्षेत्र में पारिवारिक न्यायालय की स्थापना करेगी जिनकी जनसंख्या 1 मिलियन से अधिक है। राज्य सरकार ऐसे क्षेत्रों में भी इन न्यायालयों की स्थापना कर सकती है जहां वह आवश्यक समझे। इसके अतिरिक्त सरकार अधिसूचना के द्वारा पारिवारिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भौगोलिक क्षेत्र की सीमा का निर्धारण विस्तार कमी या परिवर्तन कर सकती है।

<u>न्यायाधीशों की नियुक्ति</u> :

पारिवारिक न्यायालयों के न्यायाधीशों के सम्बन्ध में अधिनियम व्यवस्था करता है कि राज्य सरकार उच्च न्यायालय से परामर्श कर पारिवारिक न्यायालयों में एक या अधिक

न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सकती है।[1] यदि किसी पारिवारिक न्यायालय में एक से अधिक न्यायाधीशों की नियुक्ति होती है तो अधिनियम की धारा 4 (2) निम्नांकित प्राविधान करती है।

(अ) प्रत्येक न्यायाधीश इस अधिनियम के अन्तर्गत या किसी कानून के द्वारा निर्धारित पारिवारिक न्यायालय की सभी या किसी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

(ब) राज्य सरकार उच्च न्यायालय से परामर्श करके पारिवारिक न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को प्रधान न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीश को अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश नियुक्ति कर सकती है।

(स) प्रधान न्यायाधीश समय–समय पर ऐसी व्यवस्थायें करेगा जिससे कि वह अन्य न्यायाधीशों के सहयोग से न्यायालय के कार्य वितरण को सुचारू रूप से सम्पन्न कर सके।

(द) अतिरिक्त प्रधान न्यायाधीश प्रधान न्यायाधीश का पद रिक्त होने पर या उसकी बीमारी अथवा उसकी अनुपस्थिति में प्रधान न्यायाधीश की सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

न्यायाधीशों की योग्यतायें :

कोई भी व्यक्ति तब तक परिवारिक न्यायालय के न्यायाधीश के पद के लिये अर्ह नहीं होगा जब तक कि

(अ) उसने भारत के किसी न्यायिक विभाग में या किसी ट्रिब्यूनल के कार्यालय में अथवा संघीय या राज्य सरकार के किसी ऐसे कार्यालय में कानून की जानकारी रखने वाले पद पर कम से कम सात वर्ष तक कार्य किया हो।

(ब) किसी अन्य न्यायालय या उसके समकक्ष दो न्यायालयों में लगातार कम से कम सात वर्ष तक अधिवक्ता रहा हो।

---

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 4 (1)

(स) भारत के मुख्य नयायाधीश की सहमति के साथ केन्द्र सरकार द्वारा इस पद के लिये निर्धारित कोई अन्य योग्यता रखता हो।[1]

इस अधिनियम की धारा 4 (4) (a) के अनुसार पारिवारिक न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन करते समय यह सुनिश्चित करना चाहिये कि सम्बन्धित व्यक्ति विवाह संस्था के संरक्षण एवं सुरक्षा की आवश्यकता के प्रति, बच्चों के कल्याण को प्रोत्साहित करने के प्रति समर्पित हो एवं विवादों के निपटारे को सामंजस्य एवं सुलह के द्वारा हल करने में अनुभवी एवं पारंगत हो। न्यायाधीशों की नियुक्ति में महिलाओं को वरीयता दी जायेगा।[2]

पारिवारिक न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति होने की अधिकतम सीमा 62 वर्ष है, इससे अधिक आयु का कोई भी व्यक्ति न्यायाधीश नहीं बन सकता।[3] न्यायाधीशों का वेतन मानदेय और अन्य भत्ते तथा सेवा की शर्तें व परिस्थितियाँ वही होगी जो राज्य सरकार उच्च न्यायालय से परामर्श करके निर्धारित करेगी।[4]

<u>सामाजिक कल्याण से संबंधित संस्थाओं से सम्बद्धता</u> :

यह अधिनियम राज्य सरकार को पारिवारिक न्यायालय को अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये सामाजिक कल्याण सम्बन्धी संस्थाओं या व्यक्तियों से सम्बद्ध करने की अनुमति देता है। इस सम्बन्ध में निम्नांकित व्यक्ति पात्र होंगे।

(अ) सामाजिक कल्याण में लगी समाजिक संस्थायें एवं संगठन अथवा उनके प्रतिनिधि।

(ब) ऐसे व्यक्ति जो परिवार कल्याण को प्रोत्साहित करने के व्यवसाय से समबद्ध हो।

(स) सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति।

(द) वे अन्य व्यक्ति जिनकी समबद्धता से पारिवारिक न्यायालयों का कार्यक्षेत्र का उद्देश्य पूरा होता हो।[5]

---

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 4 (3)
2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 4 (4) (b)
3. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 4 (5)
4. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 4 (6)
5. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 5

पारिवारिक न्यायालयों के काउंसलर्स, पदाधिकारी एवं अन्य कर्मचारी :

राज्य सरकार उच्च न्यायालय के परामर्श से पारिवारिक न्यायालय के सुचारू संचालन की दृष्टि से आवश्यक काउंसलर की श्रेणियां एवं संख्या, पदाधिकारी एवं अन्य कर्मचारियों का निर्धारण करेगी, एवं इनकी सेवा शर्तों का निर्धारण करेगी।[1]

पारिवारिक न्यायालयों का क्षेत्राधिकार :

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 के अध्याय 3 में पारिवारिक न्यायालयों का क्षेत्राधिकार स्पष्ट किया गया है इसमें कहा गया है कि एक पारिवारिक न्यायालय उसी क्षेत्राधिकार को रखेगा एवं प्रयुक्त करेगा जो किसी जिला न्यायालय एवं अधीनस्थ दीवानी न्यायालय को समय–समय पर पारित होने वाले कानूनों द्वारा प्राप्त है और इसे निम्नांकित स्पष्टीकरण के अनुसार मुकदमो और प्रक्रिया की सुनवायी करने का अधिकार होगा।[2]

स्पष्टीकरण :

पारिवारिक न्यायालय में आने वाले वाद और प्रक्रिया जो इस उपधारा (7, 1 (a)) के अन्तर्गत आते है, निम्नांकि प्रकृति के होंगे–

(अ) दो पक्षों के बीच विवाह सम्बन्धी ऐसे मामले जो विवाह को अवैध घोषित करने की प्रार्थना करते हों या विवाह के न्यायिक पृथक्करण अथवा विवाह भंग की प्रार्थना से सम्बन्धित हों

(ब) विवाह की वैधता अथवा किसी व्यक्ति की वैवाहिक स्तर से सम्बन्धित मामले

(स) विवाह के सम्बन्ध में सम्पति सम्बन्धित विवाद से सम्बन्धित मामले

(द) वैवाहिक सम्बन्धों में विशेष परिस्थिति के अन्तर्गत किसी मामले पर आदेश देने से सम्बन्धित मामले

(य) किसी व्यक्ति की औचित्यपूर्णता की घोषणा से सम्बन्धित मामले।

---

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 5
2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 6

(र) गुजारा भत्ता से सम्बन्धित मामले।

(ल) किसी अवयस्क की संरक्षा अथवा किसी व्यक्ति के अभिभावकत्व से सम्बन्धित मामले।[1]

संविधान की धारा 7 (2) यह उद्घोषित करती है कि एक पारिवारिक न्यायालय इस अधिनियम के अन्य प्राविधानों के सम्बन्ध में आपराधिक दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 (के अध्याय 9 के अन्तर्गत) प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले क्षेत्राधिकार को रखेगा एवं प्रयोग करेगा। इसके अतिरिक्त समय–समय पर लागू किये जाने वाले अन्य क्षेत्राधिकार का भी उपभोग करेगा।[2]

जब कोई पारिवारिक न्यायालय किसी क्षेत्र में स्थापित किया जाता है तो अधिनियम की धारा 8 निम्नांकित निर्देश देती है–

(अ) कोई भी जिला न्यायालय या अधीनस्थ दीवानी न्यायालय इस अधिनियम की धारा 7(1) एवं स्पष्टीकरण में दिये गये क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण नहीं कर सकता।

(ब) आपराधिक दण्ड संहिता 1973 के अध्याय 9 में विहित क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण कोई भी मजिस्ट्रेट नहीं कर सकेगा।[3]

पारिवारिक न्यायालयों में प्रयुक्त प्रक्रिया :

पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 का अध्याय 4 इन न्यायालयों की प्रक्रिया का वर्णन करता है। यह अधिनियम पारिवारिक न्यायालयों का प्रमुख कर्तव्य विवादों के हल के लिये प्रयास करना मानता है। इसके लिये पारिवारिक न्यायालय को विवादग्रस्त पक्षों को हल के लिये प्रेरित करने के लिये परिस्थितियां पैदा करनी चाहिये।[4] अगर मुकदमे की कार्यवाही के दौरान न्यायालय को ऐसा लगे कि दोनों पक्षों में समझौता हो सकता है तो न्यायालय को मुकदमे की कार्यवाही कुछ समय के लिये जितना वह उचित समझे बढ़ाने का अधिकार है।[5]

---

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 7 (1) (a)
2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 7 (1) स्पष्टीकरण
3. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 7 (2)
4. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 8
5. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 9 (1)

सामान्य प्रक्रिया :

उक्त अधिनियम सामान्य प्रक्रिया से सम्बन्धित निम्नांकित नियमों पर जोर देता है–

(1) इस अधिनियम के अन्य प्राविधानों के तथा 1908 के दीवानी प्रक्रिया संहिता के प्राविधानों, अपराधिक प्रक्रिया संहिता के अध्याय 9 में विहित प्राविधानों के अन्तर्गत पारिवारिक न्यायालय एक नागरिक न्यायालय की तरह कार्यवाही करने तथा इसकी शक्तियों का प्रयोग करने में स्वतन्त्र होगा।

(2) इस अधिनियम के प्राविधानों और नियमों तथा आपराधिक दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 या इसके अन्तर्गत बने नियमों के अन्तर्गत पारिवारिक न्यायालय पर उक्त संहिता के अध्याय 9 में वर्णित कार्यवाही लागू होगी।

(3) उक्त दोनों धाराओं में ऐसा कुछ भी नहीं है जो एक पारिवारिक न्यायालय को विभिन्न परिस्थितियों में पक्षकारों के हित में अपने स्वयं की प्रक्रिया बनाने से रोक सके।[1]

अधिनियम व्यवस्था करता है कि पारिवारिक न्यायालय की कार्यवाही बन्द कमरे में होगी और गुप्त रहेगी।[2] कार्यवाही के समय न्यायालय को चिकित्सा एवं सामाजिक कल्याण विशेषज्ञों की सहायता लेने का अधिकार होगा।[3] पारिवारिक न्यायालय में किसी भी पक्ष को किसी भी अधिवक्ता की सेवायें लेने का अधिकार नहीं होगा केवल उस स्थिति को छोड़कर जबकि न्याय के हित में उसकी आवश्यकता समझकर अनुमति दे।[4]

पारिवारिक न्यायालय किसी भी रिपोर्ट, कथन, अभिलेख, सूचना या विषय को प्रमाण के रूप में स्वीकार कर सकती है जो उसकी राय में किसी मुकदमे को सहायता देने के लिये प्रभावी है और जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 के अन्तर्गत स्वीकार करने योग्य या उपयुक्त है।[5] मुकदमे की कार्यवाही के दौरान यह आवश्यक नहीं है कि गवाही के साक्ष्य

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 10
2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 11
3. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 12
4. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 13
5. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 14

लिखित रूप में हो बल्कि प्रत्येक मौखिक गवाही के सार को एक ज्ञापन के रूप में अभिलेख के रूप में रखा जा सकता है जिस पर गवाह और न्यायाधीश दोनों के हस्ताक्षर होते है।[1] औपचारिक प्रकृति की किसी भी व्यक्ति के साक्ष्य को पारिवारिक न्यायालय में शपथपत्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। पारिवारिक न्यायालय इस शपथपत्र से सम्बन्धित व्यक्ति को, शपथपत्र में वर्णित तथ्यों की पुष्टि के लिये न्यायालय के समक्ष बुला सकता है।[2]

पारिवारिक न्यायालय के निर्णय :

पारिवारिक न्यायालय का निर्णय वाद से सम्बन्धित एक छोटा सा कथन होता है जिसमें इस कथन के औचित्य के कारण दिये होते है।[3]

पारिवारिक न्यायालय के द्वारा दिये गये निर्णय व आदेश वही शक्ति व प्रभाव रखते है जिस तरह एक दीवानी न्यायालय के निर्णय रखते हैं और दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 में दिये गये तरीके से लागू होते हैं।[4] आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 के अध्याय 9 के अन्तर्गत दिये गये पारिवारिक न्यायालय के आदेश इस संहिता में दिये गये तरीके से लागू होते है।[5]

पारिवारिक न्यायालय के निर्णय की तिथि से 30 दिन के अन्दर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।[6]

(स) परिवार परामर्श केन्द्र :

वर्तमान समय में भारतीय समाज अनेक राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक समस्यायों से ग्रसित है। इनमें पारिवारिक समस्यायें ऐसी है जिनका समाधान समय पर नहीं किया जाये तो परिवार टूट जाता है। परिवार के विघटन का दुष्प्रभाव समाज व राष्ट्र को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता तथा पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव से भारत में भी परिवार टूटने की प्रक्रिया आम हो गयी है। प्रायः छोटी–छोटी बातों से दिग्भ्रमित होकर

---

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 15
2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 16
3. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 17
4. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 18 (1)
5. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 18 (2)
6. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 की धारा 19

न्यायालय की शरण में पहुंच जाते हैं। न्यायालय की लम्बी कानूनी प्रक्रिया के चक्रव्यूह में फंसकर आर्थिक, सामाजिक प्रतिष्ठा खो बैठते है।

इसके पीछे मुख्य कारण दहेज की माँग, दहेज कम मिलने पर प्रताड़ना पति द्वारा क्रूरता, पारिवारिक सम्बन्धों में क्रूरता, बहु के साथ दुर्व्यवहार, तलाक, आत्महत्या बहुपत्नी प्रथा, सती प्रथा, पुनः विवाह अनुकूल वर या वधू का न मिलना, आपसी प्रेम या विश्वास का अभाव, घर परिवार पड़ोस का अस्वस्थ वातावरण, आय–व्यय में असंतुलन, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा धार्मिक आर्थिक व शारीरिक सन्तुष्टी का न होना, परिवार निर्माण सम्बन्धी अज्ञानता, उत्तरदायित्व निर्वाह की अक्षमता, वैवाहिक मार्ग दर्शन की कमी, दाम्पत्य जीवन की चुनौतियां आदि पारिवारिक ज्वलन्त समस्यायें प्रतिदिन आती है। इनमें से अधिकांश समस्यायें परामर्श एवं मार्ग दर्शन द्वारा हल की जा सकती है। समस्याग्रस्त व्यक्तियों के विचार व्यवहार, जीवन मूल्य एवं दृष्टिकोण को सकारात्मक रूप देकर विशेषज्ञों द्वारा समस्या का समाधान किया जा सकता है। समस्या का समाधान न होने की दशा में अन्य संस्थाओं के सहयोग से पीड़ित व्यक्ति का पुर्नवास कर उसे स्वालम्बी बनाया जा सकता है। उसके जीवन में परिवर्तन लाया जा सकता है।

अतिरिक्त कारणों में देखे तो वर्तमान वैज्ञानिक युग में मनुष्य कई समस्याओं से घिरा हुआ है जो उसके शारीरिक एवं मानसिक तनाव/परेशानियों का कारण बना हुआ है। आज की भौतिकता में जहां मनुष्य भौतिक वस्तुओं की चाह में अधिक से अधिक धन अर्जन करने के लिये कठिन परिश्रम कर रहा है। वहीं दूसरी तरफ वह बगैर परिणाम के भी वस्तुओं के लालच में रिश्तों को बेच रहा है। जो हमारे समाज में दहेज के नाम से प्रचलित है। यद्यपि दहेज की प्रथा हमारे समाज में काफी दिनों से रही है। परन्तु आज के युग में नाम वही है। जबकि दहेज की परिभाषा पूरी तरह से बदल चुकी है। पिछले दिनों दहेज स्वैच्छिक था,

आज अनिवार्य हो गया है। फलस्वरूप रिश्ते बेचे जा रहे है। अबलायें जलायी जा रही हैं मानवता का खून हो रहा है, पारिवारिक तनाव बढ़ रहा है। कलह महिला उत्पीड़न हो रहा है, परिवार टूट रहे हैं व्यक्ति और समाज का विघटन हो रहा है।

यद्यपि दहेज प्रथा, बाल विवाह नारी को निम्न सामाजिक परिस्थिति देने जैसी कुप्रथायें हमारे समाज में आदि काल से ही चली आ रही है। जिसके परिणाम स्वरूप लाखों घर–परिवार नष्ट हो रहे है। महिलाओं पर होने वाले अत्याचार दुर्व्यवहार, पक्षपात दिनों दिन बढ़ रहे हैं। दहेज उत्पीड़न के कारण होने वाली मृत्यु एवं घटनायें दिन प्रतिदिन प्रकाश में आ रही है। जिसके परिणाम स्वरूप कुछ महिलाओं में शादी, ससुराल एवं वैवाहिक जीवन के प्रति एक मानसिक विकृति उत्पन्न होती जा रही है। जिसके फलस्वरूप लोगों के वैवाहिक जीवन नष्ट हो रहे है। परिवार टूट रहे है। तलाक की संख्या बढ़ रही है। बचपन अधर में लटक रहे है जो देश के बुद्धिजीवियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये एक गहरी चिन्ता का विषय है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर ऐसी घटनाओं पर रोक लगाने हेतु समाज कल्याण बोर्ड भारत सरकार ने ऐच्छिक कार्यवाही ब्यूरो की स्थापना की जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर पर स्वेच्छिक संगठनों का वित्तीय सहयोग प्रदान कर ''परिवार परामर्श केन्द्र'' संचालित कर रहा है। उत्तर प्रदेश राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड के निर्देशन में ''राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण'' द्वारा राज्य के प्रत्येक जिले में कम से कम एक परिवार परामर्श केन्द्र स्थापित किये जाने की योजना तैयार की गयी है।

परिवार परामर्श केन्द्र के उद्देश्य :

परिवार परामर्श केन्द्र स्थापित करने के उद्देश्य निम्नांकित है।

1. दहेज जैसी सामाजिक समस्या के निराकरण हेतु प्रयास करना।

2. पति–पत्नी में सामंजस्य स्थापित कर परिवार को टूटने से बचाने का प्रयास।
3. यातना ग्रस्त महिलाओं के लिये विशेषज्ञों द्वारा मार्ग दर्शन।
4. निःशुल्क कानूनी, मनोवैज्ञानिक व चिकित्सा सेवायें प्रदान करना।
5. आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा सेवायें एवं आल्पावास सेवायें प्रदान करना।
6. परिवार के अमानुषिक व्यवहार से प्रताड़ित महिलाओं की सहायता करना।
7. समाज द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति का मार्ग दर्शन करना।
8. सामाजिक अपराधों के विरूद्ध व्यक्तियों को सुशिक्षित करना।
9. युवक युवतियों को विवाहित जीवन में प्रवेश की तैयारी की जानकारी कराना।
10. सुखी विवाहित जीवनयापन को सक्षम बनाने हेतु परामर्श।
11. पारिवारिक शांति एवं सयुक्त परिवार की प्रासंगिकता स्थापित करना।
12. वैज्ञानिक संस्कार की गरिमा व नारी के मौलिक अधिकारों की सरुक्षा करना।

परिवार परामर्श केन्द्र की कार्य विधि :

परिवार परामर्श केन्द्र में नियुक्त दो सलाहकारों द्वारा उभय पक्ष से समस्या के संदर्भ में विस्तृत वार्ता करते हुये विवाद के कारण को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है तथा यथा आवश्यकता संबंधित पक्षकारों या संबंधित व्यक्तियों से सम्पर्क जांच हेतु भ्रमण भी किया जाता है। केन्द्र के दिन प्रतिदिन के कार्यो का पर्यवेक्षण पुलिस अधीक्षक स्तर के अधिकारी द्वारा किया जाता है। प्रत्येक प्रकरण यथासंभव परामर्श द्वारा सुलह समझौता कराकर विवाद के समाधान का प्रयास किया जाता है। परन्तु परिस्थिति अनुसार पुलिस जांच भी करायी जाती है। प्रकरणों में कानूनी विवाद या अड़चनों की स्थिति में राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, उ0 प्र0 तथा विभिन्न जनपदों में स्थित जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों को प्रकरण सन्दर्भित किये जाते है, जहां से सेवार्थियों को कानूनी सहायता परामर्श निःशुल्क उपलब्ध कराया जाता है।

प्रकरण के आधार पर समस्याओं की प्रकृति के अनुसार विशेषज्ञों (कोन्सलरों) द्वारा निम्न प्रकार से कार्यवाही की जाती है।

1. प्रकरण का पंजीकरण : समस्या की पूर्ण जानकारी हेतु कार्य करना।
2. वैयक्तिक साक्षात्कार : समस्याग्रस्त व्यक्तियों से प्रत्यक्ष रूप से मिलकर आवश्यक जानकारी प्राप्त करना एवं निरन्तर सम्पर्क बनाये रखने हेतु पत्राचार करना।
3. प्रारम्भिक खोज : उत्पन्न समस्या प्रारंभिक कारणों का पता लगाना।
4. वैयक्तिक अध्ययन : समस्या के गहन अध्ययन हेतु समस्याग्रस्त व्यक्ति से व संबंधियों से लगातार व्यक्तिगत सम्पर्क बनाये रखना।
5. साक्षात्कार का अभिलेखन : व्यक्तिगत साक्षात्कार को लिखित रूप प्रदान करना।
6. प्रकरण की जांच : विषयान्तर्गत समस्या का पता लगाना।
7. व्यक्तिगत सम्पर्क : समस्याग्रस्त व्यक्तियों से समय–समय पर गृह सम्पर्क व पत्र व्यवहार बनाये रखना।
8. परामर्श : निःशुल्क कानूनी सलाह बिना, पक्षपात के उपर्युक्त मार्ग दर्शन, मनोवैज्ञानिक व चिकित्सा सेवा, पुलिस सहायता व व्यवसायिक प्रशिक्षण एवं मूल्यांकन करना।
9. वैवाहिक संस्कार की गरिमा को बनाये रखने हेतु प्रवचन।
10. पारिवारिक सुख शांति एवं संयुक्त परिवार के महत्व को स्थापित करना।
11. सरकारी गैर सरकारी संस्थाओं का सहयोग लेना व सहयोग देना।
12. जन प्रचार साधनों से एवं शैक्षणिक संस्थाओं के सहयोग से सामाजिक जागृति पैदा करना।
13. विधि साक्षरता शिविर आयोजित करना।

परिवार परामर्श केन्द्र जनता को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने का प्रयास करता है। विशेष रूप से महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने में इस केन्द्र के सलाहकारों की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। केन्द्र सुलहकर्ताओं को पारिवारिक न्यायालयों में भी विवादों के हल की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिये आमन्त्रित किया जाता है। कानूनी सहायता के लक्ष्य को प्राप्त करने में केन्द्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य परिवार का सामंजस्य बनाये रखना है। जिसके लिये परामर्श केन्द्र में आये आवेदन पर केन्द्र पर नियुक्त परामर्श दाता दोनों पक्षों के सम्बन्ध में आवश्यक तथ्यों की खोज कर वास्तविकता के आधार पर दोनों पक्षों को परामर्श देकर समस्या के समाधान में निःशुल्क सहायता प्रदान की जाती है।

परिवार परामर्श केन्द्र स्थापित करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को वित्तीय सहायता देने की योजना :

महिलाओं पर अत्याचार और उनके शोषण की दिनों दिन बढ़ती घटनायें हम सबके लिए गम्भीर चिन्ता का कारण है। अभी तक हमने जिन मामलों की जांच की है, उनमें हमने यह अनुभव किया है कि अत्याचार एवं शोषण की इन घटनाओं का मूल कारण परिवार में आपसी मतभेद और सामान्जस्य का अभाव है। परिवार परामर्श केन्द्रों के माध्यम से परिवारों को बिखरने से बचा कर तथा परिवार के सदस्यों के बीच मधुर संबंध स्थापित करके, सामाजिक संरचना को सशक्त बनाने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने एक योजना तैयार की है जो निम्नांकित है।

योजना का उद्देश्य :

अत्याचार की शिकार महिलाओं को निवारण से लेकर पुर्नवास तक की सेवायें प्रदान करने हेतु महिलाओं एवं बच्चों के कल्याण कार्यक्रमों अथवा अन्य कल्याण योजनाओं

को चला रहे स्वैच्छिक संगठनों को परिवार परामर्श केन्द्र चलाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना इस योजना का उद्देश्य है।

इस योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्ता पीड़ित महिलाओं को विभिन्न सेवायें प्रदान करते हैं, जैसेः– संकट के समय हस्तक्षेप, दहेज माँग व हत्या के मामलों की जांच पड़ताल, वैवाहिक/पारिवारिक मतभेद एवं अनबन के मामले में परामर्श, बिखरे दाम्पत्य जीवन को पुनः एकीकृत करने के प्रयास, वैवाहिक झगड़ों के मामलों में, न्यायालय के मामलों में न्यायालय के बाहर फैसला तथा अन्य संबंधित सेवाऐं जैसे– अल्पावास, निःशुल्क कानूनी सहायता, पुलिस सहायता आदि।

सहायता के लिए पात्रता की शर्ते :

इस योजना के अन्तर्गत वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए किसी भी संस्था/संगठन को निम्नलिखित शर्ते पूरी करनी चाहिएः–

1. वह किसी समुचित अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत हो अथवा वह किसी पंजीकृत संगठन की नियमित रूप से गठित शाखा हो) इस उद्देश्य के लिए किसी पंजीकृत निकाय के संबंद्ध होना अथवा केन्द्र/राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्रदत्त होना ही पर्याप्त नहीं होगा।
2. इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अनुदान के लिए आवेदन करने की तिथि से पूर्व संस्था को समाज कल्याण के क्षेत्र में कम से कम तीन वर्ष का अनुभव होना चाहिए। लेकिन, इस शर्त में उन संस्थाओं के मामलों में छूट का प्रावधान है जो (क) पर्वतीय, दूरदराज एवं सीमावर्ती, पिछड़े तथा आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत हो, (ख) उन क्षेत्रों में विशिष्ट सेवाएं मुहैया करती हो जहां ऐसी सेवायें उपलब्ध नहीं है और उन क्षेत्रों के मामले में जहां नई सेवायें प्रारम्भ करने की आवश्यकता है।

---

3. संस्था की एक विधिवत रूप से गठित प्रबन्ध समिति होने चाहिए और उसके लिखित संविधान के प्रबन्ध समिति के अधिकारों, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख होना चाहिए। प्रबन्ध समिति में महिला सदस्यों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए।

4. संस्था के पास योजना को प्रारम्भ करने के लिए पर्याप्त सुविधाएं, संसाधन कर्मचारी, प्रबन्ध कौशल तथा अनुभव होना चाहिए।

5. संस्था की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ होनी चाहिए। संस्था बोर्ड की सहायता से चलाए जा रहे कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त धनराशि जुटाने में समर्थ हानी चाहिए। इसके अतिरिक्त यह आवश्यकता पड़ने पर अपने संसाधनों द्वारा वर्तमान सेवाओं के स्तर को बनाए रखने में भी समर्थ होनी चाहिए।

6. संस्था की सेवायें, धर्म, जाति, वर्ग अथवा भाषा के भेदभाव के बिना भारत के सभी नागरिकों के लिए उपलब्ध होनी चाहिए।

सहायता का स्वरूप और अधिकतम सीमा :

परिवार परामर्श केन्द्रों की योजना के अन्तर्गत कोइ योजनाबद्ध बजट निर्धारित नहीं किया गया है, क्योंकि यह महसूस किया गया है कि इससे स्वैच्छिक संगठन स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कार्य नहीं कर सकेंगे। जो संस्थाऐं इस योजना के उद्देश्यों को पूरा करने में समर्थ हों, वे बजट सहित अपने प्रस्ताव राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड के माध्यम से इन कार्यालय को भेज सकती है। उनके प्रस्ताव पर गुण–दोष के आधार पर विचार किया जायेगा। इस कार्यक्रम को लगातार 3 वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने वाले परिवार परामर्श केन्द्रों को एक मोपेड मन्जूर की जा सकती है। परिवार परामर्श केन्द्र की प्रारम्भ में अनावर्ती मदों जैसेः– फर्नीचर, टाईपराईटर, अलमारी आदि खरीदने के लिए 15,000/– रूपये का अधिकतम अनुदान दिया जायेगा।

दो प्रशिक्षित परामर्शदाताओं के वेतन का भुगतान करने के लिए भी पूरा अनुदान दिया जायेगा। ये परामर्शदाता समाज कार्य/मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर होने चाहिए। लेकिन संस्था को भवन किराए, मानदेय लेखन–सामग्री प्रचार, रिपोर्ट टाइप करने, वाहन और आकस्मिकताओं सम्बन्धी खर्च के लिए मैचिंग अंशदान के रूप में 20 प्रतिशत व्यय वहन करना होगा। इस योजना के अन्तर्गत एक परिवार परामर्श केन्द्र के लिए प्रत्येक को अधिकतम एक लाख रूपये दिये जायेंगे। इसके अलावा परिवार परामर्श केन्द्र आरम्भ करने के समय अनावर्ती मदों के लिए भी अनुदान किया जायेगा।

अनुदान की मंजूरी के लिए शर्तें :

इस योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित शर्तों के अधीन दिया जाता हैः–

अनुदान :

1. परामर्शदाताओं के वेतन और परामर्श केन्द्र की परिसम्पत्तियों की खरीद के लिए पूरी राशि अनुदान के रूप में दी जाती है। अनुमोदित आवर्ती मदों पर व्यय के लिए 80 प्रतिशत अनुदान राशि दी जायेगी और बाकी 20 प्रतिशत व्यय संस्था अपने साधनों से वहन करेगी।
2. संस्था को इसी उद्‌देश्य के लिए किसी अन्य स्त्रोत से न तो अनुदान प्राप्त हुआ है और न ही उसे अनुदान प्राप्त होने की संभावना है और संस्था लाभान्वितों से कोई शुल्क नहीं लेगी।
3. अनुदान का उपयोग निर्धारित अवधि में उसी उद्‌देश्य के लिए किया जायेगा, जिसके लिए इसकी मंजूरी दी गई है।
4. संस्था की सेवाएं, धर्म, जाति और वर्ग के भेदभाव के बिना भारत के सभी नागरिकों के लिए उपलब्ध होगी।

लेखा :

5. संस्था के लेखा विवरण भारत के लेखा नियंत्रक और महालेखा परीक्षक अथवा उनके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य अधिकारी द्वारा जांच के लिए उपलब्ध रहेंगे।

6. इस अनुदान से सम्बन्धित लेखा अलग से रखे जाने चाहिए। इस अनुदान से सम्बन्धित लेखा परीक्षित लेखा विवरण प्राप्ति एवं भुगतान, आय एवं व्यय तथा तुलनपत्र के निर्धारित प्रोफार्मा में मूल रूप में वित्तीय वर्ष समाप्त होने के छः माह की अवधि में केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को भेजे जाने चाहिए।

परिसम्पत्तियाँ :

7. अनुदान प्राप्त संस्था को बोर्ड के अनुदान से पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से अर्जित सभी स्थायी अथवा अस्थायी परिसम्पत्तियों का एक रजिस्टर सामान्य वित्तीय नियम–19 में उल्लिखित प्रोफार्मा में रखना होगा और 1000/– रूपये अथवा उससे अधिक मूल्य की परिसम्मत्तियों को प्रत्येक मद के मामले में इसकी एक प्रतिलिपि वित्तीय वर्ष के समाप्त होने पर इस कार्यालय को भेजनी होगी। इसके अलावा 1000/– रूपये से कम मूल्य की परिसम्पत्तियों का विवरण भी निर्धारति फार्म में अलग से भेजना होगा।

8. बोर्ड के अनुदान से अर्जित और सृजित सभी चल और अचल परिसम्पत्तियो केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की पूर्व अनुमति के बिना बेची नहीं जाएगी, ऋणग्रस्त नहीं की जायेगी अथवा उन उद्देश्यों के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग में नही लाई जायेगी, जिनके लिए अनुदान की मंजूरी दी गई हो। यदि संस्था/परिवार परामर्श केन्द्र किसी समय कार्य करना बन्द कर देता है तो ऐसी सभी परिसम्पत्तियां केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को वापिस

लौटाई जायेगी अथवा बोर्ड द्वारा दिये गये आदेशों के अनुसार उनका निपटान किया जायेगा।

कर्मचारी :

9. परिवार परामर्श केन्द्र में समाज कार्य अथवा मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर तथा दो वर्ष का अनुभव रखने वाले दो दो प्रशिक्षित परामर्शदाता नियुक्त किये जायेंगे। इन परामर्शदाताओं की नियुक्ति एक चयन समिति द्वारा की जायेगी तथा किसी नजदीकी समाजकार्य विद्यालय अथवा मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष, राज्य बोर्ड का एक प्रतिनिधि तथा संस्था का एक अथवा अधिक सदस्य इन समिति के सदस्य होंगे। परामर्शदाताओं को नियुक्ति के पश्चात केन्द्र से कार्य आरम्भ करने के छः महीने के अन्दर ही एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत ही एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण लेना होगा।

10. परामर्शदाता में अत्याचार और शोषण के मामलों की जांच करने के प्रति अभिरूचि होना चाहिए तथा वह ऐसे मामलों की जांच करने में पूर्ण सक्षम होना चाहिए।

11. प्रत्येक प्रशिक्षित परामर्शदाता को प्रतिमाह 2500/- रूपये का वेंतन दिया जायेगा।

12. परामर्शदाताओं की नियुक्ति निर्धारित प्रक्रिया के आधार पर चयन समिति द्वारा की जावेगी। जिसकी अनुपालना न होने की स्थिति में उनक नियुक्ति/वेतन मान्य नहीं किया जायेगा। पहाड़ी/आदिवासीय/व दूरदराज के क्षेत्रों में शैक्षिक योग्यता में छूट के लिये चयन समिति एवं राज्य बोर्ड द्वारा संस्तुति मान्य होनी चाहिये। क्षेत्रीय रोजगार कार्यालय से उम्मीद बार उपलब्ध न होने का प्रमाण पत्र भी शैक्षिक योग्यता में छूट दिये जाने हेतु केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को प्रेषित किया जाना आवश्यक है।

संगठनात्मक ढांचा :

13. परिवार परामर्श केन्द्र एक उपसमिति गठित करेगा जिसमें सामाजिक कार्यकर्ता, स्थानीय प्रशासन, पुलिस, निःशुल्क कानून सहायता देने वाली, महिलाओं के लिए अल्पावास सुविधा उपलब्ध कराने वाली, सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम चलाने वाली तथा पीड़ित महिलाओं के पुनर्वास के लिए इसी प्रकार की अन्य कल्याण गतिविधियां चलाने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रतिनिधि शामिल किए जाने चाहिए। उपसमिति योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने, केन्द्र को प्राप्त करने, केन्द्र को मार्गदर्शन देने तथा कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने के लिए एक कार्य योजना तैयार करेगी।

14. समिति केन्द्र की उपलब्धियों और उसके कामकाज का मूल्यांकन करने तथा केन्द्र को आगे मार्गदर्शन देने के लिए कम से कम 3 माह में एक बार बैठक आयोजित करेगी। समिति के सदस्यों को अत्याचार के मामलों में परामर्श, गृह दोरी अथवा पीड़ित महिलाओं को आवश्यक सहायता प्रदान करने के कार्य से उनके मूल संगठन की मार्फत सहयोजिता करना चाहिए।

केन्द्र :

15. सामान्यतः परिवार परामर्श केन्द्र किसी कस्बे अथवा शहर में खोला जाना चाहिए जहां अन्य सम्बन्धित सेवाएं, जैसे–पुलिस सहायता, निःशुल्क कानूनी सहायता, अल्पावास सुविधा आदि आसानी से उपलब्ध होती है।

16. केन्द्र का स्थान केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड के पूर्व अनुमोदन के बिना बदला नहीं जाना चाहिए।

17. केन्द्र पूरे दिन कार्य करेगा जो कि हफ्ते में कम से कम 40 घंटे संचालित किया जाना चाहिये।

18. संस्था निम्नलिखित रिकार्ड रखेगी और ये रिकार्ड हमेशा अद्यतन रहने चाहिए:—

1. नियुक्ति पत्र, अवकाश एवं उपस्थिति संबंधी विवरण सहित कर्मचारियों की वैयक्तिक फाइलें।
2. सामान्य वित्तीय नियम— 19 क फार्म में स्टाक रजिस्टर।
3. उपसमिति की बैठकों का कार्यवृत, जो कि प्रत्येक तिमाही में एक बार होनी चाहिए।
4. रोकड़, वही, बाउचर आदि सहित लेखा—पुस्तकें।
5. प्रत्येक मामले की एक अलग फाइल जिसमें आवेदक का आवेदन पत्र आवेदक अथवा उसके रिस्तेदारों के साथ हुई बैठकों के सभी रिकार्ड और गृह दोरी के विवरण आदि होने चाहिए।

19. जब कभी केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड द्वारा नामित व्यक्ति केन्द्र का दौरा करें, उसे उल्लिखित सभी रिकार्ड जांच के लिए उपलब्धि कराए जाने चाहिए। निरीक्षक द्वारा निरीक्षण के समय दिये गये मार्ग निवेश/सुझावों को संस्था ध्यान में रखेगी और निरीक्षण के एक महीने के अन्दर ही अनुपालन रिपोर्ट राज्य बोर्ड और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को भेजेगी। निरीक्षक के सुझावों का अमल न करने पर केन्द्र को अनुदान देना बन्द किया जा सकता है।

20. संस्था परिवार परामर्श केन्द्र के कामकाज की प्रगति के सम्बन्ध में नियमित रूप से निर्धारित प्रारूप पर अप्रैल से सितम्बर और अक्टूबर से मार्च तक की अवधि की अर्द्धवार्षिक प्रगति रिपोर्ट अवधि समाप्त होने के एक महीने के अन्दर नियमित रूप से भेजेगी।

अनुदान बन्द करना :

21. यदि किसी समय यह पता चल जाए कि किसी शर्त का पालन नहीं किया जा रहा है अथवा जिन उद्देश्यों के लिए अनुदान मंजूर किया गया है, उन सभी उद्देश्यों अथवा उनमें से किसी एक उद्देश्य के लिए संस्था अनुदान का उपयोग करने में असमर्थ है तो यह अनुदान रद्द कर दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में संस्था को अनुदान में प्राप्त सम्पूर्ण राशि ब्याज समेत केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को लौटानी होगी। यह ब्याज समय–समय पर लागू बैंक ब्याज दर अथवा भारत सरकार द्वारा समय–समय पर निर्धारित ब्याज दर के हिसाब से अनुदान राशि वण्टित करने की तारीख से लगाया जाएगा।

22. नये परिवार परामर्श केन्द्र के मामले में वांछित सूचनाएं। जो कि क्रम 23 के 1 से 4 में दी गयी है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को स्वीकृति पत्र की प्राप्ति से 3 माह के अन्दर प्रेषित कर देना चाहिये। ऐसा न हो पाने पर यह समझा जायेगा कि केन्द्र आरम्भ करने में संस्था रूचि नहीं रखती, इसलिये स्वीकृत अनुदान निरस्त किया जायेगा और संस्था कार्यक्रम के तहत निसृत की गयी पूर्ण धनराशि लौटाने के लिये उत्तरदायी होगी।

अनुदान का बंटन :

23. स्वीकृति पत्र के जारी होने के पश्चात शीघ्र ही प्रथम किस्त निसृत की जाती है बची हुयी धनराशि निम्न सूचनायें प्राप्त होने पर निसृत कर दी जायेगी।

1. परिवार परामर्श केन्द्र आरम्भ करने की तारीख।
2. केन्द्र का पूरा पता, स्थान एवं कार्य–समय।
3. नियुक्ति कर्मचारियों के (परामर्शदाता, टाइपिस्ट, चपरासी आदि) पूर्ण विवरण

निर्धारित प्रारूप पर स्नातकोत्तर व अन्य शैक्षिक योग्यताओं के प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपियों सहित उनका ब्योरा तथा चयन समिति की बैठक का कार्यवृत।

4. परिवार परामर्श केन्द्र के अनावर्ती मदो से संबंध व्यय विवरण।

24. जारी परिवार परामर्श केन्द्रों के मामले में केन्द्रों को गत वर्षो के दौरान मंजूर की गई अनुदान राशि का 50 प्रतिशत भाग अगले वर्ष अनुदान मंजूर करते समय बंटित कर दिया जायेगा। बजट में किसी प्रकार का संशोधन राज्य बोर्ड द्वारा अनुशंसित होना चाहिए। अनुदान की दूसरी किस्त का बंटन निम्नलिखित विवरण प्राप्त होने के पश्चात किया जाएगाः–

1. लेखा का लेखा परीक्षित विवरण (मूल प्रति)
2. चार्टेड एकाउंटेन्ट द्वारा प्रमाणित उपयोगिता प्रमाण पत्र (मूल प्रति)
3. मंजूर अवधि के लिए कर्मचारियों का विवरण (निर्धारित प्रपत्र में)
4. मंजूर अवधि के लिए मामलों के सार के साथ प्रगति रिपोर्ट (निर्धारित प्रपत्र में) यह सूचना/विवरण मंजूर अवधि समाप्त होने के 6 महीने के अन्दर ही केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को भेजी जानी चाहिए।

<u>कार्य एवं कार्य प्रणाली</u> :

अ. संकट कालीन मामलों में पीड़ित महिलाओं को सहायता प्रदान करने के लिए परिवार परामर्श केन्द्र को तत्काल हस्तक्षेप करना चाहिए। केन्द्र इस कार्य में उपसमिति के सदस्यों की सहायता ले सकता है।

ब. परिवार परामर्श केन्द्र अपने यहां पंजीकृत दहेज मौतो से सम्बद्ध मामलों को पुलिस में भेजने के साथ–साथ सामाजिक कार्यकर्ताओं अथवा उपसमिति के सदस्यों के माध्यम से उनकी स्वतन्त्र जांच भी करवानी चाहिए। यदि ऐसे किसी मामले में

केन्द्र की जांच के परिणाम पुलिस रिपोर्ट के निष्कर्षो से भिन्न पाए जाएं तो वह ऐसे मामलों को उच्चाधिकारियों के सामने उठाएं।

स. अत्याचार सम्बन्धी सभी मामले केन्द्र में आवेदन पत्र के जरिये पंजीकृत कराये जाने चाहिए। मामलों की प्रारम्भिक जांच पड़ताल के पश्चात् ही आवेदन कर्ता को आवश्यक मार्गदर्शन/परामर्श दिया जाए तथा दी गई सहायता की मामले की फाइल में दर्ज किया जाए। मामलों के सम्बन्ध में फाइले अद्यतन होनी चाहिए और इन्हें महत्वपूर्ण दस्तावेज की तरह रखा जाए, क्योंकि इन्हें साक्ष्य के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत करना पड़ सकता है। मेल–मिलाप के सभी मामलों पर तब तक निगरानी रखी जाए जब तक कि आवेदक सामान्य रूप से जीवनयापन प्रारम्भ न कर दे और सम्बन्ध मामले को बन्द करने की इच्छा जाहिर न कर दे। दूसरी एजेन्सियों को भेजे गये मामलों पर भी लगातार नजर रखी जानी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि आवेदक को सही अर्थो में सहायता दी जा रही है।

द. वैवाहिक झगड़ों के मामलों में सर्वप्रथम मेल–मिलाप के प्रयास किए जाने चाहिए। लेकिन ऐसे मामलों से संबंध पक्ष यदि किसी अन्य उपायों की इच्छा व्यक्त करें तो उसका ध्यान रखा जाना चाहिए और तदनुसार कदम उठाए जाने चाहिए।

य. जिस जिले में कोई परिवार परामर्श केन्द्र नहीं हो, ऐसे जिले से प्राप्त मामले को नजदीक के परिवार परामर्श केन्द्र अथवा मामले की जांच करने के सक्षम उस क्षेत्र के किसी अच्छे स्वैच्छिक संगठन, अथवा राज्य के ऐच्छिक कार्यवाही ब्यूरो को आवश्यक कार्यवाई के लिए भेजा जाए।

अनुदान अविध :

इस योजना के अन्तर्गत एक वर्ष के लिए अनुदान दिया जाएगा। यदि परामर्श केन्द्र का कार्य संतोषजनक पाया जाता है तो यह अनुदान वार्षिक आधार पर जारी रहेगा।

आवेदन कैसे करें :

संस्थाएं निर्धारित आवेदन पत्र की दो प्रतियां भरकर, बजट अनुमान सहित संबंधित राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्डो को भेजे जो इन आवेदन पत्रों को अपनी सिफारिश के साथ केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड को भेजेंगे। आवेदन पत्र के फार्म राज्य समाज कल्याण सलाहकार बोर्ड के पास उपलब्ध है।

(द) विधिक साक्षरता शिविर :

किसी भी राष्ट्र के लिये लोकतंत्र पर आधारित संविधान का अनुपालन करना और उसके अनुशासन को निभाना केवल गौरव की ही बात नहीं है बल्कि यह उसके सांस्कृतिक विकास का और उसके लोक चरित्र की उच्चता का सच्चा प्रतिबिम्ब है। लोकतांत्रिक संविधान जनता की सम्पत्ति होता है और केवल जनता ही उसका संरक्षण कर सकती है। हमारा संविधान हमारे देश की संस्कृति और उसकी जनता की आकांक्षाओं का दर्पण है। हम लोकतंत्र और नागरिक स्वाधीनता में विश्वास रखते हैं, वर्गहीन समाज और समानता के सिद्धांत को अपने राष्ट्र जीवन का अंग मानते हैं और यह भी मानते हैं कि आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में पिछड़े हुए वर्गो को विशेष सहायता देकर उन्हें सबके बराबर आने की क्षमता प्रदान कराना राज्य का विशेष दायित्व है।

भारत के संविधान के उद्देशिका में ही भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की स्वतंत्रता और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिये

संकल्प किया गया है। इसी उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 38 में पुनः इस बात का उल्लेख है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करें, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा। इस बात का भी उल्लेख है कि राज्य विशिष्ट तथा आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसाओं में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा। पुनः अनुच्छेद 39 में विशेष रूप से बालकों के स्वस्थ विकास के अवसर की सुविधायें देने के साथ–साथ बालकों और अल्प व्यय व्यक्तियों के शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा करने का प्राविधान किया गया है, किन्तु यह देखा गया है कि संविधान का उक्त संकल्प प्रभावशाली सिद्ध न हो सका और उससे अल्प व्यय व निर्बल व्यक्तियों को वांछित लाभ प्रदान नहीं किया जा सका।

संविधान के संकल्प को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने के लिये वर्ष 1976 में संविधान के 42 वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 39 क बढ़ाया गया जिससे कि समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान की जा सके।

सरकार का यह कर्तव्य है कि वह राज्य में समाज के निर्बल वर्गो को निःशुल्क कानूनी सेवा की व्यवस्था करने के लिये राज्य में कानूनी सहायता कार्यक्रम स्थापित करने के लिये कार्यवाही करें। प्रदेश के विभिन्न जिलों में नियुक्त कानूनी सहायता एवं परामर्श समिति एवं प्राधिकरण के माध्यम से कानूनी कार्यवाही में सुलह और समझौते को प्रोत्साहित और संप्रवर्तित करना राज्य का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसी के साथ समाज के निर्बल वर्ग में कानूनी ज्ञान का संप्रवर्तन करना और उनको समाज कल्याण से सम्बन्धित और अन्य अधिनियमितियों

द्वारा प्रदत्त अधिकार, लाभ और विशेषाधिकार के सम्बन्ध में जानकारी कराना भी आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को समय समय पर केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा किये गये भूमि सम्बन्धी सुधारों और सुविधाओं से अवगत कराना और जहां आवश्यक हो कानूनी सेवा प्रदान कराना भी राज्य का दायित्व है। जिला प्राधिकरणों के माध्यम से ही महिलाओं, बन्धित श्रमिकों, औद्योगिक कर्मकारों व कृषि श्रमिकों, किरायेदारों, कृषकों, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य निर्बल वर्गो से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विधायनों और सामाजिक तथा आर्थिक सुधारों से सम्बन्धित विधायनों के प्रचार का भी प्रबंध कराना भी राज्य का दायित्व है।

विधिक साक्षरता शिविरों में कानूनी सेवा कार्यक्रम के सभी पहलुओं में संबर्द्धन करने के लिये समस्त कार्यकलापों के संबंध में राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में समाज के निर्बल वर्गो को उनके मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित विधि का ज्ञान कराने के उद्देश्य से मुद्रित ज्ञानमाला पुस्तिकाओं का वितरण कराया है। समाज के निर्बल वर्गो की समस्याओं और कठिनाइयों को दृष्टि में रखते हुये उनके दैनिक जीवन से सम्बन्धित विषयों जैसे साहूकारी व्यवसाय, बंधुआ मजदूरी, ऋण ग्रस्तता, छुआछूत निवारण, संरक्षता विधि, मोटर दुर्घटनाओं के प्रतिकर से सम्बन्धित वाद, दहेज निषेध आदि विषयों पर सरल हिन्दी भाषा में कानूनी ज्ञानमाला की की मुद्रित पुस्किायें वितरित कराई जाती है जिससे कि सुदूर क्षेत्रों के रहने वाले ग्रामवासियों को भी विधि का ज्ञान प्राप्त हो सके और वे अपने अधिकारों को जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श प्राधिकरण के माध्यम से प्राप्त करने के लिये आगे आ सकें। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर तहसील स्तर पर कानूनी सहायता एवं परामर्श शिविरों का आयोजन किया जाता है जिससे कि ग्रामवासी अपने विवादों को सुलह और समझौते के द्वारा निर्णित करा दिया जाये जिससे कि दोनों पक्षों के मध्य कटुता की भावना व्याप्त न हो। विधिक सहायता शिविर कानूनी साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने में एक प्रभावी साधन है।

न्याय पंचायत :

भारतीय संस्कृति की परम्परा ''पंच परमेश्वर'' दर्शन पर सृजित ग्रामीण पंचायतें शासन शक्ति से मुक्त, सारभूत सामाजिक प्रभाव एवं मान्यताओं से युक्त, एक स्वयात्तशासी संस्था के रूप में प्राचीनतम काल से चली आ रही है। ग्रामीण पंचायत, परम्परागत गांवों की स्वतः अन्तर्विष्ट एवं स्वतः पूर्ण समुदाय की अवधारणा का ही व्यवहारिक स्वरूप है।

प्राचीन भारतीय समाज में आपसी विवाद एवं व्यवहारिक अधिकारों की विभिन्नताओं को स्थानीय व्यक्तियों के अन्तर्विलयन से समाप्त करने एवं न्याय प्राप्ति का दृष्टिकोण था और इसी दृष्टिकोण एवं सिद्धान्त पर ग्रामीण पंचायतों में न्यायिक संस्था के रूप में ''पंच परमेश्वर'' में विश्वसनीयता न्यस्त करते हुये भारतीय परम्पराओं के अनुरूप न्याय पंचायतों का उद्भव हुआ।

न्याय पंचायतें परम्परागत ढंग से आपसी छोटे विवादों को निस्तारित करने के उद्देश्य से ग्रामीण वृद्धों की एक परिवाद थी। वृद्ध नागरिक, समाज द्वारा उचित एवं पक्षपात रहित रूप में मान्य थे तथा इनका निर्णय पूरे समुदाय एवं संबंधित पक्षों को मान्य एवं आत्मस्वीकार्य था। न्याय पंचायतें, ग्रामीण एवं स्थानीय न्यायिक प्रशासन, व्यवस्था एवं पक्षों के आपसी विवाद को निर्णीत करने वाली संस्था के रूप में, सार्वभौमिक मान्यतायुक्त थीं। प्राचीन परम्परागत न्याय पंचायतें चुने हुए पंचों के स्थान पर स्थानीय रीति, प्रक्रिया एवं सामाजिक मान्यताओं से पूर्ण भिज्ञ तथा निष्पक्ष एवं राजनीतिक समूह से ऊपर उठकर, ग्रामीण वृद्धों से युक्त थी। पंचों की अधिकारिता एवं निर्णय पक्षों द्वारा संपूर्ण समुदाय को सवेच्छया मान्य था। ग्रामीणों की खुली सभा में स्थानीय स्तर पर सुनवाई होती थी जिससे तथ्यों एवं लक्ष्यों में कूट रचना की संभावनायें नहीं थी। यह न्याय पंचायतें ब्रिटिश राज्यकाल तक संतोषजनक स्तर तक कार्य करती रहीं, किन्तु ब्रिटिश शासन द्वारा प्रदत्त न्यायिक प्रक्रिया, जो वर्तमान में

प्रचलित है, में जनता की कोई भागीदारी एवं अन्तर्विलयन न होने से न्याय पंचायत धीरे–धीरे अपना अधिकार एवं प्रभाव खोती गयी एवं वर्तमान में समाप्त प्राय सी हो गयी है।

ब्रिटिश न्याय तंत्र के अनुरूप, जटिल प्रक्रियात्मक एवं यांत्रिक न्याय के प्रभाव से बढ़ती समस्या एवं इस न्यायिक प्रक्रिया के विरूद्ध अविश्वास पर बढ़ते जनाक्रोश को नियंत्रित करने के उद्देश्य से परम्परागत आस्थाओं को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता जानकर न्यायिक प्रक्रिया में जनता की, भागीदारी एवं अन्तर्विलयन को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। इस आदर्श वस्तु स्थिति को हम पाने में सफल हो गये होते, यदि जातिगत, राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता एवं अन्यथा आपसी राग–द्वेष के बादल बाधक न होते।

मान्य रूप से न्याय पंचायतें निर्धनों को न्याय प्राप्त करने में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकती है। न्याय पंचायत से धन एवं समय दोनो की मितव्ययिता होती है। यांत्रिक प्रक्रियाओं से अलग होने के कारण इस व्यवस्था में उभय पक्षों को समान अवसर उपलब्ध रहता है। न्याय पंचायती व्यवस्था में यांत्रिक न्याय के स्थान पर प्रभावी एवं प्रक्रियात्मक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से उपयोगी न्याय उपलब्ध होता है। "वर्तमान भारत में न्याय पंचायत जनतांत्रिक आधारों पर चुने गये व्यक्तियों की एक संस्था है।

विभिन्न प्रान्तों की पंचायती न्यायिक व्यवस्था एवं उनके कार्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वर्तमान में न्याय पंचायत असफल है और इसके साथ सम्बद्ध उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सका है। वर्तमान में न्याय पंचायत व्यवस्था असफल होने की परिस्थितियों को निम्न प्रकार श्रेणीबद्ध किया जा सकता है–

1. न्याय पंचायत की कार्य प्रणाली में जन सहयोग का अभाव।
2. मात्र कम मूल्यांकन की अधिकारिता के कारण व्यवहारिक वादों का न्याय पंचायत से समाप्त।

3. न्याय पंचायत के अधिकारिता के भी वादों को न्यायालय द्वारा संधार्य एवं अंगीकृत किया जाना।

4. न्याय पंचायत की निष्पक्षता के प्रति दलगत एवं जातिगत राजनीति तथा अन्य पूर्वाग्रह सम्बन्धी अविश्वास।

वर्तमान भारतीय परिवेश की विभिन्न परिस्थितियों एवं उदाहरणों के आधार पर यह तथ्य प्रकाश में आता है कि चुने गये पंचों की न्याय पंचायत को अमीर एवं सम्पन्न वर्ग मानने तथा स्वीकार करने को तैयार नहीं है। दूसरी तरफ सामान्य न्यायालय इसका कोई त्वरित विकल्प प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो पा रहा है। वर्तमान भारतीय न्यायिक प्रक्रिया उन व्यक्तियों के उद्देश्यों एवं आवश्यकता को पूरी करने में असफल हो गयी है, जिनके लिए यह बनायी गयी है। वर्तमान न्यायिक प्रणाली यांत्रिक प्रक्रिया से युक्त होने के कारण सार्वभौमिक दृष्टिकोण से प्रचलित एवं उपयोगी नहीं हो पा रही है। त्वरित एवं सस्ता न्याय उपलब्ध नहीं है। बहुत ही सूक्ष्म–फल के प्राप्ति के लिए बहुत ही मानव शक्ति एवं धन का व्यय होता है। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान न्यायिक व्यवस्था भविष्य की परिकल्पना, समान स्तरीय समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप संवेदनशील एवं उत्तरदायी नहीं रह गयी है। स्थानीय व्यक्तियों के भागीदारी एवं अन्तर्विलयन से न्याय प्राप्त करने के सिद्धान्त के आधार पर त्वरित एवं सस्ता न्याय प्राप्त करने की स्थिति को पुनः स्थापित करने के दृष्टिकोण से उपरोक्त समस्याओं के विकल्प के रूप में लोक अदालत एवं विधिक सहायता कार्यक्रम को एक अभियान के रूप में प्रकाश में लाकर प्रभावी करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

न्याय पंचायत में स्थानीय व्यक्तियों को अन्तीर्वलित करके उनके भागीदारी से न्याय प्राप्त करने की भी प्रक्रिया की व्यवस्था है। न्याय पंचायत का उद्देश्य एवं मान्यता यह

है कि छोटे–छोटे विवाद स्थानीय भिज्ञ एवं प्रभावी व्यक्तियों के माध्यम से तय किये जायें और न्याय प्रक्रिया में जनता को समावेशित करके उनकी सहायता ली जाये। न्याय पंचायत की पुरानी मान्यता को वर्तमान में विधिक सहायता कार्यक्रम एवं लोक अदालत के रूप में परिवर्तित स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान लोक अदालत पुरानी न्याय पंचायत प्रक्रिया का ही नवीनीकरण है।

न्याय पंचायत के परम्परागत सिद्धान्त को ही आधार मानते हुए गुजरात के तत्कालीन माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री पी0 एन0 भगवती ने विधिक सहायता कार्यक्रम के संदर्भ में न्याय पंचायतों हेतु निम्न संस्तुतियाँ की–

1. न्यायिक प्रशासन एवं व्यवस्था हेतु न्याय पंचायत की आधारभूत आवश्यकता एवं उसका पुनरूज्जीवन।
2. न्याय पंचायत में एक विधि भिज्ञ व्यक्ति से युक्त तीन सदस्यों की आवश्यकता, विधि–भिज्ञ व्यक्ति को पंचायत न्यायाधीश के रूप में नामित किया जाना।
3. प्रान्तीय शासन द्वारा पंचायत न्यायाधीशों का एक अलग सम्वर्ग का सृजन।
4. न्याय पंचायत कम से कम 5 सदस्यों के परिवाद रूप में (गांव पंचायत के चुने सदस्यों में से जिलाधिकारी द्वारा एक नामित सदस्य, स्थानीय संभ्रान्त व्यक्ति में से जिलाधिकारी द्वारा चुने गये 3 सदस्य तथा एक अनुसूचित जनजाति का सदस्य)
5. न्याय पंचायत के सदस्यों की निष्पक्षता उद्देश्य हेतु शिक्षा, स्थानीय सम्मान आदि का मापदण्ड।

वर्तमान में न्याय पंचायत की विफलता को देखते हुए न्याय पंचायतों की गरिमा एवं अधिकारिता को पुनः स्थापित करने के दृष्टिकोण से भारत के माननीय पूर्व मुख्य

न्यायाधीश श्री पी० एन० भगवती ने न्याय पंचायत को प्रत्येक प्रान्त में प्रभावी ढंग से कार्यान्वित कराये जाने पर बल दिया किन्तु माननीय मुख्य न्यायाधीश ने यह भी संस्तुति की है कि न्याय पंचायतों के पंच चुनाव के आधार पर चुने हुए व्यक्ति न हों, वल्कि न्याय पंचायत विधिभिज्ञ एवं योग्य न्यायाधीशों से युक्त हों। इसी परिस्थिति में न्याय पंचायत से उठता हुआ विश्वास पुनः स्थापित किया जा सकता है। निर्धन तथा पिछड़े वर्ग को सस्ता एवं त्वरित न्याय, न्याय पंचायतों के माध्यम से ही प्रभावी एवं व्यवहारिक रूप में दिया जा सकता है। वर्तमान भारतीय परिवेश में न्याय पंचायतों तथा उसके पुनः गठित स्वरूप लोक अदालत को राजनीति, जातिगत दुराव एवं अन्य वैमनस्य परिस्थितियों से अलग एवं अप्रभावित रखने की आवश्यकता है। इसी दृष्टिकोण से वर्तमान में न्याय पंचायत के पुनर्गठित स्वरूप लोक अदालत में सुलहकर्ता दल में (पंच के रूप में) स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों, शिक्षा वृद्धि एवं विधि–भिज्ञ व्यक्तियों का ही समावेश किया गया है तथा चुनाव, दलगत तथा स्थानीय राजनीति प्रतिद्वन्द्विता लोक अदालत को अप्रभावित रखने का प्रयास किया गया है। निर्धन को न्याय प्राप्त करने के लिए एक उपयोगी एवं सुगम साधन है। यह छोटे–छोटे वादों के निस्तारण हेतु प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध है। न्याय पंचायत व्यवस्था यांत्रिक न्याय एवं जटिल प्रक्रिया के विरूद्ध प्रक्रियात्मक एवं व्यवहारिक न्याय करने का सार्वभौमिक व्यापक कार्यक्रम है। इसकी उपयोगिता से ही वर्तमान न्यायिक प्रक्रिया के विरूद्ध व्याप्त असंतोष को समाप्त किया जा सकता है। यदि त्वरित एवं सस्ता न्याय प्रभावी ढंग से प्राप्त करना है, तो न्याय पंचायत की स्थापना को निर्बोध रूप से स्वीकार करना होगा।

अध्याय– 5

हमीरपुर जनपद का परिचयात्मक विवरण

(अ) भौगोलिक स्थिति

(ब) ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत

(स) सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश

उत्तर प्रदेश राज्य के दक्षिण में मध्य प्रदेश की सीमा निर्धारित करता हुआ हमीरपुर जनपद है। इस जनपद को बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वारा कहा जाता है। हमीरपुर जनपद की भूमि वीर प्रसविनी, आध्यात्मिक, उत्कर्ष, सांस्कृतिक वैभव, शालीनता, विद्वता तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन के अमर शहीदों की वीर गाथाओं के स्वर्णिम संस्मरणिक की पवित्र धरोहर है। बुन्देलखण्ड वीर भूमि चित्रकूट धाम मण्डल का यह जनपद एक भाग है। हमीरपुर नगर बेतवा एवं यमुना नदी के मध्य 1 कि0मी0 चौड़ी पट्टी में बसा है, जिसका मात्र एक विकास खण्ड कुरारा जनपद जालौन की कृत्रिम सीमा बनाता है। जनपद का शेष भाग दक्षिण में बसा हुआ है। जिसकी सीमायें, वेतवा, धसान एवं केन नदियों द्वारा निर्धारित है।

जनपद के कुल तीन तहसील क्रमशः हमीरपुर, मौदहा, एवं राठ है। इन तहसीलों में कुल 7 विकासखण्ड है। उत्तर प्रदेश के समस्त जनपदों को 5 आर्थिक क्षेत्रों क्रमशः पर्वतीय, पश्चिमी, केन्द्रीय, पूर्वी तथा बुन्देलखण्ड में बांटा गया है। बुन्देलखण्ड में कुल सात जनपद है। झाँसी, बाँदा, जालौन, महोबा, साहू जी महाराज नगर, ललितपुर और हमीरपुर है। हमीरपुर प्रदेश के पिछड़े जनपदों की श्रेणी में आता है।

भारत के मध्य में बुन्देलखण्ड उसके हृदय रूप में शोभायमान है। और बेतवा, यमुना, चम्बल, धसान, पर्यास्वनी, टोंस, केन, नर्मदा, जामिनी जैसी विशाल नदियों के कारण यह क्षेत्र प्राचीन काल में नदियों वाले प्रदेश दर्शाणि नाम से जाना जाता था उसके बाद चन्देल कालमें जैजाक भुक्ति वेदि प्रदेश नाम से भी विख्यात रहा है। यहाँ लोग अपनी वृहद सीमाओं तथा विन्ध्याचल पर्वत की नैसर्गिक पर्वतीय शोभा के कारण विशिष्ट स्थान रखे हुये है। 641 से 642 ई0 में चीनी यात्री ह्वेंगसांग ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र को ''चिन्ह–ची–तो'' नाम दिया था।

आल्हा ऊदल की इस वीर स्थली हमीरपुर जनपद की अपनी अलग भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टता है। यद्यपि यह जनपद आर्थिक एवं औद्योगिक दृष्टि से काफी पिछड़ा है परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् यहां अनेक विकास कार्यक्रम चलाये गये जिससे यहां के जनवासियों में एक नया उत्साह एवं नवचेतना का जागरण हुआ और आल्हा ऊदल के इतिहास को अपने ह्रदय में संजोये हुये विकास की दिशा में अग्रसर है।

हमीरपुर, जनपद का मुख्यालय एवं बुन्देलखण्ड का प्रवेशद्वार है। बुन्देलखण्ड के इतिहास की आत्मा हमीरपुर, महोबा से जुड़ी है। 1994 में महोबा को जनपद बना दिया गया है।

भौगोलिक स्थिति :

जनपद हमीरपुर प्रदेश के दक्षिणी अंचल में स्थित चित्रकूट धाम मंडल के 4 जनपदों में मध्य में यह 25 अंश उत्तरी अंक्षास और 79.5 से 89, 5 अंश दक्षिणी देशान्तर के मध्य स्थित है। जनपद का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4094 वर्ग कि0मी0 है।

जनपद की जलवायु मुख्य रूप से शुष्क है। गर्मियों में अत्यधिक गर्मी पड़ती है। तथा जाड़ों में अत्यधिक जाड़ा पड़ता है। गर्मियों में जनपद का उच्च तापमान वर्ष 1993–94 के अनुसार 45.2^0 तथा न्यूनतम 4.2^0 सेन्टीग्रेड रहा। कभी–कभी 48 डिग्री उच्चतम तथा 3 डिग्री न्यूनतम हो जाता है। गर्मियों में मुख्य रूप से जून से सितम्बर तक बंगाल की खाड़ी से मानसूनी वर्षा होती है तथा जाड़ों में पश्चिमी घाट से मानसून द्वारा वर्षा होती है। वर्षा सामान्य 1999 के अनुसार 864 मिमी तथा वास्तविक 937 मिमी है।

जनपद में बुन्देलखण्ड में पाई जाने वाली चार प्रकार की मिट्टी है, जिसमें मुख्य रूप से मार, काबर, पड़वा एवं रॉकड़ है।

जनपद की कुल जनसंख्या 1991 के अनुसार 911512 है, जिसमें पुरूष 481001 तथा स्त्रियाँ 403511 है। जनपद में जनसंख्या का घनत्व 216 प्रति वर्ग कि0 मी0 है। जनपद में कुल पुरूषों का अनुपात 839 अर्थात् 1000 पुरूषों पर 839 स्त्रियां है, जनपद में तीन तहसील राठ, हमीरपुर तथा मौदहा है। जनपद में कुल विकासखण्डों की संख्या सात है, जो निम्न लिखित है– कुरारा, सुमेरपुर, राठ, गोहाण्ड, सरीला, मौदहा तथा मुस्करा है। जनपद में कुल सात नगर क्षेत्र है। जिसमें तीन नगरपालिकायें तथा चार नगर पंचायतें है। जनपद में कुल न्याय पंचायतों की संख्या 59 तथा ग्राम पंचायतों की संख्या 314 है। तथा ग्राम पंचायत सदस्यों की संख्या 4042 तथा क्षेत्र पंचायत सदस्यों की संख्या 372 है एवं जिला पंचायत सदस्यों की संख्या 15 है।

इस जिले को दो भांगों में बांटा जा सकता है। प्रथम उपसंभाग में विकास खण्ड कुरारा, राठ, गोहाण्ड एवं सरीला है तथा द्वितीय उपसंभाग में विकास खण्ड मौदहा एवं सुमेरपुर आते हैं। जनपद में कोई महत्वपूर्ण भू–गर्भीय पदार्थ नहीं पाया जाता है। बेतवा नदी में मोरंग का प्रचुर भण्डार है। जिसका प्रयोग भवन निर्माण के कार्यो में किया जाता है। मोरंग की आपूर्ति प्रदेश के सुदूर अंचलों तक की जाती है, जिससे जनपद की पर्याप्त आय होती है। जनपद के विकास खण्ड राठ और मुस्करा में कुछ मात्रा में पहाड़ पाये जाते हैं। जिनसे भवन निर्माण एवं सड़कों के निर्माण हेतु पर्याप्त मात्रा में गिट्टी उपलब्ध होती है तथा उसके आस पास गांवों में चिरवा एवं टूका तथा गिट्टी तोड़ने वाले कारखाने कार्यरत है।

जनपद में भू–गर्भीय जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, जिससे निजी एवं राजकीय नलकूपों की स्थापना कर सिंचाई कार्य किया जाता है।

जनपद मुख्यालय से हमीरपुर महोबा, हमीरपुर राठ स्टेट हाइवे तथा हमीरपुर उरई रोड उपलब्ध है कालपी–राठ मार्ग पर चण्डौत घाट पर बेतवा नदी पर पुल न होने के

कारण आवागमन बन्द रहता है। तो बरसात में यह रास्ता पूर्ण रूप से बन्द हो जाता है। जनपद में उद्यमिता का अभाव होने के कारण यहाँ की जनसंख्या का 82 प्रतिशत भाग कृषि पर निर्भर करता है। जनपद में कोई भी वृहद उद्योग स्थापित नहीं है जो भी मध्यम उद्योग शासकीय ऋण या सहायता पर स्थापित किये गये है। वे अधिकाशतः छूट की धनराशि प्राप्त करने के उपरांत बीमार घोषित कर दिये जाते है। उद्योग मालिकों का मुख्य उद्देश्य ऋण प्राप्त कर छूट की धनराशि प्राप्त करना होता है न कि उद्योग चलाने का। अतः यह योजना जनपद में प्रभावी सिद्ध नहीं हो रही है जनपद में भू–गर्भीय जल स्तर बहुत नीचे होने के कारण पेयजल व्यवस्था में अत्यधिक कठिनाई आती है। यहां तक कि मार्च से लेकर जुलाई तक कुयें तथा हैण्डपम्प भी सूख जाते है। जल निगम भी निर्धारित मानक के अनुसार हैण्डपम्प का बोर कराते हैं परन्तु पेयजल स्तर गहरा होने के कारण गर्मियों में हैण्डपम्प सूख जाते है, अतः इनको गहरा बोर कराया जाना लाभकारी होगा। जनपद की मुख्य समस्या शिक्षा की कमी है। यद्यपि शासन की नीतियों के अनुसार प्रत्येक दो कि0 मी0 की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय स्थापित है परन्तु स्वयं माता पिता के अशिक्षित होने के कारण वे अपने बच्चों को बचपन से ही काम में लगा देते है तथा उनकी शिक्षा की और कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। जनता की शिक्षा की ओर जागरूकता बढ़ाने हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं तथा गोष्ठियों एवं प्रचार के माध्यम से उनमें चेतना जगाना अत्यन्त आवश्यक है। जनपद के अधिकांश भाग में सिंचाई के साधन न होने के कारण किसानों को मानसूनी वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

जनपद के आर्थिक एंव सामाजिक विकास में नदियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। नदियां भूमि की बनावट को बहुत अधिक प्रभावित करती है बाढ़ से नदियों के किनारे के लोगों का जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त नदियों से बहुत अधिक लाभ भी है। मत्स्य उद्योग, लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास नदियों पर निर्भर है। पेयजल

तथा जीवन यापन के अन्य साधन इन्हीं से उपलब्ध होते हैं। जनपद की प्रमुख नदियां निम्नलिखित है।

यमुना नदी जनपद कानपुर नगर, देहात तथा फतेहपुर जनपद को इस जनपद की सीमा बनाती हुयी विकास खण्ड कुरारा की ओर से सुमेरपुर विकासखण्ड के किनारे से बहती हुयी आगे निकल जाती है।

बेतवा नदी यमुना नदी की भांति जिले की पश्चिमी सीमा बनाती हुयी जनपद जालौन से हमीरपुर जनपद को अलग करती है। यह नदी जनपद मुख्यालय से पूर्व की ओर लगभग 5 किमी0 आगे यमुना नदी से मिलती है। केन नदी विकासखण्ड मौदहा के पूर्वांचल सिरे को जिला बांदा से अलग करती हुयी यह नदी केवल 22 किमी0 लम्बाई में बहती है। यह नदी जनपद के लगभग 400 हे0 में कटाव बनाये हुये है। चन्द्रावति नदी इसकी मुख्य सहायक नदी है।

धसान नदी जिले की पश्चिमी सीमा पर जनपद झाँसी को सीमा से अलग करती हुयी धसान नदी, जैसा कि नाम है गहराई से बहती है। तथा जनपद के विकास खण्ड गोहाण्ड से होती हुयी ग्राम चन्दवारी के पास बेतवा में गिरती है। वर्मा नदी का विकास खण्ड पनवाड़ी के पश्चिमी ढाल में इस नदी का बहाव धसान नदी की ओर है। जनपद के पूर्वी भाग के नालों का पानी इस नदी में गिरता है जिसके कारण विकास खण्ड मुस्करा के बिहूनी ग्राम के पास हमीरपुर राठ मार्ग पर बहती है तथा बरसात में बाढ़ से अवरोध उत्पन्न करती है। यह नदी जनपद के विकास खण्ड राठ व सरीला के पूर्वी भाग में बहती है।

चन्द्रावति नदी छोटी नदी होते हुये भी जनपद की लगभग 1500 हेक्टे0 क्षेत्र की फसल प्रभावित करती है। जनपद के विकास खण्ड मौदहा के पूर्वी भाग में बांदा के पैलानी गांव के पास केन नदी में गिरती है। पण्डवाहर नदी को विकास खण्ड सरीला के ग्राम

इस्लामपुर में इसे नाला कहते है। ग्राम रिरूआ बुजुर्ग बसरिया के पास आते ही यह नदी का रूप धारण कर लेती है तथा बेतवा नदी में मिल जाती है।

जनपद की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत :

सभ्यता के अभ्युदय के साथ ही हमीरपुर जनपद के इतिहास की कहानी जुड़ी हुई है। हमीरपुर शहर को 11 शताब्दी में हम्मीरदेव नामक व्यक्ति ने बसाया था जो कि करछुली राजपूत था और अलवर से मुसलमानों द्वारा भगाये जाने पर यहां शरण ली थी। जनपद के दक्षिणी भाग का इतिहास अति प्राचीन है। प्राचीन दन्त कथाओं परम्पराओं एवं पुरातत्व अवशेषों की एक कड़ी में संजोने पर यहां के ऐतिहासिक गौरव को एक सुन्दर रूप दिया जा सकता है।

प्राचीन काल में यह क्षेत्र बनों से आच्छादित था तथा यहां पर प्राचीन जंगली जातियों तथा भीलों आदि का निवास था। प्राचीन शिलालेखों तथा अन्य अवशेषों जो जनपद भर में विखरे पड़े है। इस बात की पुष्टि करते है कि इस जनपद ने भी गुप्त राजाओं के राज्य में स्वर्ण युग का रसास्वादन किया होगा। यद्यपि यहां की जन जातियों का जनपद पर बराबर आधिपत्य रहा परन्तु उत्तरी भारत के सार्वभौम सत्ता से वे हमेशा बंधे रहे।

सर्व प्रथम इस जनपद के बारे में जो ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है वह सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध चीनी यात्री हवेन्सांग का वृतांत है। 641 से 642 ई0 में इस चीनी यात्री ने इस क्षेत्र का भ्रमण किया और इस क्षेत्र को ''चिह–ची–तो'' नाम दिया। हर्ष के पश्चात यहां पर गहरवारों क़ा अधिकार हो गया पारम्परिक कथाओं के अनुसार गहरवार तालाबों के निर्माता थे। महोबा में स्थित विजय नगर तालाब सहित महोबा और कुलपहाड़ में 9 से ऊपर ऐसे तालाब है जिनका निर्माण का श्रेय गहरवारों को है। गहरवारों के पतन के पश्चात इस भूखण्ड पर परिहारों का अधिपत्य हो गया। परिहार राजपूत राजा पाण्डु ने पनवाड़ी की

स्थापना की तथा इसका प्राचीन नाम परहारपुर था। इसी प्रकार राजा उदय करण परिहार द्वारा मुरहरी की स्थापना की गई। परिहारों के पश्चात जनपद पर चन्देलों का आधिपत्य हो गया। इनका उदय इस जनपद के लिये विकास स्थायित्व तथा चरमोत्कर्ष का समय था। चन्देलों के समय में इन विस्तृत भूखण्ड में कला एवं संस्कृति का विकास हुआ तथा एक समय तक चन्देल राजपूत यहां के निवासियों के प्रेरणा श्रोत बने रहे। चदेल वंश में यशोवध र्नि (830—950 ई0) और उसका पुत्र धंगदेव अत्यन्त शक्तिशाली व प्रतिष्ठित राजा हुये। इनके समय में महोबा सम्पन्नता की पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। इसी वंश के पूर्वज राहिल्य ने महोबा के दक्षिण में स्थित रहलिया ग्राम के मन्दिर व झील का निर्माण कराया। धंगदेव के पश्चात उसका पुत्र गण्डदेव सिंहासनारूढ़ हुआ। 1019 ई0 में जब कन्नौज के नरेश ने महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार कर ली तो गण्डदेव ने क्रोधित होकर कन्नौज पर आक्रमण करके वहां के राजा को मार डाला। महमूद गजनवी को जब यह समाचार प्राप्त हुआ तो उसने चन्देल राज्य पर आक्रमण करके गण्डदेव को अपने अधीन कर लिया। गण्ड देव के पश्चात विद्याधर 1025 ई0 में उसका उत्तराधिकारी बना और उसके पश्चात क्रमशः विजयपाल और देव वर्मन ने राज्य किया। देव वर्मन के पश्चात उसका भाई कीर्ति वर्मन उत्तराधिकारी बना जिसे महोबा में स्थित कीरत सागर के निर्माण का श्रेय जाता है। इसके पश्चात क्रमशः सुलक्षण वर्मन, जय वर्मन तथा पृथ्वी वर्मन ने 1100 से 1128 ई0 के बीच राज्य किया। मदन वर्मन (1128—1165 ई0) का समय चन्देल सत्ता का उत्कर्ष काल था। इसके शासन काल में महोबा में मदन सागर और जैतपुर में बेलाताल का निर्माण करवाया गया। चन्देलों की राजधानी यद्यपि खजुराहो थी परन्तु महोबा इस समय कला एवं सांस्कृतिक उत्थान की पराकाष्ठा पर था और इसकी ख्याति दूर—दूर तक फैल गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्देलों का खजुराहो धार्मिक केन्द्र महोबा नागरिक केन्द्र तथा कालिंजर सैनिक केन्द्र था।

1165 ई0 में परमार्दिदेव (परमाल चन्देल) चन्देल गद्दी पर सिंहासन नारूढ़ हुआ जिसको आज लोग गीतों के माध्यम से यहां के निवासी याद करते है। महोबा के प्रसिद्ध वीर रण बांकुरे और यहां के लोकगीत के नायक आल्हा व ऊदल, परमाल के शासन काल में ही हुये तथा चन्दबरदायी के प्रसिद्ध गीत काव्य महोबा खण्ड ने परमाल और आल्हा व ऊदल को अमर कर दिया। महोबा में स्थित विभिन्न स्थान आज भी आल्हा और ऊदल से सम्बन्धित बताये जाते है। परमाल के शासन काल में सबसे प्रसिद्ध घटना पृथ्वीराज के साथ युद्ध है। इसी प्रसिद्ध युद्ध में दोनों वीर योद्धा आल्हा और ऊदल परमाल के की तरफ से वीरता पूर्वक लड़े। अन्त में 1182 ई0 में महोबा पर पृथ्वीराज चौहान का अधिकार हो गया और इसके पश्चात चन्देलों ने महोबा को छोड़कर कालिंजर को अपना केन्द्र बना लिया। 1203 ई0 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने महोबा पर अपना आधिपत्य कर लिया और इस प्रकार चन्देलों का इतिहास अस्त हो गया।

चन्देलों के पतन के पश्चात हमीरपुर जनपद का लगभग 4 सौ वर्षो का इतिहास अन्धकार में डूबा हुआ है। स्थानीय परम्पराओं और कतिपय ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार चन्देलों के पश्चात शहाबुद्दीन और उसके पश्चात मेवातियों, गौड़, गहरवारों आदि जातियों ने महोबा पर एक लम्बे समय तक शासन किया। यह अवश्यम्भावी लगता है कि मुस्लिम सेना 1233, 1247, 1251 ई0 में जनपद से होकर गुजरी थी। महोबा में स्थित गयासुद्दीन निर्मित मस्जिद जिसकी तिथि 1242 ई0 है इसका प्रमाण है। परम्परात्मक कथाओं के अनुसार दिल्ली के शासन ने महोबा को अपने अधिकार में करने के पश्चात इसे खंगारों को दे दिया। खंगारों का शासन बहुत समय तक नहीं चल सका, और अर्जुन पाल व सोहन पाल बुन्देलों ने 1340 ई0 में खंगार शासन का अन्त कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में बुन्देलों का महोबा पर स्थायी रूप से कोई अधिपत्य नहीं रह पाया परन्तु बाद में ज्यों ज्यों दिल्ली में मुगल शक्ति कमजोर होने लगी, बुन्देलशक्ति को संगठित होने का बल मिला।

मुगल सम्राट अकबर के समय भूमि सुधार के अन्तर्गत हमीरपुर जनपद दो सूबों में विभक्त था। ''आइने–ए–अकबरी'' के अनुसार महोबा, मुस्करा, मौदहा और सुमेरपुर परगना तथा अन्य समीपवर्ती क्षेत्र तीन महाल– मौदहा, खडेला (खण्डेह) महोबा में सम्मिलित था। वे तीनों महाल इलाहाबाद सूबा के कालिंजर सरकार का एक अंग थे। राठ सबसे बड़ा महाल था तथा उसके पश्चात हमीरपुर और चण्डौत आते थे।

दिल्ली में मुगलों का शासन कमजोर होने के साथ ही महोबा में बुन्देलों का अधिपत्य धीरे–धीरे दृढ़ होने लगा। प्रारम्भ में यद्यपि बुन्देल शासक कोई विशेष शक्तिशाली नहीं थे, परन्तु दिल्ली सम्राट औरंगजेब के निरन्तर दक्षिणी भारत में उलझे रहने की स्थिति का लाभ उठाकर 1675 ई0 में चम्पतराय का पुत्र छत्रसाल एक शक्तिशाली शासक बन बैठा। 1703 ई0 में दिल्ली की ओर से फरूखाबाद के बंशज नबाव मुहम्मद खान बंगश को सम्राट की सेवा के बदले में अन्य क्षेत्रों के साथ जनपद का मौदहा परगना भी दे दिया गया। नबाव ने दिलेर खां को यहां की जागीर दे दी। इन सबके बावजूद छत्रसाल ने मौदहा में धमासान युद्ध करके दिलेरखां को मार भगाया तथा बुन्देलों का अधिपत्य सम्पूर्ण जनपद पर हो गया। नबाव ने दो बार 1725 और पुनः 1727 में अपने क्षेत्र को संगठित करने का प्रयास किया। 1727 ई0 में इचौली और 1728 ई0 में कुलपहाड़ और जैतपुर पर नबाव की सेना ने आक्रमण करके जैतपुर पर कब्जा कर लिया। परन्तु पेशवा बाजीराव के नेतृत्व में मराठों की सेना के एकाएक प्रवेश से मुहम्मद खां बंगश की समस्त विजय पराजय में परिवर्तित हो गई। 1731 ई0 में मराठों से प्रभावित होकर छत्रसाल ने अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व एक वसीयत नाम लिखकर अपने राज्य के शेष भाग पर छत्रसाल के उत्तराधिकार मराठों द्वारा कब्जे में रखे जायेंगे। इस प्रकार महोबा को मराठों को दे दिया गया तथा पन्ना राज्य छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र हर्दशाह को प्राप्त हुआ। जैतपुर राज्य जिसमें चरखारी सहित पूरा जनपद एवं बांदा का कुछ भाग सम्मिलित था दूसरे पुत्र जगतराज को दे दिया गया।

जगतराज के जीवन काल में उसके बड़े पुत्र कीरत सिंह की मृत्यु हो गई। 1758 में जगतराज की मृत्यु के बाद उसके द्वितीय पुत्र पहाड सिंह ने अपने को जैतपुर का राजा घोषित कर दिया। कीरत सिंह के दोनों पुत्र गुमान सिंह और खुमान सिंह ने अपने अधिकार के लिये आबाज उठाई, परन्तु वे दो बार सूपा तथा खरेला में पराजित हुये। 1765 ई0 में अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व पहाड़ सिंह ने अपने दोनों भतीजे – गुमान सिंह को बांदा तथा खुमान सिंह को चरखारी का राज्य दे दिया। पहाड़ सिंह के बड़े पुत्र गज सिंह को जैतपुर की गद्दी विरासत में मिली, जबकि द्वितीय पुत्र मानसिंह को सरीला की जागीर प्राप्त हुई।

1781 ई0 में बांदा के राजा की मृत्यु के पश्चात सेना नायक नोनी अर्जुन सिंह के संरक्षण में उनका राज्य चलाया गया जिसने मौदहा पर आक्रमण करके पढ़ोरी ग्राम के समीप भयंकर युद्ध में खुमान सिंह को मार डाला तथा चरखारी राज्य बांदा में सम्मिलित हो गया। बुन्देलों के आपसी संघर्ष का मराठों ने लाभ उठाया। नबावअली बहादुर और हिम्मत बहादुर गोसाई ने एक साथ आक्रमण करके 1791 ई0 में नोनी अर्जुन सिंह को पराजित किया। इसके पश्चात हिम्मत बहादुर ने चरखारी तरफ बढ़कर के बीजावर नरेश वीरसिंह देव को पराजित करके समस्त चरखारी राज्य पर मराठा पताका फहरा दिया। चरखारी में खुमान सिंह के पुत्र विजय बहादुर को वहां के राज्य की सनद दे दी गई। शेष जनपद हिम्मत बहादुर और नबाव बहादुर ने आपस में बांट लिया। नबाव अली बहादुर ने अपनी मृत्यु के पूर्व पूना दरबार के साथ समझौता कर लिया और अपने राज्य पर पेशवा की सर्वप्रभुता की मोहर लगा दी। 31 दिसम्बर 1802 ई0 में बहसीन की सन्धि में पेशवा ने अंग्रेजों की सेना के रखरखाव के लिये 26 लाख रूपये राजस्व की भूमि दे दी। 16 दिसम्बर, 1803 ई0 में एक और सन्धि में पेशवा ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को अली बहादुर के राज्य से 35 लाख 16 हजार रूपये के राजस्व की भूमि दे दी। हिम्मत बहादुर ने अंग्रेजों के साथ सन्धि करके पनवाड़ी,

राठ, मौदहा और सुमेरपुर की जागीर प्राप्त कर ली। बाद में अंग्रेजी सेना कालिंजर की तरफ आगे बढ़ी और कपिसा के युद्ध में अली बहादुर का द्वितीय पुत्र शमशेर बहादुर पराजित हुआ और कालपी भाग गया। इसके बाद अंग्रेजों ने कालपी का भी अधिग्रहण कर लिया। यद्यपि पूरे जनपद पर अंग्रेजी राज्य का आधिपत्य हो गया था, परन्तु दक्षिणी भाग में गोपाल सिंह, लक्ष्मण सिंह राजाराम, तेजसिंह बुन्देला आदि के नेतृत्व में कई बार असफल विद्रोह हुआ। 1806 ई0 में महोबा परगना जालौन के सूबेदार को दे दिया गया। 1842 ई0 में प्रथम अफगान युद्ध के समय जैतपुर के राजा परीक्षत ने विद्रोह किया परन्तु वह पकड़ा गया। 1853 ई0 में महोबा तथा जैतपुर जालौन से वापिस करके इसी जनपद में सम्मिलित कर दिये गये।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में हमीरपुर जनपद का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। जून 1857 ई0 में क्रान्तिकारियों ने हमीरपुर जनपद में गुप्त सभा करके विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। स्थिति की नाजुकता को देखकर तत्कालीन कलेक्टर लायड तथा ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट डोनाल्डग्रान्ट ने नाव द्वारा भागने का प्रयास किया परन्तु वे दोनों पकड़े गये और मार डाले गये। 20 जून को बिठूर के नाना साहब की एक टुकडी हमीरपुर मुख्यालय आयी और पेशवा के शासन की घोषणा कर दी। इसी प्रकार समस्त जनपद में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की आग भडक उठी। महोबा के अंग्रेज अधिकारी श्री कार्ने ने स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये चरखारी में शरण ली। इस बीच परगना जलालपुर में मराठों ने कब्जा कर लिया और जैतपुर के राजा परीक्षित की विधवा ने देशपत से मिलकर स्वत्वाधिकार की घोषणा कर दी। चरखारी की सेना ने उन्हें रोकने का असफल प्रयास भी किया। जनवरी 1858 में तात्याटोपे ने चरखारी पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसमें देशपत, दौलतसिंह और बाणपुर और शाहपुर के राजाओं ने भी तात्या को सहायता दी।

अंग्रेजों की सेना सेनानायक हिटलाक के नेतृत्व में महोबा की तरफ बढ़ी। महोबा से आगे बढ़ने पर बांदा के नबाव ने कबरई में अंग्रेजों को रोकने का असफल प्रयास भी किया। 19 अप्रैल 1858 ई0 को नवाव की सेना अंग्रेजों से पूर्ण रूपेण पराजित हुई तथा नबाव कालपी भाग गया। कालपी के पतन के पश्चात सम्पूर्ण हमीरपुर अंग्रेजों के हाथ में आ गया। 24 मई 1858 ई0 को फ्रीलिंग ने एक सेना की टुकड़ी के साथ हमीरपुर मुख्यालय पर कब्जा कर लिया। इसी वर्ष हमीरपुर हमीरपुर झाँसी मण्डल में सम्मिलित कर दिया गया।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात 1858 में अंग्रेजों का पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो गया था, परन्तु जनता में विदेशी शासन के प्रति हमेशा ही घृणा की भावना रही और समय आने पर यहां के जनवासियों ने गुलामी के इस जुये को अपने कन्धे से उतार फेकने का भरपूर प्रयास किया। 1857 ई0 के पश्चात सरीला और चरखारी देशी रियासतों के रूप में यहां के स्थानीय राजाओं के शासन में था तथा शेष सम्पूर्ण जनपद अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत था। जनपद के प्रारम्भिक जन आन्दोलन के प्रेरणा श्रोत राठ तहसील के निवासी पण्डित परमानन्द थे। जिन्हें 1815 ई0 में लाहौर में गिरफ्तार करके कालेपानी की सजा दी गई। तत्पश्चात दीवान शत्रुघन सिंह और स्वामी ब्रम्हानन्द ने जनपद के स्वतन्त्रता संग्राम को नेतृत्व प्रदान किया। 1929 ई0 में महात्मा गांधी जनपद में पधारे और महोबा सहित कई अन्य स्थानों का दौरा किया।

नमक कानून तोड़ो आन्दोलन, सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत भारी संख्या में जनपद में गिरफ्तारियां हुई। रानी राजेन्द्र कुमारी, मन्नी लाल गुरूदेव, श्रीपत सहाय रावत, भगवान दास, बालेन्दु, रामगोपाल गुप्ता, सुरेन्द्र दत्त बाजपेई, बद्री प्रसाद बजाज, मातादीन बुधौलिया, उदित नारायण शर्मा, मन्नूलाल शर्मा, राधेश्याम मिश्र तथा बैजनाथ पाण्डेय आदि उस समय के प्रमुख स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी थे। इसके अतिरिक्त इस संग्राम में अनेकों प्रबुद्ध वर्ग के लोग वकील तथा विद्यार्थियों ने भी भाग लिया।

1937 ई0 में जनपद के जराखर ग्राम में एक कांग्रेस सम्मेलन का आयोजन भी हुआ जिसमें राष्ट्रीय स्तर के नेता पण्डित जवाहर लाल नेहरू पं0 गोविन्द बल्लभ पन्त और डा0 सम्पूर्णानन्द आदि ने भी भाग लिया। जनपद के रियासती राज्य –चरखारी व सरीला भी इस जन आन्दोलन से अछूते न रहे। प्रज्ञा मण्डल नामक एक दल का गठन करके वहां के शासकों के विरूद्ध आवाजें उठायी गई। इनमें डा0 बेनी प्रसाद अग्रवाल, बिहारी लाल विश्वकर्मा, दल सिंह तथा कामता प्रसाद आदि प्रमुख थे। अन्त में 15 अगस्त 1947 ई0 को देश स्वतत्रत हुआ। इसके पश्चात सरीला और चरखारी राज्य का विलीनीकरण हमीरपुर जनपद में हो गया।

<u>सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश</u> :

हमीरपुर जनपद बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार के रूप में विख्यात हैं यहां के आर्थिक विकास में प्रमुख रूप से यहां की भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु बाधक रही है। सिंचाई के साधनों की कमी का होना यहां प्रमुख समस्या है। कुल बोये गये क्षेत्र में से केवल 6 प्रतिशत क्षेत्र में ही सिंचाई हो पाती है। यहां की भूमि पठारी तथा ऊँची नीची होने के कारण नहरों का अभाव है। जनपद का बहुत कम भूभाग नहरों (पम्प कैनाल) से सिंचित है। अधिकांश क्षेत्रों में नलकूपों तथा तालाबों के माध्यम से ही सिंचाई की जाती है। इस समय जनपद में जो भी राजकीय नलकूप कार्यरत है। वे जनपद के वृहद क्षेत्र को देखते हुए बहुत कम है। लघु सिंचाई कार्यक्रम के अन्तर्गत सन्तोषजनक प्रगति हुयी है। मौदहा बांध, उर्मिल बांध, तथा अर्जुन बांध नामक परियोजनाअें के पूर्ण होने पर लगभग 60 हजार हैक्टेयर भूमि में अतिक्ति सिंचन क्षमता का सृजन हो जायेगा। सिंचन क्षमता को सृजन तथा उसके उपभोग को बढ़ाने के लिए यह परमावश्यक है कि मध्यम एवं बृहद आकार की सिंचाई परियोजनाओं को शीघ्र पूरा कराया जाये। इसके अतिरिक्त यहां की भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए यह

परमावश्यक प्रतीत होता है कि राजकीय खर्चे पर अधिक से अधिक नलकूप बनवा कर कृषकों को दिये जाये ताकि यहां कि कृषि योग्य भूमि की उत्पादकता बढ़ सके।

चूंकि इस जनपद की जलवायु शुष्क है तथा वर्षा यहां सामान्य से कम होती है। अतः इस जनपद के 5 विकासखण्डों में सूखोन्मुख क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम लागू कराया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 82 नलकूपों तथा 7 ब्लास्ट कूपों का निर्माण हो चुका है। इसके अतिरिक्त 17,822 हैक्टेयर में गलीज प्लांग, 24, 78 हैक्टेयर में जलसमेट बन्धी तथा 139 हैक्टेयर में वाटर हारवेस्टिंग बन्धी तथा चैक डैम का निर्माण कराया गया है।

20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत एकीकृत ग्राम्य विकास योजना अधिकाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। योजना में 27696 लाभार्थियों को लाभान्वित कराया जा चुका है। इनमें से 17779 अनुसूचित जाति के लाभार्थी हैं नये चयनित लाभार्थियों के साथ साथ पुराने ऐसे लाभार्थियों को जो गरीबी रेखा से ऊपर नहीं उठ सके थे उन्हें अतिरिक्त सहायता देकर उनका आर्थिक स्तर गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का प्रयास किया जा रहा है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों के लिए अधिकाधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा रहे हैं तथा ग्रामों के विकास के लिए स्थायी परिसम्पत्तियां सृजित हो रही है इसी तरह ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी योजना के अन्तर्गत भी ऐसे मजदूरों को कार्य दिया जा रहा है जिन्हें आजीवका का कोई साधन प्राप्त नहीं है पर्यावरण सुधार सम्बन्धी अनेकों कार्यक्रम जनपद में प्रारम्भ हो चुके है। गन्दी बस्तियों की सफाई, शौचालय आदि की व्यवस्था ऐसे कार्य हैं जिन्हें प्राथमिकता के आधार पर कराया जा रहा है।

वृक्षारोपण के क्षेत्र में जनपद ने 51 लाख पौधे रोपित कर आशातीत सफलता प्राप्त करते हुए प्रदेश में प्रथम स्थान, ग्रहण किया है। सामाजिक वानिकी योजना के अन्तर्गत

लगभग 481 हैक्टे0 में पौधे रोपित किये जा चुके है। इसके साथ साथ प्राइवेट नर्सरी, स्कूल नर्सरी तथा किसान नर्सरी आदि ऐसी योजनायें दी गई है जिनमें पर्यावरण में सुधार हो सकेगा।

स्थायी परिसम्पत्तियां, विशेषकर कृषि योग्य भूमि को वितरित करने में शासन की तीव्र रूचि हैं गरीबो को लाभ देने में ऐसे लोगों को जिन्हें सीलिंग तथा चकबन्दी से बची हुयी भूमि के पट्टे दिए गए थे, को अपनी भूमि सुधार हेतु उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान की जा रही है। शासन की मांग के अनुरूप अम्बेडकर गांवों की समस्याओं का निवारण तथा उनका विकास प्राथमिकता के आधार पर किया जा रहा है।

विद्युतीकरण का अभी शत प्रतिशत लक्ष्य पाना बाकी है। जनपद के विकास एवं शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि यहां पर्याप्त मात्रा में सड़कों का जाल उपलब्ध हो, जो नहीं है। जो सड़के बनाई गई है उनकी चौडाई कम होने के कारण ट्रैफिक को आने जाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जिला प्रशासन द्वारा सड़कों का जाल विछाने के लिए एक महत्वपूर्ण योजना बनाई गयी है जिसके लगभग 12 करोड़ रूपये लगने की संभावना है फिलहाल ग्रामीण सड़के प्राथमिकता के आधार पर बनायी जा रही है तथा 1000 से अधिक आबादी के गांवों को प्राथमिकता के आधार पर जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। जनपद में अनेकों स्थान पर पुल निर्माण के कार्य स्वीकृत कराये जा चुके हैं परन्तु इनमें कार्य प्रारम्भ कराया जाना है जो उत्तर प्रदेश सेतु निगम को करना है।

यह जनपद उद्योग के क्षेत्र में शून्य उद्योग का जनपद माना जाता रहा है। राज्य सरकार की उदार नीति के फलस्वरूप कुछ उद्यमियों ने इस जनपद में अपने उद्यम स्थापित करने शुरू कर दिये है। जनपद में भरूआ सुमेरपुर नामक स्थान पर वृहद औद्योगिक क्षेत्र विकसित किया गया है। इस जनपद में कताई मिल तथा खाद का कारखाना तथा सीमेन्ट तथा गिट्टी पर आधारित उद्योग आसानी के साथ पनप सकते है।

अध्याय— 6

कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन हमीरपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में

(अ) भारत में कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन (संक्षिप्त विवरण)

(ब) हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

(अ) लोक अदालतों की भूमिका

(ब) उपभोक्ता संरक्षण फोरम की कार्यप्रणाली

(स) पारिवारिक न्यायालयों की भूमिका

(द) विधिक साक्षरता शिविरों का योगदान

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान न्याय का वचन देता है हमारे देश में लगभग 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे निवास करती है। हमारे प्रजातान्त्रिक समाज की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि हम उक्त संवैधानिक दायित्व को व्यवहारिक रूप प्रदान करें। विशेष रूप से समाज के गरीब और कमजोर वर्गो को समान न्याय प्रदान करना हमारे समक्ष एक गम्भीर चुनौती है। भारत में लाखों लोग अन्याय के विरूद्ध अपने दावों को लेकर परेशान है। गरीब और कमजोर वर्गो के पास सम्पन्न वर्ग के मुकाबले आर्थिक श्रोत व साधन नहीं हैं। अतः उनके लिए शीघ्र न्याय की संभावना खोजी जानी आवश्यक है।

किसी भी प्रजातान्त्रिक समाज में यह आवश्यक होता है कि उसके नागरिक अपने कानूनी अधिकारों को जाने। अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए उन्हें कानूनी सहायता मिलनी चाहिए। कानूनी सहायता का विचार एक संवैधानिक उद्देश्य को रेखांकित करता है। यह उद्देश्य मांग करता है कि सभी नागरिकों के लिए न्याय सुनिश्चित रूप से प्राप्त होने के लिए पर्याप्त अवसर हो और किसी भी नागरिक को आर्थिक या अन्य निर्योग्यता के कारण न्याय से वंचित न होना पड़े। राज्य का यह दायित्व है वह कानूनी सहायता कार्यक्रम या अन्य माध्यमों से कानूनी सहायता देने का प्रयास करें जिससे गरीबों को न्याय मिल सके।[1]

ब्रिट्रेन में "**मैग्नाकार्टा**" में कहा गया था "**हम किसी को भी न्याय देने से इंकार नहीं करेंगे तथा विलम्ब नहीं करेंगे।**[2]

हमारे देश में स्वाधीनता से पूर्व जिन अंग्रेजों का शासन रहा उन्होंने अपने देश के इस महान अभिलेख में निहित भावना को भारत में लागू नहीं किया। स्वाधीनता के बाद भी गंभीरता से इस समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया परिणाम स्वरूप आज भी गरीब और कमजोर वर्ग न्याय से वंचित है।

---

1. संविधान का अनुच्छेद 39 (क)
2. मैग्नाकार्टा (MAGNACARTA) 1215

भारत का संविधान भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त करने की आज्ञा देता है। न्याय उन चीजों और उद्देश्यों की प्राप्ति है जिनके लिए नागरिक हकदार है, और होना चाहिए। भारत के संविधान में वे चीजें लेखबद्ध है जिन्हें पाने के लिए भारतीय नागरिक हकदार है। उन चीजों की प्राप्ति के लिए यह अनिवार्य है कि उन लक्ष्यों तथा उनके साथ जुड़ी बाध्यताओं के प्रति लोगों में जागरूकता आये। अतः भारत के संविधान के अन्तर्गत न्याय पाने के लिए उन प्राधिकरणों या निकायों तक पहुंचना जरूरी है। जिनके लिए लोग हकदार है, उन तक पहुंचना तभी कारगर उपयोगी और सार्थक होगा जब उन्हें पाना निश्चित और सुगम तथा समझना सरल हो।

अतः यह आवश्यक है कि भारत में विधिक सहायता आंदोलन इस लक्ष्य को पूरा करने की दिशा में अग्रसर हो। वह लोगों में उनके हकों और अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करे और साथ ही उनकी बाध्यताओं से भी उन्हें परिचित कराये ताकि वे अपने हकों के लिए सुपात्र बन सके। **महात्मा गाँधी** ने कहा था **''उन समस्त अधिकारों के साथ–साथ जिनके लिए पात्रता और परिक्षण प्रदान करना है कर्तव्य भी अच्छी तरह किए जाये''।**[1] गाँधी जी की आकांक्षा थी कि हर चेहरे से आँसू पोंछ डाले। विधिक सहायता आन्दोलन को लोगों को उनके अधिकारों और दायित्वों के प्रति जागरूक करने की दिशा में ठोस कदम उठानें चाहिए। अतः हमारे संविधान की आज्ञा के पालन के लिए उचित कानूनी जागरूकता अनिवार्य है। न्यायमूर्ति ए0 एम0 **अहमदी** का मत है कि **''अतः यह जरूरी है कि हमारी विधिक व्यवस्था दोहरा विकास करे, पहले, वित्तीय सहायता और ऊँचे दर्जे की वृत्तिक सेवा प्रदान करके आर्थिक असंतुलन को दूर करना, और दूसरे निरक्षरों व दलित वर्गो मे उनके कानूनी अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा**

---

1. न्यायमूर्ति सव्यसांची मुखर्जी : संपादकीय, विधिक सहायता संवाद पत्र, मई 89, फरवरी 90

करना। हम देश के हर कोने में अपनी विधिक सहायता स्कीमों के कार्यान्वयन से प्रथम लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास कर रहे हैं। जरूरत मंद को वित्तीय सहायता देने के साथ–साथ हम बड़े–बड़े वकीलों को गरीबों की निःशुल्क सेवा करने के लिए प्रेरित करने में भी सफल रहे है''।[1]

विधिक सहायता कार्यान्वयन समिति (CILAS) का गठन केन्द्र सरकार द्वारा 1980 में कानूनी सहायता कार्यक्रमों को गति देने के लिए किया गया। समिति द्वारा निर्देशित योजनाओं को देश के अधिकतर राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा अपनाया गया। एक बड़ी संख्या में गरीब और पिछड़े वर्ग के लोगों को कानूनी सहायता प्रदान की गयी देश के विभिन्न स्थानों पर सुलह समझौते के आधार पर मामले सुलझाने के लिए विभिन्न स्थानों पर सारे देश में लोक अदालतें लगायी गयी। इस तरह सारे देश में लोक अदालत एक स्वैच्छिक और सांमजस्य पूर्ण तरीके से विवादों को सुलझाने वाली एजेन्सी के रूप में लोकप्रिय हो रही है।

'विधिक सेवा प्राधिकरण' के संचिवालय द्वारा दिये गये आंकड़ों के अनुसार कानूनी सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। मार्च 1994 तक सारे देश में 9027 लोक अदालतें लगायी गई जिसमें 42,37,147 मुकदमें निस्तारित हुये जिनमें मोटर दुर्घटना प्रतिकर वादों की संख्या 2,26,144 थी अऔर प्रतिकर की धनराशि रू0 485,99,09,323 एकत्र की गयी और प्रभावित परिवारों को बाँटी गयी।

निम्नांकित तालिका ''अ'' लोक अदालतों से सम्बन्धित राज्यवार आंकड़े प्रस्तुत करती हैः–[1]

तालिका (1)

राज्य विधिक सहायता और सलाह बोर्डो/जिला विधिक सहायता समितियों द्वारा आयोजित लोक अदालतों की संख्या, निपटाए गए मामलों की संख्या, संदत्त प्रतिकर राशि आदि (31–3–94) को प्राप्त जानकारी के आधार पर–

1. न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी : संपादकीय, विधिक सहायता संवाद पत्र, सितम्बर 1990, मार्च 1991
2. विधिक सहायता संवाद पत्र नई दिल्ली, पृ0 16 अक्टूबर 93 मार्च 94

	लगाई गई लोक अदालतों की सं0	निपटाये गए मामलों की संख्या (एम0ए0 सी0टी0 मामलों सहित)	मोटर दुर्घटना दावा अधिकरणों के तय किये गये मामले	
			तय किये मामलों की संख्या	दावेदारों को संदत्त प्रतिकर राशि (रू0)
1. आन्ध्रप्रदेश	301	2,11,315	18,959	51,46,04,567
2. आसाम	52	5,386	1,220	4,82,71,852
3. बिहार	16	40,181	209	89,30,580
4. गोवा	12	1,514	851	3,19,57,751
5. गुजरात	743	1,07,914	21,517	54,75,00,000
6. हरियाणा	429	1,46,734	6,328	36,80,25,997
7. हिमांचल प्रदेश	36	10,783	367	91,26,361
8. जम्मू एवं कश्मीर	01	76	76	59,97,000
9. कर्नाटक	3,369	2,75,535	38,830	52,27,27,407
10. केरल	30	18,583	13,194	7,26,49,795
11. मध्यप्रदेश	440	5,45,599	51,486	19,61,76,432
12. महाराष्ट्र	1,105	58,446	8,300	19,84,47,930
13. मणिपुर	4	476	67	20,02,000
14. मेघालय	3	236	114	39,54,000
15. मिजोरम	4	268	196	43,34,000
16. उड़ीसा	1,783	5,00,045	6,202	17,58,43,503
17. पंजाब	116	22,674	6,069	12,22,73,449
18. राजस्थान	321	5,56,483	10,878	33,03,07,711
19. सिक्किम	3	10	—	—
20. तमिलनाडू	492	24,357	24,854	68,54,67,073
21. त्रिपुरा	3	474	85	28,14,500
22. उत्तर प्रदेश	1,673	17,02,265	15,942	53,45,04,875
23. पश्चिमी बंगाल	32	2,275	1,424	5,46,56,700
24. चण्डीगढ़	15	1,689	140	82,75,800
25. दिल्ली	23	9,971	6,210	48,94,71,498
26. पांडिचेरी	19	990	992	2,15,51,552
कुल योग	9,027	43,37,147	2,26,144	4,85,99,09,323

लोक अदालतों ने गरीब और अशिक्षित वादियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके माध्यम से उन गरीब और शोषित वर्गों के व्यक्तियों को कानूनी सहायता मिली है जो न्यायालयों के खर्च को वहन करने में असमर्थ हैं। विधिक सहायता क्रियान्वयन समिति के द्वारा एकत्र किये गये आंकड़ों के अनुसार

31–03–94 तक सारे देश में लोक अदालतों के द्वारा निम्नांकित वर्गो के लोगों को विधिक सहायता प्रदान की गई साधारण 11,64,977 अनुसूचित जाति 309790 अनुसूचित जनजाति 1,70,069 पिछड़ी जातियां 64,183 स्त्रियां 1,72,030 बालक 7,4791 इस प्रकार कुल 17,88,528 व्यक्ति लाभान्वित हुये।

निम्नांकित तालिका सारे देश में विभिन्न राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में विभिन्न वर्गो के लाभान्वित व्यक्तियों की सूची प्रस्तुत करती है[1]–

तालिका (2)

लोक अदालतों द्वारा लाभान्वित व्यक्ति (विविध वर्ग)

	साधारण	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जानजाति	पिछड़ी	स्त्रियां	बालक	जोड़
1. आन्ध्रप्रदेश	7,764	3,047	1,539	3,894	2,753	169	19,148
2. अरूणाचलप्रदेश	965	67	240	46	40	–	1,358
3. आसाम	1,170	4	–	4	2	–	1,180
4. बिहार	2,790	–	–	–	495	–	3,295
5. गोवा	85	1	–	192	143	–	421
6. गुजरात	9,316	2,950	1,541	–	3,068	130	17,005
7. हरियाणा	6,019	403	42	298	642	238	7,642
8. हिमांचल प्रदेश	511	285	24	32	147	1	1,000
9. जम्मू एवं कश्मीर	4,399	364	32	152	2,220	145	7,252
10. कर्नाटक	20,947	5,388	1,601	19,694	6,807	57	54,494
11. केरल	1,175	–	–	–	2	–	1,177
12. मध्यप्रदेश	2,27,020	1,39,077	1,20,389	–	–	–	4,86,486
13. महाराष्ट्र	60,148	7,557	4,324	–	7,749	428	80,206
14. मणिपुर	49	–	11	–	45	12	117
15. मेघालय	80	–	–	–	–	–	80
16. मिजोरम	1,400	16	662	11	26	–	2,115
17. नागालैंड	–	–	2	–	–	–	2
8. उड़ीसा	25,802	26,008	17,153	–	19,751	367	69,101
19. पंजाब	5,847	1,948	247	1,235	499	24	9,800
20. राजस्थान	6,879	4,411	8,250	462	2,994	409	23,395
21. सिक्किम	148	7	21	–	27	1	204

1. विधिक सहायता संवाद पत्र नई दिल्ली, अक्टूबर 93 मार्च 94 पृ0 15

22. तमिलनाडू	4,85,707	76,504	8,530	—	1,01,550	1,102	6,73,393
23. त्रिपुरा	1,650	—	—	—	—	—	1,650
24. उत्तर प्रदेश	92,253	29,522	4,444	34,009	9,307	3,025	1,72,560
25. पश्चिमी बंगाल	21,010	4,672	788	560	4,470	117	31,617
26. अण्डमाननिकोबार द्वीप समूह	10	—	—	—	—	—	10
27. दिल्ली	24,191	1,210	15	—	6,366	50	31,832
28. पांडिचेरी	245	5,823	14	3,583	1,673	1,198	12,736
29. सुप्रीमकोर्ट लीगल एण्ड कमेटी	57,455	526	200	11	1,054	6	59,252
कुल योग	11,64,977	3,09,790	1,70,069	64,183	1,72,030	7,479	17,88,508

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के पारित एवं लागू होने के बाद कानूनी सहायता से सम्बन्धित कार्यक्रमों और योजनाओं का क्रियान्वयन राष्ट्रीय विधिक प्राधिकरण, राज्यों में राज्य विधिक प्राधिकरण एवं जिलों में जिला विधिक प्राधिकरण के द्वारा होता है। इसी प्रकार उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पारित किया गया। इससे सम्पूर्ण भारत में उपभोक्ताओं को त्रृटिपूर्ण वस्तु व सेवा के विरूद्ध, क्षतिपूर्ति का अधिकार प्राप्त हो गया वर्ष 1993 में इसके दायरे को और अधिक बढ़ाया गया, जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम को उपभोक्ता की शिकायत के मामले में पाँच लाख की राशि के दावों के सम्बन्ध में निर्णय लेने की शक्ति है, राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग को बीस लाख रूपये तक के दावों पर निर्णय लेने का अधिकार है तथा राष्ट्रीय आयोग को दस लाख रूपये से अधिक दावों पर निर्णय लेने की शक्ति है। जिला उपभोक्ता फोरम के निर्णय के विरूद्ध उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग एवं राज्य आयोग के निर्णय के विरूद्ध राष्ट्रीय आयोग में अपील की जा सकती है। राष्ट्रीय आयोग के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

उत्तर प्रदेश में कानूनी सहायता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन :

उत्तर प्रदेश में 1981 में कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड का गठन किया गया। उन सभी व्यक्तियों को जिनकी आय 9 हजार रूपये से कम थी वे विधिक सहायता के पात्र

उच्च न्यायालय इलाहाबाद में उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति के अध्यक्ष उच्च न्यायालय के सेवारत न्यायधीश है और उच्च न्यायालय से संयुक्त निबन्धक स्तर के एक अधिकारी को इस समिति के सचिव तथा लखनऊ खण्डपीठ में कार्यरत संयुक्त निबन्धक स्तर के अधिकारी को उच्च न्यायालय विधिक सेवा उपसमिति के सचिव के रूप में नियुक्त किया जाता है। उच्च न्यायालय समिति, इलाहाबाद में राज्य सरकार के ज्येष्ठतम मुख्य स्थाई अधिवक्ता, लखनऊ में राज्य सरकार के ज्येष्ठतम मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अध्यक्ष हाईकोर्ट बार एसोशियेशन इलाहाबाद, अध्यक्ष एडवोकेट एसोशियेशन हाईकोर्ट, इलाहाबाद, अध्यक्ष बार एसोशियेशन लखनऊ निबन्धक उच्च न्यायालय, अपर निबन्धक उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ पदेन सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त 9 व्यक्तियों को उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति जी द्वारा सदस्य के रूप में नाम निर्दिष्ट किया जाता है।

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति/उपसमिति तथा जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

1. पात्र व्यक्तियों को विधिक सेवा उलब्ध कराना।
2. लोक अदालतों का आयोजन करके सुलह समझौते के माध्यम से विवादों का निपटारा कराना।
3. निवारक और अनुकूलन विधिक सहायता कार्यक्रमों का संचालन करना।
4. विधिक सेवा उपलब्ध कराने हेतु अत्यधिक प्रभावी एवं कम खर्चीली योजनायें तैयार करके उन्हें क्रियान्वित करना।
5. ग्रामीण क्षेत्रों, गन्दी बस्तियों या श्रमिक कालोनियों में समाज के कमजोर वर्गो को उनके विधिक अधिकारों की जानकारी देने हेतु विधिक साक्षरता शिविरों का आयोजन करना।

6. पारिवारिक विवादों को सुलह समझौते के आधार पर निपटाने हेतु परिवार परामर्श केन्द्रों की स्थापना करना।

निःशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने के लिये निम्नांकित व्यक्ति पात्र हैः—

1. अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्य
2. अनैतिक अत्याचार के शिकार लोग या ऐसे लोग जिनसे बेगार करायी जाती है
3. महिलायें एवं बच्चे
4. मानसिक रोगी एवं विकलांग
5. अनपेक्षित अभाव जैसे बहुविनाश, जातीय हिंसा, बाढ़, सूखा, भूकम्प या औद्योगिक विनाश की दशाओं के अधीन सताये हुये व्यक्ति तथा शहीद सैनिकों के आश्रित
6. औद्योगिक श्रमिक
7. कारागृह, किशोर, मनोचिकित्सीय अस्पताल या मनोचिकित्सीय परिचर्या गृह में अभिरक्षा में रखे गये व्यक्ति, या
8. ऐसे सभी व्यक्ति जिनकी वार्षिक आय पच्चीस हजार रूपसे से कम है।

<u>लोक अदालतों का आयोजन</u> :

राज्य प्राधिकरण, उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति तथा विधिक सेवा प्राधिकरणों द्वारा समय—समय पर उच्च न्यायालय तथा दीवानी न्यायालयों में लोक अदालतों का आयोजन किया जा रहा है। दिसम्बर 2001 तक उत्तर प्रदेश में कुल 5328 लोक अदालतों का आयोजन करके 41 लाख से अधिक वादों का निस्तारण कराया जा चुका है। लोक अदालतों में मुख्य रूप से मोटर दुर्घटना सम्बन्धी प्रतिकर मामले, पारिवारिक मामले तथा शासकीय, अपराधिक मामले, बैंक, जनता तथा उपभोक्ता सम्बन्धी विवाद सुलह समझौते के आधार पर तय कराये जाते है। लोक अदालतों की मुख्य विशेषता यह है कि लोक अदालतों का अधिनिर्णय दीवानी न्यायालय की डिक्री के समतुल्य है और पक्षकारों पर बाध्यकारी है तथा

लोक अदालत के अधिनिर्णय के विरूद्ध किसी भी न्यायालय में कोई अपील या पिटीशन नहीं दायर की जा सकती। इसके साथ ही जिन मुकदमों में पक्षकार लोक अदालत के माध्यम से सुलह समझौता करते है उन वादों में पक्षकारों द्वारा अदा की गीय कोर्टफीस भी उन्हें वापस कर दी जाती है।

इसके साथ ही लोक अदालत के अवसर पर विशेष रूप से आयोजित शिविरों के माध्यम से लघु आपराधिक वादों, श्रम, राजस्व, स्टाम्प आदि वादों का भी निस्तारण कराया जा रहा है। जिससे वादकारियों को सस्ता एवं सुलभ न्याय प्राप्त हो रहा है।

उत्तर प्रदेश में 1981 से लेकर 2001 तक 5,328 लोक अदालतों में 41,26,169 वाद निस्तारित किये जा चुके है।

निम्नांकित तालिका उत्तर प्रदेश में वर्ष क्रमानुसार लोक अदालतों की प्रगति को स्पष्ट करती है।[1]

तालिका (3)

उत्तर प्रदेश में लगायी गयी लोक अदालतों का विवरण

वित्तीय वर्ष	लोक अदालतों की संख्या	कुल निस्तारित वादों की संख्या
1981 से 11–5–97	2843	2879701
1997 – 1998	349	270638
1998 – 1999	399	265020
1999 – 2000	611	319018
2000 – 2001	1126	391792
कुल योग	5328	4126169

1981 से लेकर 2001 तक मोटर दुर्घटना के निस्तारित वादों की संख्या 51042 थी जिसमें प्रतिकर की धनराशि रू0 2858227981–85 थी। इन मामलों की प्रगति वर्षानुसार

1. विधिक सेवा पंत्रिका अप्रैल सितम्बर 2001, पृ0 144

निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाती है।[1]

तालिका (4)

उ0 प्र0 में मोटर दुर्घटना प्रतिकर वाद

वित्तीय वर्ष	मोटर दुर्घटना प्रतिकर संबंधी निस्तारित वादों की संख्या	प्रतिकर की धनराशि (रूपये में)
1981 से 11–5–97 तक	31060	1343126083.30
1997 – 1998	5901	400224310.00
1998 – 1999	5067	355941034.00
1999 – 2000	4237	342656901.25
2000 – 2001	4777	376602543.30
कुल योग	51042	2858227981.85

उत्तर प्रदेश में 2001 तक आयोजित 5000 से अधिक लोक अदालतों में 28000 से अधिक वैवाहिक वाद निर्णीत हुये जिनके आंकड़े वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है[2]–

तालिका (5)

निस्तारित वैवाहिक विवाद

वित्तीय वर्ष	लोक अदालतों की संख्या	निस्तारित वैवाहिक वादों की संख्या
1981 से 11–5–97	2843	16,288
1997 – 1998	349	2,824
1998 – 1999	399	2,460
1999 – 2000	611	2,718
2000 – 2001	1126	3,876
कुल योग	5328	28,166

1. विधिक सेवा पत्रिका अप्रैल–सितम्बर 2001, पृ0 144
2. विधिक सेवा पत्रिका अप्रैल–सितम्बर 2001, पृ0 144

लोक अदालतों के द्वारा सौहार्दपूर्ण तरीके से विवादों का हल होता है, कम आय वाले, गरीबों और कमजोर वर्ग के लोगों के लिए यह वरदान साबित हुई है इनके द्वारा केवल विधिक साक्षरता ही नहीं बल्कि विधिक जागरूकता भी बढ़ी है।

हमारा देश एक गरीब देश है। हमारी लगभग 74.3 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है।[1] जिसमें गरीब और दलित वर्ग की संख्या अधिक है। जो लोग शहरों में रहते हैं उनमें से अधिकांश निम्न और मध्यम वर्ग में आते है। जब न्याय में विलम्ब होता है तो सबसे अधिक नुकसान गरीब को ही होता है लोक अदालतों के द्वारा जो व्यक्ति लाभान्वित होते हैं, वे बहुत कम आय वर्ग के होते है। और प्रायः उसमें दलित व गरीब होते है।

उत्तर प्रदेश में वर्ष 2001 तक जितनी लोक अदालतें लगायी गयी है उनसे अब तक 63 लाख व्यक्ति लाभान्वित हो चुके है। निम्नांकित तालिका उ0 प्र0 में वर्षानुसार विभिन्न लोक अदालतों में लाभार्थियों की संख्या को इंगित करती है।[2]

तालिका (6)

लोक अदालत के माध्यम से लाभान्वित व्यक्ति

वित्तीय वर्ष	लोक अदालतों की संख्या	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या
1981 – 1997	2843	4387161
1997 – 1998	349	441667
1998 – 1999	399	371247
1999 – 2000	611	528059
2000 – 2001	1126	566934
कुल योग	5328	6295068

1. वी0 सी0 सिन्हा : भारतीय अर्थ व्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिशर्स आगरा, पृ0 3
2. विधिक सेवा पत्रिका अप्रैल–सितम्बर 2001,

उक्त तालिकायें सिद्ध करती हैं कि उ0 प्र0 में लोक अदालतों ने बड़ी संख्या में वादों का निस्तारण करके लोकप्रियता प्राप्त की है और जनता का विश्वास अर्जित किया है, यदि सम्पूर्ण देश में लोक अदालतों के द्वारा वादों के निस्तारण की संख्या को देखा जाये तो उ0 प्र0 का योगदान एक तिहाई से अधिक होगा।[1]

उत्तर प्रदेश में उच्च न्यायालय में पहली बार 1993 में लोक अदालत लगी, जिसमें इलाहाबाद उच्च न्यायालय में 275 मोटर दुर्घटना प्रतिकर दावों से सम्बन्धित अपीलों का निस्तारण किया गया, उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने भी 484 अपीलों का निस्तारण किया।[2]

विधिक साक्षरता शिविर :

उत्तर प्रदेश में समाज के कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को दिन प्रतिदिन काम आने वाले कानूनों की जानकारी देने एवं उनके हित में बनायी गई योजनाओं का लाभ दिलाने के उद्‌देश्य से समय–समय पर और दूरस्थ क्षेत्रों में विधिक साक्षरता शिविरों एवं विधिक जागरूकता कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जा रहा है। इन आयोजनों के माध्यम से सामान्य जनता को विधिक साक्षरता उपलब्ध करायी जाती है और मुख्य–मुख्य विषयों पर सरल भाषा में प्रकाशित करायी गयीं ज्ञानमाला पुस्तकों को भी निःशुल्क वितरित किया जाता है। वर्ष 2001 तक उ0 प्र0 में कुल 678 विधिक साक्षरता शिविर आयोजित किये जा चुके है। इनकी प्रगति निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है–[3]

तालिका (7)

विधिक साक्षरता शिविर

---

1. विधिक सहायता संवाद पत्र, अप्रैल 93, सितम्बर 93, पृ0 7
2. लीगल एड न्यूजलेटर, अक्टूबर 1993 मार्च 1994
3. विधिक सेवा पंजिका अप्रैल–सितम्बर 2001, उ0 प्र0 राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण

वित्तीय वर्ष	साक्षरता शिविरों की संख्या
1998 – 1999	105
1999 – 2000	220
2000 – 2001	353
कुल योग	678

उ0 प्र0 में उपभोक्ता संरक्षण फोरम :

उत्तर प्रदेश स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग स्थापित किया गया, और जिलों में जनपद उपभोक्ता संरक्षण फोरम स्थापित है जिला उपभोक्ता फोरमों में वर्ष सितम्बर 2001 तक 2,63,824 मामले दर्ज किए गए इनमें से 196892 वाद निस्तारित किये गये सबसे अधिक वाद इलाहाबाद जिले में दर्ज किये गये, जिनकी संख्या 11450 थी। लेकिन निस्तारण वादों की सूची में मुरादाबाद पहले स्थान पर रहा जहां सितम्बर 2001 तक 8977 मुकदमें दर्ज किये गये जिनमें 8767 निर्णीत किये गये। आरम्भ से सितम्बर 2001 तक निम्नांकित तालिका उ0 प्र0 के विभिन्न जिलों में उपभोक्ता फोरम में दर्ज एवं निस्तारित वादों के आकड़ों को स्पष्ट करती है।[1]

तालिका (8)

उत्तर प्रदेश उपभोक्ता अदालतों से संबंधित वाद

क्रम सं0	जिला फोरम का नाम	आरंभ से सितम्बर 2001 तक दर्जवाद	आरंभ से सितम्बर 2001तक निस्तारित वाद
1.	आगरा (प्रथम)	8535	6175
2.	आगरा (द्वितीय)	2119	1092
3.	अलीगढ़	9686	8906
4.	हाथरस	978	613
5.	मैनपुरी	3424	2689
6.	मथुरा	4585	3486
7.	एटा	3332	2926

1. उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय द्वारा राष्ट्रीय उपभोक्ता अधिकार दिवस 24 सितम्बर 2001 को प्रकाशित पत्रिका 'उपभोक्ता संरक्षण' से पृ0 22

8.	फिरोजाबाद	2457	1502
9.	इलाहाबाद	11450	7109
10.	प्रतापगढ़	2334	1330
11.	फतेहपुर	2777	2321
12.	कौशाम्बी	165	78
13.	आजमगढ़	2629	2096
14.	बलिया	3115	2603
15.	मऊ	1242	599
16.	बरेली (प्रथम)	5188	4590
17.	बरेली (द्वितीय)	2262	1443
18.	बदायूं	2518	1373
19.	पीलीभीत	2424	1985
20.	शाहजहांपुर	3933	3175
21.	बस्ती	6280	4381
22.	सिद्धार्थनगर	949	824
23.	संतकबीर नगर	—	—
24.	बांदा	2404	1849
25.	हमीरपुर	1714	1318
26.	महोबा	443	387
27.	चित्रकूट	433	168
28.	फैजाबाद	4662	3722
29.	सुल्तानपुर	4356	2455
30.	बाराबंकी	2035	1040
31.	अम्बेदकरनगर	—	—
32.	गोरखपुर	5193	3633
33.	देवरिया	5827	3384
34.	महाराजगंज	585	513
35.	पडरौना	3221	2172
36.	झांसी	4409	3694
37.	जालौन	1962	1840
38.	ललितपुर	1903	1756
39.	कानपुर नगर	11013	7750
40.	कानपुर देहात	2770	1800
41.	इटावा	3403	2175
42.	फर्रूखाबाद	7997	5229

43.	औरेया	—	—
44.	कन्नौज	—	—
45.	लखनऊ (प्रथम)	10358	7140
46.	लखनऊ (द्वितीय)	4724	3687
47.	हरदोई	5109	4586
48.	लखीमपुर खीरी	4364	3435
49.	रायबरेली	3436	2365
50.	उन्नाव	3933	3587
51.	सीतापुर	2562	2278
52.	मेरठ	11148	7376
53.	बुलन्दशहर	6374	4596
54.	गाजियाबाद	10783	7651
55.	गौतमबुद्धनगर	419	88
56.	बागपत	—	—
57.	मिर्जापुर	2469	1374
58.	सोनभद्र	4414	3882
59.	भदोही	171	27
60.	मुरादाबाद (प्रथम)	8977	8767
61.	मुरादाबाद (द्वितीय)	2376	1748
62.	बिजनौर	5171	4424
63.	रामपुर	2657	2122
64.	ज्योतिबाफुलेनगर	325	148
65.	सहारनपुर	4003	3266
66.	मुजफ्फनगर	4412	3283
67.	गोण्डा	2525	2008
68.	बलरामपुर	15	—
69.	बहराइच	5898	4955
70.	श्राबस्ती	343	282
71.	वाराणसी	4252	3318
72.	गाजीपुर	2415	1923
73.	चन्दौली	—	—
74.	जौनपुर	3479	2395
	योग	**2,63,824**	**1,96,892**

उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग के द्वारा सितम्बर 2001 तक शिकायतों और अपीलों से सम्बन्धित 31920 वाद दर्ज किये गये, जिसमें से 7,617 निर्णीत हुये। निम्नांकित तालिका उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग उत्तर प्रदेश के आंकड़ों को प्रस्तुत करती है।[1]

तालिका (9)

उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग, उ0 प्र0

प्रारंभ से माह सितम्बर 2001 तक

		दर्ज वाद	निस्तारण वाद
1.	शिकायतें	2729	1429
2.	अपीलें	29191	6188
	योग	31920	7617

पारिवारिक विवादों में कानूनी सहायता :

किसी भी वाद के निस्तारण में विलम्ब वादकारी के लिए कष्टकारी होता है किन्तु पारिवारिक वादों के निस्तारण में विलम्ब तो न्याय पाने के उद्देश्य को प्रभावित ही नहीं, कभी–कभी समाप्त ही कर देता है। कल्पना कीजिये यदि युवा दम्पत्ति में मतभेद हो जाये तथा विवाद न्यायालय तक पहुंच जाये और वाद का निस्तारण 10–15 साल तक न हो सके तो इस अवधि में पति–पत्नी, उनके बच्चे, माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य जिस मानसिक त्रासदी में रहते है उसकी मात्र कल्पना ही करना भयावह है। इसी प्रकार यदि निर्धन या मध्यम वर्गीय परिवार के भरण पोषण दिलाने के वाद में पत्नी और पति व उसके बच्चों को समय से भरण पोषण हेतु धन न प्राप्त हो सके तो बाद में 5–10 साल बाद भरण पोषण की राशि प्राप्त होने का भी क्या अर्थ रह जाता है। ऐसा भी नहीं है कि विवाह विच्छेद हेतु वाद केवल युवा वर्ग तक ही सीमित हो, विवाह के 40–45 वर्ष के बाद भी पति–पत्नी लड़ते

1. उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय द्वारा राष्ट्रीय उपभोक्ता अधिकार दिवस 24 सितम्बर 2001 को प्रकाशित पत्रिका 'उपभोक्ता संरक्षण' से पृ0 22

झगड़ते न्यायालय तक पहुंच जाते है। पारिवारिक विवादों में बच्चों की दुर्दशा सबसे अधिक होती है। जो उनमें मानसिक कुंठा, आक्रोश, तनाव, नकारात्मक सोच तथा कठोर स्वभाव को जन्म देती है यह सभ्य समाज के भविष्य के लिए घातक लक्षण है। न्याय प्रक्रिया लम्बी एवं पेंचीदा होने के कारण आज न्यायालयों में अनेक वाद समय से निस्तारित न हो पाने के कारण लम्बित पड़े है। इसी पृष्ठभूमि में पारिवारिक विवादों की विशेष एवं संवेदनशील स्थिति को दृष्टिगत रखते हुये विधिक सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण से प्राप्त अनुदान के सहयोग से प्रदेश के सभी जनपद न्यायालयों में जिला प्राधिकरण के तत्वाधान में परामर्श एवं सुलह समझौता केन्द्र बनाये गये है जिसमें सन्धिकर्तागण मनोवैज्ञानिक ढंग से अपने गहन अनुभवों के आधार पर पारिवारिक विवादों को समझौते के आधार पर निस्तारित करने का प्रयत्न करते है। विधिक सेवा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रदेश में अभी तक सुलह समझौते के आधार पर पांच हजार से अधिक पारिवारिक विवादों को हल कराने में सहायता मिली है।

हमीरपुर जनपद में 'कानूनी सहायता कार्यक्रमों' का क्रियान्वयन :

हमीरपुर जनपद उ0 प्र0 के दक्षिणी अंचल में स्थिति है, यह बेतवा और यमुना नदियों से घिरा हुआ है। और अपनी मनोहारी, रमणीयता, नैसर्गिक सौन्दर्य और शान्त वातावरण के लिए तथा बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार के रूप में विख्यात है। यहां के आर्थिक विकास में प्रमुख रूप से यहां की भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु बाधक रही है। सिंचाई के साधनों की कमी का होना यहां की प्रमुख समस्या है कुल बोये गये क्षेत्रों में से केवल 6 प्रतिशत क्षेत्र में ही सिंचाई हो पाती है। यहां की भूमि पठारी तथा उंची नीची होने के कारण नहरों का अभाव है जनपद का बहुत कम भू–भाग नहरों (पम्प कैनाल) से सिंचित है तथा अधिकांश क्षेत्रों में नलकूपों तथा तालाबों के माध्यम से ही सिंचाई की जाती है। यह प्रदेश के उद्योग के क्षेत्र

में शून्य उद्योग का जनपद माना जाता है। भारत सरकार एवं राज्य सरकार की उदार नीति के फलस्वरूप कुछ नये उद्यमियों ने इस जनपद में अपने उद्यम स्थापित करने में रूचि दिखायी है। परन्तु अभी तक औद्योगिक वातावरण नहीं बन सका है। जनपद हमीरपुर का जिला मुख्यालय सम्पूर्ण जनपद के उत्तरी कोने में स्थित है तथा बाढ़ से प्रभावित होता रहता है जिसके कारण बाढ़ के दौरान भारी धनराशि शासन को व्यय करनी पड़ती है तथा हमीरपुर वासियों को बाढ़ की विभीषिका सहन करनी पड़ती है। नगर हमीरपुर वेतवा व यमुना के बीच रोहाइन नाले से घिरा हुआ त्रिभुजाकार डैल्टा के रूप में बसा है। तथा इन दोनों नदियों के थपेड़ों से भूमि का कटाव होता रहता है। हमीरपुर जनपद में 1995 तक महोबा भी शामिल था लेकिन 1995 के बाद से महोबा को एक अलग जिला बना दिया गया है।

हमीरपुर की अधिकांश आबादी ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में रहती है और इसकी जनसंख्या के एक बड़े भाग में अनुसूचित जाति के लोग आते है। 1991 की जनगणना के अनुसार हमीरपुर जनपद में निवास करने वाले अनुसूचित जाति के सदस्यों की संख्या 2,10,271 थी।

हमीरपुर जनपद नदियों से घिरा होने के कारण विकास की प्रक्रिया में बहुत पीछे रहा है। परिणाम स्वरूप यहां साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है। अपराधों का बाहुल्य है। आपस में लड़ाई झगड़े होते रहते है पीढ़ियों से दुश्मनी की परम्परा यहां पाई जाती है।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों की सही आवश्यकता ऐसे ही क्षेत्रों में है क्योंकि समाज में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने के लिए यह जरूरी है कि पुलिस अपराधों की निष्पक्षता से विवेचना करके उन्हें अदालत के समक्ष पेश करे और सजा दिलावे जिससे उनमें सुधार हो और समाज के दूसरे लोगों को यह भय हो कि अपराध करने पर सजा मिलती है। पुलिस द्वारा पेश किए गए मुलजिमान जब साक्ष्य के अभाव में अदालत से छूट जाते है इससे जहां एक ओर

अपराधियों का मनोबल बढ़ता है वहीं दूसरी ओर वादी और गवाह बहुत अधिक हताश और भयभीत हो जाते है। पुलिस और प्रशासन से उनका विश्वास उठ जाता है। जब एक श्रृंखला प्रतिक्रिया (चैन रियेक्शन) बन जाती है। लोग गवाही इसलिए नहीं देना चाहते कि उन्हें मालूम है कि मुल्जिमान छूट जायेगा और छूटकर फिर उनसे अपनी दुश्मनी का बदला लेगा। और चूंकि वह गवाही नहीं देते इसलिए केश में सजा नहीं हो सकती। यह स्थिति खतरनाक है। कानूनी सहायता कार्यक्रमों के द्वारा लोगों में विधिक साक्षरता एवं विधिक जागरूकता लाने का प्रयास किया जाता है जिससे न केवल समाज में तनाव घटते हैं बल्कि दुर्बल और उपेक्षित वर्ग संविधान की मुख्य धारा से जुड़ता है।

(अ) <u>लोक अदालतें</u> :

हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड 1985 में स्थापित हुआ पहली लोक अदालत 24 नवम्बर 1985 को महोबा में लगायी गयी। वर्ष 1985 से 2001 तक 54 अदालतें हमीरपुर जनपद में लगायी जा चुकी हैं जिनमें 35 लोक अदालतें जिला विधिक सहायता एवं परामर्श बोर्ड के द्वारा लगायी गयी। 1987 में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम पारित हुआ और उसके आधार पर उ0 प्र0 में 11–5–97 से जिला विधिक सेवा प्राधिकरण ने कार्य करना प्रारम्भ किया जब से 2001 तक 19 लोक अदालतें लगायी जा चुकी है। निम्नांकित तालिकाओं से वर्षानुसार हमीरपुर जनपद में लोक अदालतों के आयोजन की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।[1]

<u>तालिका (10)</u>

<u>जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड द्वारा आयोजित लोक अदालतें</u>

<u>(1985 से 11–5–97 तक)</u>

---

1. जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श समिति हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

वर्ष	लोक अदालतों की संख्या
1985	01
1986	–
1987	03
1988	01
1989	03
1990	01
1991	03
1992	03
1993	04
1994	03
1995	04
1996	08
11–5–1997	01
कुल योग	35

11–5–97 से हमीरपुर जनपद में जिला कानूनी सहायता परामर्श समिति के स्थान पर जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके द्वारा वर्ष 2001 तक 19 लोक अदालतें लगायी जा चुकी है। जिसका वर्षानुसार विवरण निम्नांकित है।[1]

तालिका (11)

हमीरपुर जनपद में जिला विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा लगायी गई लोक अदालतें

(11–5–97 से 2001 तक)

1. जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श समिति हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

वर्ष	लोक अदालतों की संख्या
1997	02
(11–5–97 के बाद से)	
1998	04
1999	04
2000	04
2001	05
कुल योग	19

'लोक अदालतों' द्वारा निस्तारित वाद :

हमीरपुर जनपद में 1985 से 2001 तक लोक अदालतों के माध्यम से कुल 2600 से अधिक वादों का निस्तारण किया जा चुका है जिनकी वर्षानुसार अध्ययन निम्नांकित तालिका से किया जा सकता है।[1]

तालिका (12)

लोक अदालतों द्वारा निस्तारित वाद (1985 से 2001 तक)

वर्ष	अयोजित लोक अदालत	निस्तारित वादों की संख्या
1985	01	557
1986	–	–
1987	03	2856
1988	01	939
1989	03	2517
1990	01	836
1991	03	2618

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

1992	03	1986
1993	04	2063
1994	03	1146
1995	04	1617
1996	08	3131
1997	03	1666
1998	04	1843
1999	04	1552
2000	04	821
2001	05	682
कुल योग	54	26830

हमीरपुर जनपद में 1985 से लेकर 11–5–97 तक जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श समिति के तत्वाधान में कुल 35 लोक अदालतें लगायी गयी जिसमें महोबा तहसील में 07, मौदहा में 03, राठ में 01, चरखारी में 01, और हमीरपुर में 22 लोक अदालतें लगी। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 में लागू होने के बाद हमीरपुर जनपद में सारी लोक अदालतें मुख्यालय हमीरपुर में ही लगायी गयी। जिनकी संख्या 19 थी। अब प्रतिमाह स्थायी लोक अदालत मुख्यालय हमीरपुर में न्याय परिसर में लगायी जाती है।

हमीरपुर जनपद में 1985 से लेकर 1995 तक 26 लोक अदालतों में 17,135 वाद निष्तारित किये गये। जिनमें से 43 वैवाहिक व 327 दीवानी 10282 आपराधिक वाद, 5743 राजस्व सम्बन्धी तथा अन्य वाद 770 थे। इन निस्ततारित वादों में रूपये 99,3512 की धनराशि अर्थदण्ड के रूप में वसूल की गयी।

निम्नांकित तालिका विधिक वादों के वर्गीकरण को प्रस्तुत करती है।[1]

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (13 अ)
हमीरपुर जनपद में लोक अदालतों द्वारा निस्तारित वादों का वर्गीकरण
(1985 से 95 तक)

वर्ष	लोक अदालतों की संख्या	निस्तारित वादों की कुल संख्या	निस्तारित वादों का वर्गीकरण					
			वैवाहिक वाद	दीवानी वाद	अपराधिक वाद	राजस्व वाद	अन्य	अर्थदण्ड (रू0 में)
1985	01	557	05	27	300	210	15	4450
1986	—	—	—	—	—	—	—	—
1987	03	2856	13	154	1575	558	496	293350
1988	01	939	—	09	598	123	209	25815
1989	03	2517	02	53	1271	1125	66	457560
1990	01	836	—	07	619	200	10	21105
1991	03	2618	05	70	1412	1115	16	52985
1992	03	1986	01	22	1397	534	32	12057
1993	04	2063	01	09	1184	806	63	113351
1994	03	1146	03	01	800	342	—	85030
1995	04	1617	13	15	1126	630	16	83295
योग	26	17135	46	327	10282	5743	770	993512

हमीरपुर जनपद में 1996 से 2001 तक कुल 9611 निस्तारित किये गये जिसमें 52 वैवाहिक वाद, 83 दीवानी वाद, 7960 आपराधिक वाद, 851 राजस्व सम्बन्धी वाद, 133 उत्तराधिकार सम्बन्धी वाद, 78 श्रम सम्बन्धी वाद, 48 चकबन्दी सम्बन्धी वाद एवं 683 अन्य वाद थे। निम्नांकित तालिका उक्त निस्तारित वादों का वर्ष क्रमानुसार विश्लेषण प्रस्तुत करती है।[1]

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (13 ब)

लोक अदालत द्वारा निस्तारित वादों का वर्गीकृत विवरण

(1996 से 2001 तक)

वर्ष	लोक अदालतों की संख्या	निस्तारित वादों कुल संख्या	निस्तारित वादों का वर्गीकरण							
			वैवाहिक वाद	दीवानी वाद	अपराधिक वाद	राजस्व वाद	उत्तरा–धिकार	श्रम	चकबन्दी	अन्य
1996	08	3111	14	28	2377	511	31	65	–	28
1997	03	1660	04	08	1593	113	02	10	–	257
1998	04	1834	13	13	1456	146	28	03	17	168
1999	04	1532	08	14	1339	32	27	–	–	108
2000	04	815	03	02	654	36	25	–	25	63
2001	05	659	10	18	531	13	20	–	06	59
योग	28	9611	52	83	7960	851	133	78	48	683

मोटर दुर्घटना प्रतिकर वाद :

हमीरपुर जनपद में 1985 से 2001 की अवधि में 193 मोटर दुर्घटना प्रतिकर वाद लोक अदालतों द्वारा हल किये गये, इनका वर्ष क्रमानुसार वर्गीकरण निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है।[1]

तालिका (14)

हमीरपुर जनपद में निस्तारित मोटर दुर्घटना प्रतिकर वाद

वर्ष	लोक अदालत की संख्या	निस्तारित वादों की संख्या
1985–99	08	27
1990	01	01
1991	03	23

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

1992	03	30
1993	04	17
1994	03	11
1995	04	10
1996	08	20
1997	03	06
1998	04	09
1999	04	20
2000	04	06
2001	05	23
कुल योग	54	193

<u>लाभान्वित व्यक्ति</u> :

हमीरपुर जनपद में 1985 से 2001 तक 54 लोक अदालतों में 26830 वाद हल हुये और 50,000 से अधिक व्यक्ति लाभान्वित हुये। 1985 से 1995 तक 17 लोक अदालतों के द्वारा 17135 मुकदमे हल हुये जिसमें 29737 व्यक्ति लाभान्वित हुये जिनमें 5395 अनुसूचित जात, 365 अनुसूचित जनजाति, 9570 पिछड़े वर्ग के, 1694 स्त्रियां, 808 बच्चे तथा 10939 अन्य एवं 876 अल्प संख्यक वर्ग के व्यक्ति थे। यह विश्लेषण निम्नांकित तालिका से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।[1]

तालिका (15 अ)

<u>लोक अदालतों के माध्यम से लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की संख्या</u>

1. जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श समिति तथा जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

वर्ष	लोकअदालतों की संख्या	निस्तारित वाद	लाभान्वित व्यक्तियों की श्रेणीवार संख्या							
			अनु0 जाति	अनु0 जनजाति	पिछड़ा वर्ग	स्त्रियां	बच्चे	अन्य	अल्प संख्यक	योग
1985	01	557	148	06	150	242	94	583	—	1223
1986	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
1987	03	2856	863	—	1385	190	96	1515	—	5249
1988	01	939	295	18	338	49	49	809	—	1558
1989	03	2517	838	51	1626	192	183	1349	—	9239
1990	01	836	349	—	281	52	25	640	50	1397—
1991	03	2618	800	51	1322	184	148	1787	147	4439
1992	03	1986	636	44	1272	186	83	661	211	3094
1993	04	063	617	112	1019	289	112	1052	165	3366
1994	03	1146	253	26	780	178	29	592	142	2000
1995	04	1617	596	57	1195	132	79	951	161	3172
योग	26	17135	5395	365	9570	1694	808	10939	876	29737

1996 से 2001 तक हमीरपुर जनपद में 28 लोक अदालतों में 9695 वाद निर्णीत हुये जिनमें 21006 व्यक्ति लाभान्वित हुये। इस अवधि में लाभार्थियों की संख्या का वर्ष क्रमानुसार विश्लेषण निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाता है।[1]

तालिका (15 ब)

वर्ष	लोक अदालत की संख्या	निस्तारित वादों की संख्या	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या
1996	08	3131	8111

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

1997	03	1666	2633
1998	04	1843	5540
1999	04	1552	2471
2000	04	821	1166
2001	05	682	1077
कुल योग	28	9695	21006

उपर्युक्त विश्लेषण हमीरपुर जनपद में लोक अदालतों की कार्य प्रणाली का व्यवहारिक रूप प्रस्तुत करता है इससे यह भी स्पष्ट होता है कि कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रमुख अंग के रूप में लोक अदालतों ने एक बड़ी संख्या में वादों का निस्तारण कर न केवल मुकदमों के बोझ को कम किया है बल्कि वर्षो तक न्याय का इंतजार कर रहे लोगों को त्वरित न्याय प्रदान किया है। ये अदालतें कानूनी साक्षरता और कानूनी चेतना जगाने के लक्ष्य को पूरा करने की दृष्टि से भी हमीरपुर जनपद में प्रभावी रही है। इनसे लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की संख्या पचास हजार से भी अधिक है जिनमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक स्त्रियां, बच्चे एवं अन्य सभी शामिल है।

(ब) हमीरपुर जनपद में उपभोक्ता संरक्षण फोरम की कार्य प्रणाली :

उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिये भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम लाया गया। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 (1986 का 68) देश के सामाजिक आर्थिक कानूनों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण एवं सशक्त प्रयास था तथा इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं के बेहतर संरक्षण प्रदान करना है। उपभोक्ताओं की शिकायतों को शीघ्र व सरल तरीके से कम खर्च में दूर करना इस अधिनियम का एक प्रमुख उद्देश्य है। उत्तर प्रदेश में इस अधिनियम में निहित शक्ति का प्रयोग करके उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदेश के

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

प्रत्येक जनपद में जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम तथा राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग की स्थापना की गयी है।

जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम में शिकायत दायर करने की प्रक्रिया अत्यन्त सरल है, यदि माल अथवा सेवाओं का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के लिये मांगी गयी राशि पांच लाख रू0 तक है तो शिकायत उस जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम में दायर की जा सकती है जिसे राज्य सरकार ने उस जिले के लिये अधिसूचित किया है, यदि माल अथवा सेवाओं का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति के लिये मांगी गयी राशि पांच लाख रूपये से अधिक है किन्तु बीस लाख रूपये से कम है, तो शिकायत राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित राज्य उपभोक्ता संरक्षण आयोग में दायर की जा सकती है, जिला फोरम में निर्णीत शिकायतों के सम्बन्ध में अपील राज्य आयोग में तीस दिन की अवधि के अन्दर की जा सकती है, यदि माल अथवा सेवाओं का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति की मांगी गयी राशि 20 लाख रूपये से अधिक है तो शिकायत नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय उपभोक्ता संरक्षण आयोग में सीधे दायर की जा सकती है राज्य आयोग के निर्णय के विरूद्ध अपील राष्ट्रीय आयोग में 30 दिन की अवधि के भीतर की जा सकती है, साथ ही राष्ट्रीय आयोग के निर्णय के विरूद्ध अपील उच्चतम न्यायालय में 30 दिन की अवधि के भीतर की जा सकती है।

जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग से शिकायत दायर करने के लिये कोई शुल्क नहीं देना पड़ता है। शिकायत कर्ता अथवा उसका प्राधिकृत प्रतिनिधि व्यक्तिगत रूप से शिकायत दायर कर सकते हैं। शिकायत जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम अथवा राज्य आयोग को डाक द्वारा भी भेजी जा सकती है, इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि शिकायत, कार्यवाही का कारण पैदा न होने की तिथि से दो वर्षो के भीतर दायर की जानी चाहिये।

हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम की कार्यप्रणाली 1996 से प्रारम्भ हुयी। 1996 से 2001 की अवधि में 907 मुकदमों का निस्तारण हो चुका है जिनमें विद्युत, दूरसंचार, शिक्षा, डाक विभाग, बैंक, जीवन बीमा, मोटर दुर्घटना, स्वास्थ्य विभाग, जल संस्थान, क्रय की गयी वस्तुयें एवं अन्य वादों से सम्बन्धित मुकदमें शामिल हैं।

जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित वादों के निस्तारण का व्यापक विश्लेषण निम्नांकित है।

(i) **विद्युत विभाग संबंधी वाद** : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम के द्वारा 2001 तक विद्युत विभाग से सम्बन्धित 80 मुकदमों का निस्तारण किया गया है जिनका वर्ष क्रमानुसार विश्लेषण निम्नलिखित है।[1]

तालिका 16

जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा विद्युत विभाग के निस्तारित वादो का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	13
1997	14
1998	16
1999	16
2000	12
2001	11
योग	80

(ii) **दूर संचार संबंधी मुकदमें** : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक दूर संचार विभाग (अब भारत संचार निगम) के 110 वादों का निस्तारण किया गया, जिनका वर्ष क्रमानुसार विश्लेषण निम्नलिखित है।[2]

---

1. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (17)

जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा दूरसंचार विभाग के निस्तारित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	17
1997	19
1998	22
1999	19
2000	18
2001	15
योग	110

(iii) शिक्षा विभाग संबंधी मुकदमें : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक शिक्षा विभाग से संबंधित 33 वादों का निस्तारण किया गया जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[1]

तालिका (18)

जिला फोरम द्वारा शिक्षा विभाग के निस्तारित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	06
1997	06
1998	07
1999	06
2000	05
2001	03
योग	33

(iv) डाक विभाग संबंधी वाद : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक डाक संबंधी 48 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नलिखित है।[2]

---

1. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (19)
जिला फोरम द्वारा डाक विभाग के निस्तारित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	07
1997	08
1998	09
1999	08
2000	10
2001	06
योग	48

(v) **बैंक संबंधी याचिकायें** : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक बैंक संबंधी 27 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नलिखित है।[1]

तालिका (20)
जिला फोरम द्वारा बैंक संबंधी निस्तारित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	04
1997	05
1998	05
1999	04
2000	06
2001	03
योग	27

(vi) **जीवन बीमा से संबंधित वाद** : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक जीवन बीमा से संबंधित 54 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[2]

---

1. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (21)

जिला फोरम द्वारा जीवन बीमा से संबधित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	09
1997	10
1998	11
1999	09
2000	07
2001	08
योग	54

(vii) <u>मोटर दुघर्टना संबंधी वाद</u> : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक मोटर दुर्घटना संबंधी 140 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[1]

तालिका (22)

जिला फोरम द्वारा मोटर दुर्घटना से संबंधित निस्तारित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	22
1997	24
1998	27
1999	23
2000	25
2001	19
योग	140

(viii) <u>स्वास्थ्य विभाग से संबंधित वाद</u> : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक स्वास्थ्य विभाग से संबंधित 23 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[2]

---

1. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (23)

जिला फोरम द्वारा स्वास्थ्य विभाग से संबधित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	03
1997	04
1998	03
1999	02
2000	05
2001	06
योग	23

(ix) **जल संस्थान संबंधी वाद** : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक जल संस्थान से संबंधित 32 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[1]

तालिका (24)

जिला फोरम द्वारा जल संस्थान से संबंधित निस्तारित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	03
1997	03
1998	04
1999	06
2000	09
2001	07
योग	32

(x) **क्रय से संबंधित वाद** : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा 2001 तक क्रय से संबंधित 182 वादों का निस्तारण किया गया है जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[2]

---

1. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

तालिका (25)

जिला फोरम द्वारा क्रय से संबधित वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	30
1997	32
1998	36
1999	31
2000	29
2001	24
योग	182

(xi) <u>अन्य वाद</u> : हमीरपुर जनपद में जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा उक्त वादों के अतिरिक्त अन्य 178 वादों का निस्तारण 1996 से 2001 के बीच किया गया जिनका विश्लेषण वर्ष क्रमानुसार निम्नांकित है।[1]

तालिका (26)

जिला फोरम द्वारा निस्तारित अन्य वादों का विवरण

वर्ष	निस्तारित वाद
1996	34
1997	35
1998	40
1999	33
2000	16
2001	20
योग	178

इस प्रकार हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता के एक साधन के रूप में उपभोक्ता न्यायालयों की प्रगति संतोषजनक कही जा सकती है। उपभोक्ता संरक्षण फोरम के

1. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

द्वारा 24 दिसम्बर को राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस मनाया जाता है जिसमें उपभोक्ताओं को अनेक अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता लाने के लिये गोष्ठियां, सेमिनार एवं उपभोक्ता साहित्य वितरण जैसे कार्यो को करता है। हमीरपुर जैसे बुन्देलखण्ड के पिछड़े क्षेत्र में जिला उपभोक्ता फोरम उपभोक्ताओं के बीच जाग्रति लाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहा है। उपभोक्ता आन्दोलन को गति प्रदान करने में स्वयं सेवी संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन हमीरपुर जनपद में स्वयं सेवी संस्थाओं की संख्या नगण्य है इसलिये उपभोक्ता आन्दोलन को वह गति प्राप्त नहीं हो पा रही है जो होना चाहिये।

(स) पारिवारिक न्यायालयों की भूमिका :

वर्तमान समय में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। पारिवारिक संरचना पर पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के कुप्रभाव से संयुक्त परिवारों का स्थान एकाकी परिवार ले रहे है। इन परिवारों में प्रायः पति–पत्नी के बीच विवाद होते रहते है क्योंकि इनमें संयुक्त परिवारों की भांति गलत फहमियों को दूर करने के लिये बड़े बूढ़े व अनुभवी परिजन नहीं होते।

परिवारों के विखराव को रोकने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने 'उत्तर प्रदेश पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984' बनाया तथा 1995 में उत्तर प्रदेश पारिवारिक न्यायालय नियमावली का निर्माण किया। पारिवारिक न्यायालयों को सहायता देने के लिये परिवार परामर्श केन्द्र भी बनाये गये जो स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा संचालित होते हैं।

हमीरपुर जनपद में पारिवारिक न्यायालय ने 1996 से कार्य शुरू किया। 1996 से 2001 तक की अवधि में इस न्यायालय में 248 वाद आये। जिनमें तलाक और पुर्नस्थापना दोनों से सम्बन्धित मामले थे। इनमें से 160 पारिवारिक वादों के निस्तारण में पारिवारिक न्यायालय सफल रहा निर्णीत वादों का प्रतिशत लगभग 65 प्रतिशत रहा।

पारिवारिक वादों कार्यप्रणाली का विस्तृत अध्ययन निम्नांकित रूप में किया जा सकता है।

(i) कुल निस्तारित वाद :

पारिवारिक न्यायालय में 1996 से 2001 के बीच कुल 248 पारिवारिक वाद आये जिनमें से 160 निर्णीत हुये और 88 वादों का निर्णय नहीं हो पाया। यह तथ्य निम्नांकित तालिका से विस्तृत रूप में स्पष्ट हो जाता है।[1]

तालिका (27)

पारिवारिक न्यायालयों में आये कुल वादों का विवरण

वर्ष	कुल वाद	निर्णीत वाद	अनिर्णीत वाद
1996	31	27	04
1997	44	40	04
1998	35	28	07
1999	54	39	15
2000	33	07	26
2001	51	19	32
योग	248	160	88

(ii) तलाक सम्बन्धी मामले :

हमीरपुर जनपद में पारिवारिक न्यायालय ने वर्ष 1996 से 2001 तक की अवधि के बीच कुल 122 तलाक सम्बन्धी मुकदमों पर विचार किया जिनमें 69 वाद निस्तारित हुये। निम्नांकित तालिका तलाक सम्बन्धी मामलों का वर्ष क्रमानुसार विवरण प्रस्तुत करती है।[2]

तालिका (28)

तलाक सम्बन्धी वादों का विवरण

1. पारिवारिक न्यायालय हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. पारिवारिक न्यायालय हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

वर्ष	तलाक सम्बन्धी दायर वाद	निस्तारित वाद
1996	16	07
1997	20	11
1998	18	09
1999	31	20
2000	14	09
2001	23	13
योग	122	69

(iii) पुर्नस्थापना सम्बन्धी मामले :

हमीरपुर में पारिवारिक न्यायालय द्वारा 1996 से 2001 की अवधि में पुर्नस्थापना सम्बन्धी 126 मामलों पर विचार किया गया जिनमें 91 मामलों को हल करने में न्यायालय को सफलता मिली। जिसका विस्तृत विवरण निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाता है।[1]

तालिका (29)

पुर्नस्थापना सम्बन्धी वादों का विवरण

वर्ष	पुर्नस्थपना सम्बन्धी दायर वाद	निस्तारित वाद
1996	15	10
1997	24	18
1998	17	13
1999	23	17
2000	19	12
2001	28	21
योग	126	91

हमीरपुर जनपद में परिवार परामर्श केन्द्र नहीं है

1. पारिवारिक न्यायालय हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

(द) विधिक साक्षरता शिविर :

कानूनी सहायता कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य लोगों को त्वरित व सस्ता न्याय दिलाना तो है ही साथ ही न्याय को जन–जन तक पहुंचाना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मुख्य विधिक विषयों पर सरल भाषा में पुस्तकें प्रकाशित की जाती है। विधिक साक्षरता शिविरों का आयोजन किया जाता है और वहां इन पुस्तकों को निःशुल्क वितरित किया जाता है। गोष्ठियों और भाषणों के माध्यम से लोगों को उनके अधिकारों के बारे में समझाया जाता है। ये शिविर शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में लगाये जाते हैं।

हमीरपुर जनपद में पहला विधिक साक्षरता शिविर दिनांक 2 अगस्त 1998 को लगाया गया। जिसमें लगभग 2000 व्यक्ति लाभान्वित हुये। तब से 2001 तक 11 विधिक साक्षरता शिविर लगाये जा चुके हैं। जिनमें हमीरपुर मुख्यालय में 03, तहसील परिसर मौदहा में 02, तहसील परिसर राठ में 01, ग्राम कारीमाटी में 01, इण्टर कालेज झलोखर में 01, मण्डी समिति कुरारा में 01, सुमेरपुर में 01 तथा विकास भवन कुछेछा में 01 लगाया गया।

विधिक साक्षरता शिविर में लाभान्वित व्यक्ति :

हमीरपुर में अब तक 11 विधिक साक्षरता शिविर लगाये जा चुके है जिनमें अब तक 14299 व्यक्ति लाभान्वित हो चुके है। जिनका विस्तृत विवरण निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाता है।[1]

तालिका (30)

विधिक साक्षरता शिविर में लाभान्वित व्यक्तियों का विवरण

वर्ष	विधिक साक्षरता शिविरों की संख्या	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या
1998	01	2000
1999	03	1094
2000	04	2605
2001	03	8600
योग	11	14299

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

विधिक साक्षरता शिविर में लाभान्वित व्यक्तियों का श्रेणीवार विश्लेषण :

विधिक साक्षरता शिविरि में केवल पुरूष ही भाग नहीं लेते है बल्कि स्त्रियां और बच्चे भी भाग लेते हैं। यद्यपि स्त्रियों और बच्चों की भागीदारी बहुत कम है। हमीरपुर जनपद में 2001 तक आयोजित 11 शिविरों में श्रेणीवार लाभान्वित व्यक्त्यिों का विश्लेषण निम्नांकित है।

(i) **विधिक साक्षरता शिविरों में भागीदारी** : जनपद हमीरपुर में 2001 तक आयोजित 11 विधिक साक्षरता शिविरों में कुल 9696 पुरूष लाभान्वित हुये जिनका प्रतिशत 67.8 था। वर्ष क्रमानुसार इनका विश्लेषण निम्नांकित रूप से स्पष्ट है।[1]

तालिका (31)

विधिक साक्षरता शिविरों में पुरूषों की भागीदारी

वर्ष	विधिक साक्षरता शिविरों की संख्या	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या	लाभान्वित पुरूष	कुल प्रतिशत
1998	01	2000	1850	
1999	03	1094	996	
2000	04	2605	1800	67.8%
2001	03	8600	5050	
योग	11	14299	9696	

(ii) **विधिक साक्षरता शिविरों में स्त्रियों की भागीदारी** : जनपद हमीरपुर में 2001 तक आयोजित 11 विधिक साक्षरता शिविरों में कुल 1887 स्त्रियां लाभान्वित हुयी जिनका प्रतिशत 13.19 रहा। वर्षानुसार स्त्रियों की भागीदारी निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है।[2]

तालिका (32)

विधिक साक्षरता शिविरों में स्त्रियों की भागीदारी

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर
2. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

वर्ष	विधिक साक्षरता शिविरों की संख्या	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या	लाभान्वित स्त्रियां	कुल प्रतिशत
1998	01	2000	20	
1999	03	1094	57	
2000	04	2605	360	13.19%
2001	03	8600	1450	
योग	11	14299	1887	

(iii) <u>विधिक साक्षरता शिविरों में बच्चों की भागीदारी</u> :

जनपद हमीरपुर में 2001 तक आयोजित 11 विधिक साक्षरता शिविरों में कुल 2716 बच्चे लाभान्वित हुये जिनका प्रतिशत 18.99 रहा। वर्ष क्रमानुसार बच्चों की भागीदारी निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है।[1]

तालिका (33)

<u>विधिक साक्षरता शिविरों में स्त्रियों की भागीदारी</u>

वर्ष	विधिक साक्षरता शिविरों की संख्या	लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या	लाभान्वित बच्चे	कुल प्रतिशत
1998	01	2000	130	
1999	03	1094	41	
2000	04	2605	445	18.99%
2001	03	8600	2100	
योग	11	14299	2716	

1. जिला विधिक सेवा प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर

हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता कार्यक्रमों के साधनों का व्यवहारिक क्रियान्वयन उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है। उक्त विवेचना यह स्पष्ट करती है कि लोक अदालतें कानूनी सहायता के साधन के रूप में सर्वाधिक प्रभावी रही है दूसरी ओर उपभोक्ता फोरम की भूमिका भी उपभोक्ता संरक्षण की दिशा में संतोषजनक कही जा सकती है। पारिवारिक न्यायालय पारिवारिक वादो को सुलझाने में पर्याप्त रूप में सफल रहे है लेकिन विधिक साक्षरता शिविर बहुत कम मात्रा में लगाये गये जो कि हमीरपुर जैसे पिछड़े क्षेत्र के लिये अपर्याप्त है।

अध्याय— 7

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के संबंध में समाज के विविध वर्गो का दृष्टिकोण

(अ) कानूनी सहायता कार्यक्रमों का प्रभाव

(ब) कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विषय में समाज के विविध वर्गो की राय

कानूनी सहायता कार्यक्रमों का उद्भव, भारतीय न्यायिक व्यवस्था के इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम है इनकी लोकप्रियता सफलता एवं उपयोगिता थोड़े समय में ही सिद्ध हो गयी है। एक व्यवस्थित न्यायिक व्यवस्था और उसका ईमानदारी, पूर्ण निष्पक्ष और दवाव रहित क्रियान्वयन किसी भी सभ्य और लोकतान्त्रिक समाज की कसौटी होती है।

न्यायिक व्यवस्था लगभग सभी जगह पदसोपानक्रम में होती है जहां निचले क्रम के न्यायालयों के विरूद्ध अपीलों उच्च न्यायालयों में निर्धारित होती है। अधीनस्थ न्यायपालिका का भी सभी जगह अस्तित्व होता है, जहां छोटे–बड़े महत्वपूर्ण और कम महत्वपूर्ण मुकदमों का निपटारा होता है।

भारत में अधीनस्थ न्यायपालिका पर बहुत अधिक भार है। क्योंकि न्यायिक प्रक्रिया जटिल है और मुकदमों का निपटारा इतनी धीमी गति से होता है जिससे कि न्याय लोगों की पहुंच से दूर हो जाता है, छोटे–छोटे मुकदमों में भी बहुत समय लगता है जिससे लाखों लोगों के हृदय में व्यवस्था के प्रति अविश्वास पैदा होता है और इससे समाज में शान्ति और सौहार्द को खतरा पहुँचता है।

अनेक कानूनी सुधारक, समाजसेवी और न्यायधीश तथा अधिवक्ताओं ने इस समस्या पर विचार किया और न्यायिक व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता का समावेश करने की कोशिश की जिसका तात्पर्य है कि समाज के अनेक महत्वपूर्ण समूह न्यायिक व्यवस्था से जोड़े जाय जो उन लोगों की ओर से, जो अनेक कारणों से न्याय पालिका का दरवाजा नहीं खटखटा पाते है, कानूनी लड़ाई लड़े और इस प्रकार जनता के अधिकारों की सुरक्षा करने के लिये प्रयास करें।[1]

इन समस्याओं के समाधान के लिये, समाज में समरसता लाने के लिये, लोगों को कानूनी सहायता देने के लिये और समाज में विधिक साक्षरता के प्रसार के लिये अनेक कानूनी

1. ए0 के0 जौहरी : ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एण्ड सोशल ट्रान्सफारमेशन, दि यू0 पी0 जरनल आफ पालिटिकल सांइस, जनवरी–जून 1989 पृ0 26

सहायता कार्यक्रम लागू किये गये जैसे लोक अदालत, उपभोक्ता संरक्षण फोरम, पारिवारिक न्यायालय विधिक साक्षरता शिविरों का आयोजन एवं न्याय पंचायतें।

ये कार्यक्रम थोड़े समय में ही अत्यन्त लोकप्रिय हुये है और अपने निर्धारित उद्देश्य को पाने की दिशा में सफलता पूर्वक अग्रसर हैं।

इन कार्यक्रमों के बारे में समाज के विभिन्न वर्गो का क्या दृष्टिकोण है, यह जानना कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विकास एवं सफलता के लिये आवश्यक है। इसके जानने के दो तरीके है–

प्रथम : इन कार्यक्रमों से सम्बन्धित वर्गो के व्यक्तियों पर इनके प्रभाव का अध्ययन किया जाय।

द्वितीय : समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों की इन कार्यक्रमों के विषय में राय ली जाय ताकि इन कार्यक्रमों की कमियों को दूर किया जा सके एवं उनमें सुधार किया जा सके।

इस उद्देश्य से दो **दृष्टिकोण मापन** स्केल बनाये गये। जिसमें प्रत्येक में 35 कथन है जो कानूनी सहायता कार्यक्रमों के व्यापक क्षेत्र से सम्बन्धित है। ये कथन विभिन्न समाचार पत्रों, संपादकीय, पत्रिकाओं, लेखों और पुस्तकों का अध्ययन कर बनाये गये।

जिन व्यक्तियों का सर्वेक्षण किया गया है वे समाज के विभिन्न वर्गो न्यायिक प्रशासन अधिवक्ता, बुद्धिजीवी एवं पत्रकार तथा इन कार्यक्रमों से प्रभावित वर्गो से सम्बद्ध है।

विभिन्न वर्गो से सम्बन्धित उत्तर दाताओं को विभिन्न कथनों के सम्बन्ध में सहमति या असहमति के आधार पर उत्तर देना था। इसके लिये **5 विकल्प** है–**पूर्ण सहमत, सहमत, तटस्थ, असहमत,** तथा **पूर्ण असहमत**। उत्तर दाताओं को निम्नांकित आधार पर अंक आवंटित किये गये।

विकल्प	सकारात्मक कथन के आधार पर अंक	नकारात्मक कथन के आधार पर अंक
पूर्ण सहमत	5	1
सहमत	4	2
तटस्थ	3	3
असहमत	2	4
पूर्ण असहमत	1	5

कानूनी सहायता कार्यक्रमों का प्रभाव :

जिन समूहों को कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रभाव के अध्ययन के लिये चयनित किया गया था उसके उपसमूह थे न्यायाधीश, अधिवक्ता, स्थानीय प्रशासन और न्यायिक प्रशासन एवं वादी। दृष्टिकोण मापन स्केल नं0 1 इस सर्वेक्षण के लिये तैयार किया गया।

उत्तरदाताओं को इस स्केल में निम्नांकित निर्देश दिये गये थे–

निर्देश :

"प्रस्तुत स्केल कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति आपके दृष्टिकोण का मापन करने के लिये है। प्रत्येक कथन को सावधानी पूर्वक पढ़िये। सामने दिये गये पांच विकल्पों में से किसी एक पर सही (✓) का निशान अपने दृष्टिकोण के अनुसार लगाइये। किसी भी कथन को छोड़े नही।"

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य से न्यायाधीश/न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता, स्थानीय प्रशासन के कर्मचारी, न्यायिक प्रशासन के कर्मचारी और वादी। उप समूहों के व्यक्तियों का चयन हमीरपुर जिले की तीनों तहसीलें हमीरपुर, मौदहा, एवं राठ से किया गया।

निम्नांकित तालिका विभिन्न उपसमूहों के व्यक्तियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है।

तालिका (अ)

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति दृष्टिकोण

विभिन्न उपसमूहों (स्केल नं.1) के उत्तर दाताओं की तहसीलों के अनुसार संख्या

			विभिन्न समूहों के उत्तर दाताओं की संख्या		
हमीरपुर जनपद की तहसील	न्यायाधीश / न्यायिक अधिकारी	अधिवक्ता	स्थानीय प्रशासन के कर्मचारी	न्यायिक प्रशासन के कर्मचारी	वादी
हमीरपुर	9	50	25	20	60
मौदहा	6	30	15	15	20
राठ	5	20	10	15	20
कुल योग	20	100	50	50	100

स्केल नं0 – 1 में 35 कथन हैं जिसमें 18 सकारात्मक कथन है और 17 नकारात्मक कथन है। प्रत्येक कथनानुसार के मध्यमान के आधार पर स्केल नं0 – 1 का विश्लेषण निम्नांकित है।

कथन नं.–1 कानूनी सहायता कार्यक्रमों से कानूनी साक्षरता बढ़ी है।

अधिकांश न्यायाधीश एव न्यायिक अधिकारी एवं वकील इस कथन से पूर्ण सहमत है। स्थानीय प्रशासन के व्यक्ति तटस्थ है, न्यायिक प्रशासन के व्यक्ति सहमत है जबकि वादी कुछ सहमत है तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–2 सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पाने में कानूनी सहायता कार्यक्रम सहायक है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण सहमत है तथा वकील, स्थानीय प्रशासन एवं न्यायिक प्रशासन के व्यक्ति सहमत है जबकि वादी तटस्थ है।

कथन नं.–3 कानूनी सहायता कार्यक्रम 'दरवाजे पर न्याय' के विचार को स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

अधिकांश नयायाधीश एवं न्यायाधिकारी तथा अधिवक्ता सहमत हैं जबकि न्यायिक प्रशासन स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग तथा वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–4 कानूनी सहायता कार्यक्रम मात्र दिखावा है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण असहमत, अधिवक्ता कुछ असहमत तथा कुछ सहमत तथा स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ और वादी एवं न्यायिक प्रशासन के लोग असहमत हैं।

कथन नं.–5 कानूनी सहायता कार्यक्रम में न्यायिक सेवा के लोग पूरी रूचि नहीं लेते हैं।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण असहमत, अधिवक्ता तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग असहमत, स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ तथा वादी कुछ सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–6 लोक अदालतें विभिन्न अदालतों में मुकदमों के बोझ को कम करने में सहायक रही हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग पूर्ण सहमत है। स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग सहमत तथा वादी तटस्थ है।

कथन नं.–7 लोक अदालतों द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया सामान्य न्यायिक प्रक्रिया की तुलना में अधिक सुविधाजनक है।

उत्तर दाताओं का बहुमत इस कथन के पक्ष में है जिसमें न्यायाधीश पूर्ण सहमत, अधिवक्ता, न्यायिक प्रशासन के लोग तथा वादी सहमत है। लेकिन स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ है।

कथन नं.–8 लोक अदालतों में मैं भाग लेकर आत्म संतुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता सहमत है जबकि स्थानीय प्रशासन न्यायिक प्रशासन के लोग तथा वादी तटस्थ है।

कथन नं.–9 लोक अदालत एक असुविधाजनक कार्य है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं न्यायिक अधिकारी पूर्ण असहमत, न्यायिक प्रशासन के जुड़े लोग, वादी एवं स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ है जबकि कुछ अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत है।

कथन नं. 10 लोक अदालतों का आयोजन केवल उच्चाधिकारियों एवं न्यायालयों के आदेश का अनुपालन मात्र है।

अधिकांश न्यायाधीश असहमत, स्थानीय तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग सहमत एवं वादी तटस्थ हैं जबकि कुछ अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं. 11 अवकाश के दिन लोक अदालत का लगना एक अवकाश दिवस की हानि है।

अधिकांश न्यायाधीश अधिवक्ता स्थानीय प्रशासक के लोग तथा न्यायिक प्रशासन के लोग सहमत है जबकि वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–12 लोक अदालतों में मुकदमें जल्दी हल हो जाते हैं इससे वकीलों की आय प्रभावित होती है।

कुछ न्यायाधीश सहमत, कुछ न्यायाधीश असहमत, अधिवक्ता तथा न्यायिक प्रशासन एवं स्थानीय प्रशासन के लोग तथा वादी तटस्थ है।

कथन नं.–13 लोक अदालतें गरीबों और दलितों को सस्ता न्याय सुलभ कराती है।

अधिकांश न्यायाधीश सहमत, स्थानीय प्रशासन एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ तथा वाद एवं अधिवक्ता कुछ सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–14 लोक अदालतों में मुकदमें सुलझाने में वकीलों का रवैया असहयोग पूर्ण रहा है।

वादी अधिकांश सहमत, न्यायाधीश, अधिवक्ता असहमत एवं स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ तथा न्यायिक प्रशासन के लोग सहमत हैं।

कथन नं.–15 लोक अदालतों में प्रस्तुत मुकदमों को सुलझाने में वकील पूरा सहयोग करते हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता सहमत, वादी असहमत तथा स्थानीय एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–16 वकील पर्दे के पीछे वादियों से लोक अदालतों के मुकदमें सुलझाने में लेन–देन करते हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ, अधिवक्ता असहमत तथा वादी सहमत हैं जबकि न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग कुछ सहमत तथा कुछ असहमत है।

कथन नं.–17 लोक अदालतों के आयोजन में परिसर में कानून व व्यवस्था बनाये रखना स्थानीय प्रशासन पर एक अतिरिक्त भार है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं स्थानीय प्रशासन के लोग सहमत तथा न्यायिक प्रशासन के लोग एवं वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–18 जिस परिसर में लोक अदालतें लगायी जाती है उसमें कानून व व्यवस्था बनाये रखने में कोई असुविधा नहीं होती है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता सहमत तथा स्थानीय प्रशासन के लोग असहमत, न्यायिक प्रशासन के लोग तथा वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–19 लोक अदालतें केवल जिला व तहसील न्यायालयों के परिसर में ही लगायी जानी चाहिये।

अधिकांश न्यायाधीश, स्थानीय प्रशासन के लोग एवं न्यायिक प्रशासन के लोग सहमत तथा वादी असहमत हैं जबकि कुछ अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–20 लोक अदालतों का पिछड़े व दुर्गम क्षेत्रों में लगाया जाना गरीब व दलितों के हित में है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता तथा वादी सहमत हैं जबकि न्यायिक एवं स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–21 लोक अदालतों ने न्यायिक प्रशासन के समक्ष अनेक समस्यायें पैदा की हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता, स्थानीय तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग असहमत जबकि कुछ वादी सहमत तथा कुछ वादी असहमत हैं।

कथन नं.–22 लोक अदालतों का आयोजन समय व धन का अपव्यय है।

अधिकांशतः न्यायाधीश व न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग असहमत, अधिवक्ता एवं स्थानीय प्रशासन के लोग सहमत तथा वादी पूर्ण असहमत हैं।

कथन नं.–23 यदि लोक अदालतें पिछड़े क्षेत्रों में लगायी जाती हैं तो प्रशासन के लिये कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये समस्या पैदा होगी।

अधिकांशतः न्यायाधीश एवं न्यायाधिकारी, स्थानीय प्रशासन के लोग सहमत, वादी असहमत तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ है जबकि कुछ अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–24 गरीबों को लोक अदालतों में कानूनी सहायता व सलाह देना एक जटिल कार्य है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता सहमत, न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग असहमत तथा स्थानीय प्रशासन के लोग एवं वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–25 लोक अदालतों में कानूनी साक्षरता सम्बन्धी साहित्य का प्रबन्ध एक कठिन और मंहगा कार्य है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग सहमत, स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ तथा कुछ वादी सहमत एवं कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–26 उपभोक्ता फोरम उपभोक्ताओं के हित की रक्षा करने में सफल रहे हैं।

न्यायाधीश एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग सहमत, स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ हैं अधिकांशतः वादी सहमत है जबकि कुछ अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–27 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम से उपभोक्ता फोरम सशक्त हुये है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता पूर्ण सहमत हैं, स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ जबकि वादी तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग सहमत हैं।

कथन नं.–28 उपभोक्ता फोरम में न्याय जल्दी प्राप्त होता है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग सहमत तथा वादी असहमत हैं जबकि स्थानीय प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–29 उपभोक्ता न्यायालयों में उपभोक्ता और उत्पादक दोनों ब्लैक मेल होते हैं।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण असहमत, अधिवक्ता असहमत, तथा न्यायिक तथा स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ हैं जबकि कुछ वादी सहमत एवं कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–30. उपभोक्ता फोरम भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है।

न्यायाधीश पूर्ण असहमत, अधिवक्ता सहमत, न्यायिक एवं स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ हैं जबकि कुछ वादी सहमत तथा कुछ वादी असहमत हैं।

कथन नं.–31 पारिवारिक न्यायालयों का कानूनी स्तर उन्हें प्रभावी बनाने में सहायक रहा है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता सहमत, स्थानीय प्रशासन एवं न्यायिक प्रशासन के लोग तथा वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–32 पारिवारिक न्यायालय अपने उद्‌देश्य की पूर्ति में विफल रहे है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण असहमत, अधिवक्ता असहमत, स्थानीय एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग तथा वादी तटस्थ हैं।

कथन नं.–33 परिवार परामर्श केन्द्र पारिवारिक न्यायालयों को सहायता देने में सहायक हैं।

न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग सहमत हैं तथा स्थानीय प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ हैं जबकि कुछ वादी सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–34 'विधिक साक्षरता शिविर' कानून और न्याय की मूल भावना को जनता तक पहुंचाने में विफल रहे हैं।

अधिकांश न्यायाधीश असहमत, अधिवक्ता एवं वादी सहमत हैं जबकि स्थानीय प्रशासन एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ हैं।

कथन नं. 35 न्याय पंचायतें लोकतन्त्र को सुदृढ़ करने में सहायक हैं।

अधिकांश न्यायाधीश सहमत, स्थानीय एवं न्यायिक प्रशासन से जुड़े लोग तटस्थ हैं जबकि कुछ वादी तथा अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

उपर्युक्त दृष्टिकोण मापन स्केल से सम्बन्धित उपसमूहों के व्यक्तियों के विचारों का विश्लेषण करता है। इस उपसमूह में न्यायाधीश और अधिवक्ता एक अच्छा शैक्षिक आधार रखते हैं उनके सोचने का तरीका अन्य सम्बन्धित वर्गो से अलग है वे उन उद्‌देश्यों और लक्ष्यों से भली भांति परिचित हैं जिनके आधार पर कानूनी सहायता कार्यक्रमों को लागू किया गया। वे महसूस करते है कि इन कार्यक्रमों से न केवल विभिन्न न्यायालयों में मुकदमों का बोझ कम हुआ है बल्कि उन्हें अपने विवादों को सुलझाने के लिये एक ऐसा मंच मिला है जिसमें वे स्वस्थ वातावरण में अपने विवादों को सुलझा सकते हैं। वे इन कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने में सन्तोष एवं प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

कुछ नये अधिवक्ता यह महसूस करते है कि मुकदमों का शीघ्रता से निस्तारण उनके आय के अवसरों को प्रभावित करता है, लेकिन अधिकतर अधिवक्ता इससे अलग मत रखते हैं वे मानते है कि मुकदमों के शीघ्र निस्तारण से कानूनी व्यवसाय से जुड़े वकीलों की छवि अच्छी बनती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जहां न्यायाधीश एवं अधिवक्ताओं का दृष्टिकोण कानूनी सहायता के प्रभाव की दृष्टि से इस स्केल के अन्य उपसमूहों की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

निम्नांकित तालिका स्केल–1 के विभिन्न मध्यमान के आधार पर इस स्केल के विभिन्न उपसमूहों के दृष्टिकोण को प्रदर्शित करती है।

तालिका (ब)

विभिन्न समूहों (स्केल नं. 1) का मध्यमान

उप समूह	औसत या मध्यमान
न्यायाधीश	76.58
अधिवक्ता	78.11
स्थानीय प्रशासन	60.74
न्यायिक प्रशासन	70.63
वादी	64.89
योग	70.10

पूरे समूह का मध्यमान 70.19 है।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों में न्यायिक कर्मचारियों की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है लेकिन सर्वेक्षण यह प्रदर्शित करता है कि उनके लिये यह केवल औपचारिक कार्य है। वे कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रोत्साहन के लिये अधिक चिन्तित नहीं है। वे अपने को केवल न्यायिक प्रक्रिया का एक भाग समझते है और अपने उच्चाधिकारों के आदेशों का पालन करना कर्तव्य समझते हैं। कुछ न्यायिक कर्मचारी कानूनी सहायता कार्यक्रमों विशेषकर लोक अदालत व विधिक साक्षरता शिविरों को अतिरिक्त बोझ समझते है। लेकिन कुछ लोगों को इन कार्यक्रमों में अपने अवकाश दिवस की हानि अखरती है, कुछ लोगों को इन कार्यक्रमों से सम्बन्धित अभिलेख एकत्र करने में कठिनाई होती है। लेकिन न्यायिक कर्मचारियों का बहुमत महसूस करता है कि लोक अदालतों, उपभोक्ता फोरमों तथा पारिवारिक न्यायालयों आदि से न्यायालयों में मुकदमों का बोझ कम हुआ है और एक बड़ी मात्रा में मुकदमों का निस्तारण जल्दी हुआ है। इस प्रकार न्यायिक कर्मचारियों का कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति झुकाव इस उपसमूह में तीसरे स्थान पर है जिसे निम्नांकित तालिका स्पष्ट करती है।

तालिका (स)

विभिन्न उपसमूहों (स्केल नं. 1) का कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति झुकाव

उपसमूह	कानूनी सहायता कार्यक्रम के प्रति झुकाव का प्रतिशत
1. न्यायाधीश / न्यायिक अधिकारी	77
2. अधिवक्ता	78
3. स्थानीय प्रशासन	60
4. न्यायिक प्रशासन	71
5. वादी	65
योग	70

इन सभी का मध्यमान 70 है।

उपर्युक्त तालिका प्रदर्शित करती है कि कानूनी सहायता कार्यक्रमों का प्रभाव उक्त स्केल के उपसमूहों पर सकारात्मक पड़ा है। अधिवक्ताओं पर यह प्रभाव सर्वाधिक है उसके बाद न्यायाधीशों और न्यायिक कर्मचारियों का स्थान है। वादियों पर इनका प्रभाव सकारात्मक है लेकिन बहुत उत्साह जनक नहीं है जो चिन्तनीय है लेकिन वादी इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन, हित की दृष्टि से करते हैं जो इनसे लाभान्वित होते हैं वे सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं जो लाभान्वित नहीं होते वे नकारात्मक या तटस्थ दृष्टिकोण रखते हैं। वादियों का इन कार्यक्रमों की ओर झुकाव का प्रतिशत केवल 65% है।

स्थानीय प्रशासन के कर्मचारी मुख्यतयाः इन कानूनी सहायता कार्यक्रमों के आयोजन स्थल पर समस्या को देखते हैं। एक नागरिक के रूप में जब वे देखते हैं कि लोगों

के विवादों का हल स्वस्थ वातावरण में तेजी से हो रहा है तो इन कार्यक्रमों के प्रति उनका झुकाव सकारात्मक होना स्वाभाविक है।

<u>कानूनी सहायता कार्यक्रमों के सम्बन्ध में राय</u> :

कानूनी सहायता कार्यक्रम के माध्यम से न्यायिक क्षेत्र में एक नई चेतना आयी है और लोकहित वाद की दृष्टि से लोक अदालत एवं उपभोक्ता न्यायालय एक अभिनव प्रयोग है। ये विवादित पक्षों के मध्य आपसी समझौता कराने के सिद्धान्त पर आधारित है। कानूनी सहायता कार्यक्रमों में न केवल कानूनी व्यवसाय के लोग बल्कि समाज के अन्य वर्ग जैसे पत्रकार, बुद्धिजीवी, न्यायिक अधिकारियों के निर्देशन में विवादों को हल कराने में एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने में सक्रिय भागीदारी करते है।

प्रस्तुत अध्ययन जो कि हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता कार्यक्रमों की भूमिका के अध्ययन से सम्बन्धित है, के अन्तर्गत समाज के विभिन्न वर्गो की इन कार्यक्रमों के बारे में राय जानने के लिये दृष्टिकोण मापन स्केल नं. 2 निर्मित किया गया जो विभिन्न कथनों के रूप में है। जिसमें कानूनी सहायता कार्यक्रम की कार्यप्रणाली से सम्बन्धित 35 कथन है। ये कथन विभिन्न शोध पत्रिकाओं, लेखों, किताबों और व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर बनाये गये। इस स्केल में ग्यारह (11) कथन नकारात्मक और शेष सकारात्मक हैं। नकारात्मक कथन 4, 5, 11, 12, 14, 15, 16, 21, 22, 23 एवं 25 है।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विषय में राय जानने के लिये जो समूह चयनित किया गया है उसके 5 प्रमुख उप समूह हैं– न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस (पत्रकार), प्रशासन एवं सामान्य जनता। सर्वेक्षण के लिये चयनित व्यक्ति को सहमति और असहमति के रूप में अपनी राय व्यक्त करनी है उसके सामने 5 विकल्प दिये गये हैं– पूर्ण सहमत, सहमत, तटस्थ, असहमत और पूर्ण असहमत। उत्तरदाताओं को अपने सकारात्मक एवं नकारात्मक कथन के आधार पर वही अंक आंवटित किये गये है जो स्केल नं. 1 में किये गये थे।

उत्तरदाताओं को निम्नांकित निर्देश दिया गया था–

निर्देश :

प्रस्तुत स्केल कानून सहायता कार्यक्रमों के प्रति आपकी राय के मापन के उद्देश्य से निर्मित है। प्रत्येक कथन को सावधानी से पढ़िये और सामने दिये गये पांच विकल्पों में से किसी एक पर सही (✓) का निशान अपने विवेक के अनुसार लगाइये। किसी भी कथन को छोड़ें नहीं।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में राय के लिये विभिन्न उपसमूहों के उत्तरदाताओं को विवरण निम्नांकित है।

तालिका (द)

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विषय में राय (स्केल –2)

विभिन्न तहसीलों में विभिन्न उपसमूहों के उत्तरदाताओं का विवरण

तहसील	न्यायाधीश/ न्यायिक अधि0	अधिवक्ता	प्रेस से संबंधित व्यक्ति	प्रशासन से संबंधितव्यक्ति	सामान्य जनता
हमीरपुर	08	45	10	09	30
मौदहा	07	35	06	07	10
राठ	05	20	04	04	10
योग	20	100	20	20	50

स्केल नं. 2 में प्रत्येक कथनानुसार के मध्यमान के अनुसार विश्लेषण निम्नांकित है।

कथन नं.–1 कानूनी सहायता कार्यक्रमों में लोगों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना बड़ी है।

अधिकतर न्यायाधीश एवं अधिवक्ता पूर्ण सहमत तथा प्रेस के लोग एवं सामान्य जनता सहमत है जबकि प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–2 कानूनी सहायता से गरीबों को न्याय प्राप्त करने में सुविधा हुयी है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस के लोग, सामान्य जनता तथा प्रशासन सभी सहमत हैं।

कथन नं.–3 कानूनी सहायता जनतन्त्र की भावना के अनुरूप है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण सहमत तथा अधिवक्ता, प्रेस, सामान्य जनता एवं प्रशासन के लोग सहमत हैं।

कथन नं.–4 कानूनी सहायता कार्यक्रम अभी विश्वसनीयता प्राप्त नहीं कर पाये हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता असहमत तथा प्रेस एवं सामान्य जनता के लोग सहमत हैं जबकि प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–5 अधिवक्तागण कानूनी सहायता कार्यक्रमों को अपने व्यवसाय के हित में नहीं मानते हैं।

अधिकतर न्यायाधीश एवं अधिवक्ता असहमत तथा प्रेस एवं प्रशासन के लोग सहमत हैं जबकि सामान्य जनता के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–6 लोक अदालतें विवादों को सौहार्दपूर्ण तरीके से सुलझाने में सहायक हैं।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस तथा सामान्य जनता सहमत हैं जबकि प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–7 लोक अदालत वादियों का समय और धन बचाती है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस तथा प्रशासन के लोग सहमत हैं जबकि सामान्य जनता तटस्थ है।

कथन नं.–8 लोक अदालतें त्वरित न्याय दिलाने का एक प्रभावी साधन है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं प्रेस के लोग सहमत हैं जबकि सामान्य जनता एवं प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–9 लोक अदालतों ने सामाजिक तनावों को कम करने में सफल भूमिका निभाई है।

अधिकतर न्यायाधीश सहमत तथा अधिवक्ता, प्रेस एवं सामान्य जनता असहमत हैं जबकि प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–10 मोटर दुर्घटना सम्बन्धी विवादों को सुलझाने में लोक अदालतें अधिक सफल रही हैं।

अधिकतर न्यायाधीश एवं अधिवक्ता पूर्ण सहमत हैं तथा प्रशासन एवं सामान्य जनता के व्यक्ति तटस्थ हैं जबकि पत्रकार सहमत हैं।

कथन नं.–11 कनिष्ठ वकील लोक अदालतों में रूचि नहीं लेते हैं।

अधिकांश न्यायाधीश, प्रशासन के लोग तथा सामान्य जनता तटस्थ है पत्रकार सहमत हैं लेकिन अधिवक्ता असहमत हैं।

कथन नं.–12 लोक अदालतें एक ड्रामे या औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं हैं।

अधिकतर न्यायाधीश पूर्ण असहमत, प्रेस के लोग असहमत तथा प्रशासन तटस्थ है जबकि अधिवक्ता एवं सामान्य जनता के व्यक्ति कुछ सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–13 लोक अदालतें राजस्व व हल्के आपराधिक मामलों को सुलझाने में अधिक सफल रही हैं।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता तथा प्रेस से जुड़े लोग सहमत हैं जबकि प्रशासन तथा सामान्य जनता तटस्थ है।

कथन नं.–14 लोक अदालतें गंभीर प्रकृति के विवादों को निपटाने में सफल नही रहीं हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं प्रेस सहमत, अधिवक्ता पूर्ण सहमत है जबकि प्रशासन तथा सामान्य जनता तटस्थ है।

कथन नं.–15 लोक अदालतों की मुख्य दुर्बलता सुदृढ़ कानूनी आधार का अभाव है।

अधिकतर न्यायाधीश पूर्ण असहमत, अधिवक्ता एवं प्रेस (पत्रकार) असहमत तथा प्रशासन के व्यक्ति तटस्थ है जबकि सामान्य जनता कुछ सहमत तथा कुछ असहमत है।

कथन नं.–16 लोक अदालतों में सुलह कर्ताओं के चयन का तरीका दोषपूर्ण है।

अधिकतर न्यायाधीश असहमत, अधिवक्ता एवं प्रेस के लोग सहमत हैं जबकि प्रशासन एवं सामान्य जनता के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–17 लोक अदालतें सामाजिक न्याय प्राप्त करने का एक माध्यम है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं न्यायाधिकारी सहमत, अधिवक्ता एवं पत्रकार असहमत हैं जबकि प्रशासन के व्यक्ति एवं सामान्य जनता तटस्थ है।

कथन नं.–18 लोक अदालत कानूनी साक्षरता को प्रोत्साहित करने का एक मंच है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण सहमत, अधिवक्ता, प्रेस एवं सामान्य जनता सहमत है जबकि प्रशासन के लोग तटस्थ हैं।

कथन नं.–19 लोक अदालतों ने गरीबों और दलितों में न्याय प्राप्त करने की एक प्रभावी चेतना विकसित की है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं सामान्य जनता सहमत है, प्रेस असहमत है जबकि प्रशासन तटस्थ है।

कथन नं.–20 लोक अदालत कम से कम माह में एक बार अवश्य लगनी चाहिये।

अधिकतर न्यायाधीश, अधिवक्ता प्रेस तथा सामान्य जनता सहमत है जबकि प्रशासन तटस्थ है।

कथन नं.–21 सरकार की लोक अदालतों को प्रभावी बनाने में अधिक रूचि नहीं है।

अधिकांश नयायाधीश एवं अधिवक्ता असहमत, प्रेस सहमत तथा प्रशासन तटस्थ है जबकि सामान्य जनता कुछ सहमत तथा कुछ असहमत है।

कथन नं.–22 अधिकतर व्यक्ति लोक अदालतों से परिचित नहीं है।

अधिकतर न्यायाधीश, अधिवक्ता, पत्रकार एवं सामान्य जनता के लोग सहमत हैं जबकि प्रशासन के व्यक्ति तटस्थ हैं।

कथन नं.–23 लोक अदालतों में प्रेषित मुकदमों की संख्या अक्सर गलत होती है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण असहमत, पत्रकार एवं सामान्य जनता सहमत तथा प्रशासन के व्यक्ति तटस्थ है। जबकि कुछ अधिवक्ता सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–24 प्रेस ने लोक अदालतों को प्रोत्साहित करने में सकारात्मक भूमिका निभाई है।

प्रेस पूर्ण सहमत तथा अधिकांश न्यायाधीश एवं न्यायाधिकारी, अधिवक्ता, प्रशासन तथा सामान्य जनता सहमत है।

कथन नं.–25 लोक अदालत के परिसर में कानून व व्यवस्था को बनाये रखना स्थानीय प्रशासन के लिये एक चुनौती है।

अधिकांश न्यायाधीश असहमत, अधिवक्ता, प्रेस एवं प्रशासन सहमत है जबकि सामान्य जनता तटस्थ है।

कथन नं.–26 उपभोक्ता फोरम लोगों को त्वरित न्याय देने में सफल रहा है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस, प्रशासन तथा सामान्य जनता सहमत है।

कथन नं.–27 उपभोक्ता न्यायालयों की प्रक्रिया खर्चीली नहीं है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस तथा सामान्य जनता सहमत है जबकि प्रशासन तटस्थ है।

कथन नं.–28 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम से उपभोक्ताओं में अपने अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी है।

अधिकांश न्यायाधीश पूर्ण सहमत, अधिवक्ता, प्रेस एवं सामान्य जनता सहमत है जबकि प्रशासन तटस्थ है।

कथन नं.–29 उपभोक्ता अदालतों में वकीलों का रवैया सहयोगात्मक रहता है।

अधिकांश न्यायाधीश एवं अधिवक्ता पूर्ण सहमत, प्रेस एवं सामान्य जनता सहमत है जबकि प्रशासन तटस्थ है।

कथन नं.–30 उपभोक्ता अदालतें न्यायालयों में लम्बित मुकदमों का बोझ कम करने में सहायक रही हैं।

अधिकांश न्यायाधीश एवं सामान्य जनता सहमत, प्रेस असहमत तथा प्रशासन तटस्थ है जबकि अधिवक्ता कुछ सहमत तथा कुछ असहमत हैं।

कथन नं.–31 पारिवारिक न्यायालय विवाह संस्था के संरक्षण में सहायक हैं।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं पत्रकार पूर्ण सहमत जबकि प्रशासन एवं सामान्य जनता तटस्थ है।

कथन नं.–32 पारिवारिक न्यायालयों में वास्तविक रूप से सुलह समझौते के आधार पर पारिवारिक विवाद हल किये जाते है।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं प्रेस सहमत तथा प्रशासन तटस्थ है जबकि सामान्य जनता कुछ सहमत तथा कुछ असहमत है।

कथन नं.–33 परिवार परामर्श केन्द्र पारिवारिक विवादों के हल का प्रभावी साधन हैं।

अधिकांश न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस एवं सामान्य जनता सहमत जबकि प्रशासन तटस्थ है।

कथन नं.–34 विधिक साक्षरता शिविर जनता में कानूनी चेतना जगाने में सहायक हैं।

अधिकतर न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं प्रेस पूर्ण सहमत तथा प्रशासन एवं सामान्य जनता सहमत है।

कथन नं.–35 न्याय पंचायतें स्थानीय स्तर पर झगड़ों को सुलझाने में सहायक रही हैं।

अधिकांश न्यायाधीश सहमत, अधिवक्ता प्रेस एवं सामान्य जनता असहमत जबकि प्रशासन तटस्थ है।

उपर्युक्त विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति न्यायाधीश/न्यायिक अधिकारियों की राय सकारात्मक है। विशेष रूप से लोक अदालतों की भूमिका की यह वर्ग सराहना करते हैं, दूसरा स्थान उपभोक्ता फोरम को देते है ये दोनों वर्ग कानूनी सहायता कार्यक्रमों से उपसमूह के अन्य वर्गो की तुलना में प्रत्यक्षतः और निकटता से सम्बन्धित है। ये दोनों वर्ग महसूस करते हैं कि लोक अदालतों ने 'द्वार पर न्याय' प्रदान करने

की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोक अदालतों के द्वारा वादियों का न केवल समय और धन बचा है बल्कि एक स्वस्थ वातावरण बना है और त्वरित न्याय प्राप्त हुआ है। लोक अदालतों में विविध प्रकार के मुकदमें हल हुये हैं जिनमें एक बड़ी संख्या मोटर दुर्घटना प्रतिकर वादों की है इसके अलावा राजस्व, हल्के आपराधिक मामले भी इसमें हल किये गये हैं। लोक अदालतों की सफलता में अधिवक्ता बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है यह तथ्य इस सर्वे से पूरी तरह स्पष्ट होता है।

इस उपसमूह की राय का औसत या मध्यमान सकारात्मक है जो निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है।

तालिका (य)

कानूनी सहायता कार्यक्रम (समाज के विभिन्न वर्गो की राय)

उपसमूह	औसत या मध्यमान
न्यायाधीश / न्यायिक अधिकारी	84.69
अधिवक्ता	70.74
प्रेस (पत्रकार)	59.57
प्रशासन से जुड़े व्यक्ति	61.22
सामान्य जनता	67.38
कुल योग (औसत)	68.72

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में राय व्यक्त करने वाले पूरे समूह का औसत 68.72 है।

प्रेस से सम्बन्धित व्यक्ति समाज के जागरूक व्यक्ति होते है। इस समूह के सदस्य कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण तो रखते है साथ ही इन कार्यक्रमों की कमियों पर भी ध्यान आकृष्ट कराते हैं। वे महसूस करते है कि दुर्बल व कमजोर वर्गो में इन कार्यक्रमों की उपयोगिता के बारे में पर्याप्त रूप से जानकारी नहीं है। ये कार्यक्रम कागजी खाना पूरी से निकलकर दूरवर्ती क्षेत्रों में रहने वाली जनता के मन में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सके। इसके लिये सरकार और समाज के जागरूक व्यक्तियों को और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। कुछ पत्रकार यह मानते है कि न्यायपालिका की रूचि मुकदमों के बोझ को कम करने में अधिक है कार्यक्रमों को जनता तक पहुंचाने में कम। ये महसूस करते है कि कानूनी साक्षरता के प्रसार के लिये और अधिक गम्भीरता से प्रयास करने चाहिये तभी इन कार्यक्रमों की सार्थकता सिद्ध होगी तभी संविधान के अनुच्छेद 39 (क) में विहित लक्ष्य को पाना संभव होगा।

निम्नांकित तालिका कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति समाज के प्रमुख वर्गो की राय के प्रतिशत को प्रदर्शित करती है।

उपसमूह	राय का प्रतिशत
न्यायाधीश / न्यायिक अधिकारी	84%
अधिवक्ता	71%
प्रेस (पत्रकार)	67%
प्रशासन	60%
सामान्य जनता	61%
योग	69%

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में पूरे समूह की राय का प्रतिशत 69 है। जो यह प्रदर्शित करता है कि कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में पूरे समूह के उपसमूहों की राय सकारात्मक है। उपरोक्त तालिका यह भी प्रदर्शित करती है कि प्रशासन के लोग अन्य उपसमूहों की तुलना में इन कार्यक्रमों में तटस्थ एवं औपचारिक भाव अपनाते है। प्रेस से सम्बन्धित व्यक्ति पर्याप्त जागरूक है लेकिन सामान्य जनता तुलनात्मक रूप में इन कार्यक्रमों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण तो रखती है लेकिन बहुत अधिक उत्सुक प्रतीत नहीं होती। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि इन कार्यक्रमों की सफलता के लिये पर्याप्त प्रचार और गहन जनसम्पर्क की आवश्यकता है।

हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति समाज के विभिन्न वर्गो के दृष्टिकोण को उक्त विश्लेषण के द्वारा दो दृष्टिकोण मापन स्केल के द्वारा जानने का प्रयास किया गया। प्रथम स्केल कानूनी सहायता कार्यक्रमों प्रभाव से सम्बन्धित था। जिन लोगों पर इस प्रभाव का अध्ययन किया गया वे उपसमूह थे न्यायाधीश/न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता स्थानीय प्रशासन, न्यायिक प्रशासन और वादी। ये उपसमूह किसी न किसी रूप में कानूनी सहायता कार्यक्रमों के सम्पादन से सम्बन्ध रखते हैं। इस समूह का कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति सकारात्मक प्रभाव पाया गया, पूरे समूह के इन कार्यक्रमों के प्रति झुकाव का औसत प्रतिशत 70 है। इस समूह के उपसमूहों के झुकाव का प्रतिशत अलग–अलग था जहां न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता और न्यायिक प्रशासन के लोगों के झुकाव का प्रतिशत औसत प्रतिशत से अधिक था वहां स्थानीय प्रशासन और वादियों को झुकाव औसत से कम था।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति हमीरपुर जनपद के लोगों की राय भी सकारात्मक रही। इस उद्देश्य के लिये जिस समूह का चयन किया गया उसके उपसमूह थे। न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता, प्रेस से सम्बन्धित व्यक्ति (पत्रकार) प्रशासन से जुड़े व्यक्ति एवं सामान्य जनता के व्यक्ति।

इस समूह का औसत प्रतिशत 69 रहा। इसके उपसमूहों में न्यायिक अधिकारी और अधिकारियों की राय कानूनी सहायता कार्यक्रमों के पक्ष में औसत से अधिक थी जबकि प्रेस, प्रशासन और सामान्य जनता की राय औसत प्रतिशत से कम थी।

उक्त दृष्टिकोण मापन स्केल का विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि उत्तर प्रदेश में हमीरपुर जनपद जैसे पिछड़े क्षेत्र में भी कानूनी सहायता कार्यक्रमों के विषय में समाज के विविध वर्गो को सामान्य दृष्टिकोण सकारात्मक है यद्यपि इन कार्यक्रमों के प्रति जन अभिरूचि जगाने में और अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

अध्याय– 8

कानूनी सहायता कार्यक्रमों का मूल्यांकन

(अ) उपलब्धियाँ

(ब) अपर्याप्ततायें

भारत वर्ष को सारे विश्व में अपने संवैधानिक जनतंत्र और प्रजातान्त्रिक संस्थाओं के लिए जाना जाता है। हमारे प्रजातान्त्रिक मूल्य हमारी पुरातन परम्पराओं से गहराई के साथ सम्बद्ध हैं। एक सृदृढ़ प्रजातंत्र की प्रमुख विशेषता विधि का शासन है, जो कि एक प्रजातन्त्रिक समाज का निःसन्देह सर्वोच्च सिद्धान्त है और समान न्याय की मौलिक प्रत्याभूति है।

हमारे संविधान ने सभी वर्गों के नागरिकों को समान न्याय का वचन दिया है, संविधान का अनुच्छेद 39 क राज्य को विशेष रूप से निर्देशित करता है कि राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार कार्य करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और आर्थिक या अन्य कमी के कारण न्याय पाने से कोई वंचित न रह जाये इसके लिए राज्य निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

प्रश्न उठता है कि जो लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं या कमजोर वर्ग से सम्बन्धित हैं उनके लिए कानून बनाने का तब तक क्या औचित्य है जब तक कि उन्हें अपने अधिकारों की जानकारी न हो। इसलिए विधिक सहायता कार्यक्रम का मूलभूत उद्देश्य एवं कर्तव्य भारतीय संविधान और अन्य विभिन्न विधानों द्वारा उन्हें दिये गए अधिकारों के बारे में जानकारी देना है। विधिक सहायता कार्यक्रम का अर्थ यह नहीं है, कि विधिक सहायता तभी दी जाये जब मामले उत्पन्न हो, **"बल्कि इलाज से परहेज बेहतर है"** की उक्ति को ध्यान में रखते हुये विधिक साक्षरता के लक्ष्य को कार्यरूप में परिणित करना आवश्यक है।[1]

न्यायालयों में छोटे–छोटे मुकदमों को लेकर अनेक वादों का बोझ निरन्तर बढ़ रहा हैं निरन्तर जटिल होती सामाजिक और आर्थिक समस्यायें, साम्प्रदायिक व जातिगत असहनशीलता निरन्तर न्यायलयों में मुकदमों की संख्या बढ़ा रही है। ऐसे में उचित विधिक सहायता देकर समस्याओं का सामना किया जा सकता है।

---

1. आर0 के0 महाजन : गरीबों के लिए निवारक विधिक सहायता, विधिक सहायता संवाद पत्र, मई 89–फरवरी 90 पृ0 25

1980 में केन्द्र सरकार के द्वारा **कानूनी सहायता क्रियान्वयन समिति** (CILAS) सारे देश में एकरूपता के आधार पर कानूनी सहायता कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए बनाई गयी, ये कार्यक्रम सभी राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों द्वारा अपनाये गये और एक बड़ी संख्या में गरीबों और दलितों को निःशुल्क कानूनी सहायता दी गयी।

इन कार्यक्रमों में लोक अदालतें सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावी हुयीं। 1990 में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश **न्यायमूर्ति आर0 एन0 मिश्रा** ने लोक अदालतों का महत्व बताते हुये कहा **''वर्तमान न्यायिक व्यवस्था के पूरक के रूप में सबसे अधिक अनुकूल विकल्प लोक अदालत सिद्ध हुआ है जहां विवाद का निपटारा आपसी सहमति से होता है। कानूनी सहायता व्यवस्था के अंग के रूप में लोक अदालत ने देश के कोने कोने में अपनी उपस्थिति दर्ज की है. . . . . लोक अदालतें कानूनी सहायता समिति के द्वारा स्थानीय अधिवक्ता संघ, समाज सेवकों और प्रमुख नागरिकों एवं अवकाश प्राप्त न्यायिक अधिकारियों के सहयोग से लगायी जाती हैं। यहां विवादों का हल आपसी सहमति से खोजा जाता है अतः इनके निर्णयों के विरूद्ध चुनौती देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लोक अदालत की संस्कृति भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के अनुरूप है और इसलिए इन्होंने जनता का ध्यान आकृष्ट किया है और जनता के बीच स्वीकृत आन्दोलन के रूप में स्थापित हो रही हैं।**[1]

कानूनी सहायता के अन्य साधनों, उपभोक्ता न्यायालयों द्वारा आम जनता के उपभोक्ता अधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रभावी होने के बाद से सम्पूर्ण भारत में उपभोक्ताओं को त्रुटिपूर्ण वस्तुओं या सेवा के विरूद्ध क्षतिपूर्ति का अधिकार प्राप्त हो गया है। वर्ष 1993 में इसमें संशोधन किया गया

---

1. संपादकीय, 'विधिक सहायता संवाद पत्र, नवम्बर 87 –फरवरी 88

जिससे कि इसके दायित्व और अधिक बढ़ाये जायें। सुरक्षा का अधिकार, क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार, उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य और धरणीय पर्यावरण का अधिकार, मूलभूत आवश्यकताओं की तुष्टि का अधिकार प्रमुख उपभोक्ता अधिकार हैं।

उपरोक्त अधिकारों को रक्षा प्रदान करने के लिए अधिनियम में अर्धन्यायिक व्यवस्था की गई है, जिसके फलस्वरूप जनपद स्तर पर जिला फोरम, प्रदेश स्तर पर राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी उपभोक्ता संगठनों को उपभोक्ता के हितों के संरक्षण के हेतु उपभोक्ता की तरफ से सीधे शासन तथा शोषक वर्ग तथा त्रुटिपूर्ण सेवा प्रदान करने वाले वर्ग तक आवाज उठाने का अधिकार प्राप्त हो गया है।

पारिवारिक न्यायालय पारिवारिक एवं विवाह सम्बन्धी विवादों को सुलझाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इनमें पति–पत्नी के झगड़ों को दूर करने के लिए सुलह कर्ताओं के माध्यम से प्रयास किये जाते हैं। ये झगड़े निर्बल एवं अशिक्षित वर्ग में अधिक होते हैं।

पारिवारिक न्यायालयों के पूरक एवं सहायक के रूप में परिवार परामर्श केन्द्र भी स्थापित किये गये हैं, जो पारिवारिक विघटन को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों की उपलब्धियाँ :

कानूनी सहायता कार्यक्रमों से समाज के लोग कई रूपों में लाभान्वित हुये हैं। ये विभिन्न वादकारी पक्षों के बीच इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य करते हैं कि कोई भी विजेता पराजित नहीं होता। और निष्कर्ष रूप में विविध पक्षों के के बीच एक स्वरूप सांमजस्य के वातावरण को प्रोत्साहन मिलता है और दोनों पक्षों को सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

भारत एक गरीब देश है जिसका बहुत बड़ा क्षेत्र है और जहां अधिकांश जनता पिछड़े क्षेत्रों में रहती है। जिनमें से अधिकतर गरीबी रेखा के नीचे निवास करते है। इस

जनसंख्या में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग भी बड़ी संख्या में हैं, जो बेहद गरीबी में रहते है। गरीबी के कारण वे अपने अधिकारों के प्रति अनजान व उदासीन रहते हैं। जो एक नागरिक के रूप में उन्हें इस देश में प्राप्त है। न्याय की मांग यह है कि न्याय के वितरण की ऐसी कोई पद्धति खोजी जाये तो उपर्युक्त लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए कार्य करें। कानूनी सहायता कार्यक्रमों के अंग के रूप में लोक अदालतों, उपभोक्ता फोरमों, पारिवारिक न्यायालयों के द्वारा इन वर्गो को उनके कानूनी अधिकारों के प्रयोग का वातावरण तैयार किया गया। और संविधान के दर्शन में दिये गये उद्‌देश्यों को पूरा करने की दिशा में एक कदम बढ़ाया है।

इन कार्यक्रमों से दो प्रमुख लाभ हुये है

प्रथम जनता में अपने कानूनी अधिकारों और दायित्वों के प्रति चेतना बढ़ी है।

द्वितीय विभिन्न विवादित पक्षों के मध्य स्वतन्त्र और स्वैच्छिक सहमति से विवादों के हल तक पहुंचने का वातावरण तैयार हुआ है।

अगर हमारी अर्थव्यवस्था इस बात की अनुमति देती है कि गरीब और पिछड़ों को व्यापक बहुमत की कीमत पर कुछ समर्थो के हाथ में सम्पदा एकत्र हो तो गरीब और असाधारण लोग निरन्तर उत्पीड़ित होते रहेंगे, इसलिए जब तक गरीब और साधारण लोगों के बीच अपने दायित्वों और अधिकारों के प्रति चेतना को जाग्रत नहीं किया जाता तब तक उन्हें अपने उचित अधिकारों के प्राप्ति हो ही नहीं सकती। इसलिए एक स्वस्थ्य प्रजातन्त्र में समर्थ वर्ग का भी यह कर्तव्य है कि वे उन प्रयासों को सहयोग दें, जो पिछड़ों और गरीबों को उनके कानूनी अधिकारों के प्रयोग का वातावरण बनाने हेतु किए जा रहे है। तभी वास्तविकता में संविधान के द्वारा लोगों को दिया गया वचन पूरा हो सकेगा।

पूर्व मुख्य न्यायाधीश आर0 एस0 पाठक ने लोक अदालत आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए कहा "लोक अदालतों का पूरा आन्दोलन सारे देश में कानूनी साक्षरता को प्रोत्साहित कर रहा है इससे जनता के बीच कानून के शासन के प्रति विश्वास बढ़ रहा है और समाज के विभिन्न वर्गो के बीच परम्परागत दीवारें समाप्त हो रही हैं जिससे हमारा गौरवपूर्ण व प्रजातन्त्र मजबूत हो रहा है और एक नये समाज के निर्माण का पथ प्रशस्त हो रहा है।[1]

कानूनी सहायता के प्रमुख साधन के रूप में लोक अदालत की उपलब्धियां सराहनीय रही हैं। राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति गुमानमल लोढ़ा मानते है "लोक अदालतों ने सस्ते, त्वरित न्याय को प्रदान करने में चमत्कारिक कार्य किया है। देश के लगभग 5 करोड़ व्यक्ति वर्षो से अपने मुकदमों के फैसलों के इन्तजार में बैठे हैं, यह संख्या निरन्तर बढ़ रही है। लोक अदालतों के द्वारा जिस गति से और जिस प्रक्रिया से विभिन्न न्यायालयों में मुकदमों के बोझ को कम करने में सहायता मिली है उससे लोक अदालतों को 'अलादीन के चिराग' की तरह जादुई संस्था कहा जा सकता है।[2]

इस प्रकार कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रमुख साधन के रूप में लोक अदालत एक संजीवनी की तरह साबित हुयी है विशेष रूप से भारत जैसे देश में जहां न्याय प्राप्त करने वाले वादियों में अधिकतर गरीब और पिछड़े हैं। वे अच्छे वकील नहीं कर सकते, न ही वे मुकदमों का खर्चा उठा सकते हैं उनकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि वे दो तीन साल तक न्याय का इन्तजार भी नहीं कर सकते। ऐसे लोगों के आँसुओं की अनवरत धारा न्यायिक व्यवस्था के लिए एक चुनौती है। लोक अदालतों ने इन्हें कानूनी सहायता प्रदान कर, त्वरित एवं सस्ता न्याय दिलाकर भारत की न्यायिक व्यवस्था में लोगों के विचलित होते विश्वास को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया है।

1. विधिक सहायता संवाद पत्र, मई–अगस्त 1987 पृ0 4
2. जस्टिस गुमानमल लोढ़ा, लोक अदालत दि अलादीन्स लैम्प, पेट्रियोट, (न्यू दिल्ली) जुलाई–7, 1987

इस प्रकार लोक अदालतों ने त्वरित न्याय दिलाने की दिशा में स्वयं को अग्रदूत सिद्ध किया है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 बन जाने के बाद लोक अदालतें और अधिक प्रभावी हुयीं हैं इनसे न केवल विभिन्न न्यायालयों (मुसिंफ न्यायालय से लेकर उच्चतम न्यायालय तक) में मुकदमों का बोझ कम हुआ है बल्कि इन्होंने गरीबों और जरूरत मन्दों को ''दरवाजे पर न्याय'' के विचार को साकार किया है। जिसमें न्याययिक प्रक्रिया गतिशील और कम खर्चीली हुयी है।

1995 तक अखिल भारतीय स्तर पर लोक अदालतों द्वारा लगभग 42 लाख मुकदमें निपटाये जा चुके थे। जिसमें 2 लाख मोटर दुर्घटना प्रतिकर से सम्बन्धित थे और जिसमें 5 अरब रूपये क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त हुये।

1998–99 की अवधि में उत्तर प्रदेश में 399 लोक अदालतों का आयोजन हुआ था जिनमें 2,65,020 वादों का निस्तारण हुआ वर्ष 1999–2000 की अवधि में उत्तर प्रदेश में कुल 611 लोक अदालतों का आयोजन किया गया जिनके माध्यम से 3,19,018 मुकदमों का निस्तारण हुआ लोक अदालतों में मोटर दुर्घटना प्रतिकर से सम्बन्धित 4,237 वाद निपटाये गये और पीड़ित परिवारों को कुल रू0 34,26,56,901.25 पैसे की धनराशि प्रतिकर के रूप में दिलायी गयी। वर्ष 2000 तक उत्तर प्रदेश में लोक अदालतों के माध्यम से कुल 38 लाख से अधिक वाद निस्तारित किये गये है।[1] प्रदेश के सभी जनपदों में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के अन्तर्गत स्थायी एवं नियमित लोक अदालतों का गठन किया गया।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों का प्रमुख साधन यद्यपि लोक अदालत है लेकिन उपभोक्ता संरक्षण और उसके द्वारा किए गये प्रयासों ने भी कानूनी सहायता के लक्ष्य को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

---

1. विधिक सेवा पंत्रिका, जुलाई, 2000 पृ0 5

उपभोक्ता को विदेशों में ''राजा'' कहा जाता है और उपभोक्ता को संरक्षण प्रदान करने के लिए वहां वर्षों से ही प्रयास प्रारंभ कर दिये गये हैं और आज वहां के उपभोक्ता अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूप से जागरूक हैं परिणाम स्वरूप उपभोक्ता निर्माता और सरकार के बीच एक सौहाद्रपूर्ण सम्बन्ध बना हुआ है। निर्माता घटिया सामग्री नहीं बनाता और न विक्रय करता है घटतौल की समस्या नहीं है। वस्तुओं के दाम छपे हुये मूल्य से अधिक नहीं लिए जाते। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता आन्दोलन के बारे में उपभोक्ता को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

भारत में उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता बहुत विलम्ब से महसूस की गयी। इस दिशा में भारत सरकार द्वारा उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में पारित किया गया जिसे उपभोक्ता संरक्षण के मार्ग में 'मील का पत्थर' कहा जा सकता है। अधिनियम की व्यवस्थाओं के अन्तर्गत उपभोक्ता को अनेक अधिकार प्रदान किए गए और उन्हें प्रदत्त अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रत्येक जनपद और राज्य में उपभोक्ता अदालतों की स्थापना के अतिरिक्त दिल्ली में एक राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग की स्थापना की गयी है, जहां उपभोक्ता उत्पीड़ित होने पर अपनी शिकायत प्रस्तुत कर राहत दिए जाने की मांग कर सकता है। इन उपभोक्ता फोरमों की प्रक्रिया बहुत सरल और कम खर्चीली है। किसी वकील की आवश्यकता नहीं, वादी स्वयं अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकता है और यथाशीघ्र मामले में निर्णय दिये जाने की व्यवस्था है।

उपभोक्ता आन्दोलन आज जिस मुकाम पर खड़ा है वह तीन चरणों से गुजरा है। इसको इस मुकाम तक लाये जाने हेतु प्रथम चरण पर उपभोक्ता अधिकारों के प्रति सचेत कुछ नागरिकों, अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारियों, समाजसेवियों द्वारा उपभोक्ता अधिकारों के संरक्षण की आवाज उठाई गई त्रुटिपूर्ण सेवा प्रदायेंकर्ताओं को पत्र लिखकर इनके विरूद्ध

समाचार पत्रिकाओं में लेख लिखकर, स्थानीय लोगों के बीच उपभोक्ताओं के अधिकारों की चर्चा करके वर्कशाप आयोजित कर कार्य किया गया। लेकिन इसमें मुख्य भूमिका उपभोक्ता हितों के प्रति चिन्तित कुछ उत्साही व्यक्तियों की भूमिका तक ही सीमित रहती थी। उनके द्वारा आगे चलकर अन्य कार्यों में व्यस्त हो जाने या रूचि कम लेने पर उस समूह की आवाज मध्यम पड़ जाती थी और किसी अन्य उपभोक्ता कार्यकर्ता के अधिक क्रियाशील होने पर नया संगठन उत्पन्न हो जाता था।

दूसरे चरण पर जो समूह/कार्यकर्ता लम्बे समय तक आन्दोलन में रूचि लेते रहे उन्होंने "डायरेक्ट ऐक्शन प्लान" के जरिये, उदाहरणार्थ शोषणकर्ता या त्रुटिपूर्ण सेवा प्रदानकर्ता के सामान या सेवा का अधिकार करके, उनके विरूद्ध अनशन आदि करके आवाज उठाई परन्तु यह व्यवस्थित ढंग से न होकर कार्यकर्ता/संगठन के विवेक पर एवं स्थानीय समस्या के आधार पर ही निर्भर था तथा विभिन्न स्वयं सेवी उपभोक्ता कार्यकर्ता व संगठन से इस हेतु सामूहिक रूप से एकीकृत प्रयास नहीं किया गया।

तीसरा चरण जो वर्तमान में चल रहा है, में कुछ ऐसे संगठन स्वयं सेवा कार्यकर्ता उभर कर आये जिनके द्वारा लम्बे समय तक इस क्षेत्र में कार्य करते रहने व अपने व्यावसायिक कार्यो का अनुभव होने से उन्होंने इसे "इन्स्टीट्यूशल" स्वरूप प्रदान किया तथा विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को वेतन पर नियुक्त कर प्रबन्धकीय व्यवस्था लागू की तथा खाद्य वस्तुओं, अन्य निर्मित वस्तुओं एवं दवाईयों का प्रयोगशालाओं में परीक्षण कराकर उनकी गुणवत्ता उनके निर्धारित पैमाने पर मापी। वस्तुओं के त्रुटिपूर्ण होने पर उसको अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया तथा उपभोक्ताओं की शिकायतों को प्रभावी ढंग से उपभोक्ता फोरमों, राज्य आयोग व राष्ट्रीय आयोग में प्रस्तुत करने व उसको अर्द्ध न्यायिक मंचों पर न ले जाने पर पूर्व में ही निपटाने हेतु अनुभवी व प्रशिक्षित लोग नियुक्त किये। इन संगठनों ने उपभोक्ता

अधिकारों की मांग हेतु सांसदो, मंत्रालयों, प्रशासनिक अधिकारियों से लॉवीइंग एवं एडवोकेसी की जिसकी परिणति 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986' के रूप में हुई। ऐसे उपभोक्ता संगठनों में सी0 ई0 आर0 सी0 अहमदाबाद, वायस, कॉमन काज, गाइडेन्स सोसाइटी कट्स आदि प्रमुख है।

उपभोक्ताओं के हित की रक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 लागू किया गया था। इसके क्रियान्वयन हेतु प्रदेश सरकार द्वारा निम्नलिखित कार्यवाही की गयी हैः–

1. राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग, लखनऊ में मोतीमहल भवन, में स्थापित है, राज्य आयोग के सुदृढ़ीकरण के लिए भारत सरकार से प्राप्त केन्द्रीय सहायता से लाइब्रेरी, फोटो–कापियर मशीन, कम्प्यूटर, कार्यालय फर्नीचर तथा साज–सज्जा आदि भी स्वीकृत की गयी है।

2. प्रदेश में 68 जनपदों में जिला फोरम गठित हैं, यद्यपि पांच नये सृजित जनपदों में अभी स्टाफ तथा धनराशि की व्यवस्था शीघ्र की जा रही है, जिससे यह भी कार्यशील हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त लखनऊ मुरादाबाद, आगरा, बरेली में एक–एक अतिरिक्त फोरम स्थापित है, इस प्रकार प्रदेश में कुल 72 जिला फोरम स्थापित है, जिला फोरम के सुचारू रूप से संचालन तथा उन्हें सुदृढ़ करने के उद्देश्य से भारत सरकार से प्राप्त केन्द्रीय सहायता की रू0 121.45 लाख की धनराशि स्वीकृत की गयी थी, जिसमें से प्रत्येक जनपद के लिए एक–एक फोटो–कॉपियर स्थापित हो चुकी है तथा टेलीफोन, लाइब्रेरी तथा फर्नीचर की आपूर्ति करायी जा रही है। मण्डलीय जिला मुख्यालयों को एक–एक इलेक्ट्रानिक टाइपराइटर भी दिया जा चुका है।

---

3. राज्य आयोग एवं जिला फोरमों के सुदृढ़ीकरण हेतु विगत 6 माह में राज्य सरकार द्वारा कई कदम उठाये गये हैं जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैः–

1. जिला फोरमों के अध्यक्ष व सदस्यों के रिक्त पदों हेतु 2 बार चयन समिति की बैठक आयोजित करके अध्यक्ष के 16, पुरूष सदस्य के 46, तथा महिला सदस्य के 44 पद भरने की कार्यवाही की गयी। इसके फलस्वरूप अधिकांश जिला फोरम कार्यरत हो जायेंगे। शेष रिक्त पदों को भरने की कार्यवाही भी जिलाधिकारी से पुनः संस्तुति मांगकर की जाएगी।

2. जिला फोरमों की छोटी–छोटी दैनिक आवश्यकताओं की जिला पूर्ति अधिकारी के पास उपलब्ध इम्प्रेस्ट मनी को जिला फोरम के अध्यक्ष को उपलब्ध कराये जाने के आदेश दे दिये गये हैं। ताकि इस सम्बन्ध में उन्हें होने वाली कठिनाई का निराकरण हो सके।

3. जिला फोरमों के लिए भवन की स्थाई व्यवस्था हेतु भवन/भूमि क्रय हेतु प्राथमिकता पर कार्यवाही करने के लिए जिलाधिकारी को निर्देशित किया गया है। इस बीच जिन जिला फोरमों के पास उपयुक्त भवन नहीं है उन्हें किराये पर समुचित भवन उपलब्ध कराने के लिए भी जिलाधिकारियों को कहा गया है।

4. जिला स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण कार्य के मण्डल स्तर पर समुचित अनुसरण एवं समन्वय हेतु मण्डलीय सहायक आयुक्त खाद्य को पदेन उपनिदेशक, उपभोक्ता संरक्षक घोषित किया गया है।

5. उपभोक्ता संरक्षण विभाग को स्वतन्त्र अस्तित्व देने हेतु एक पूर्णकालिक महानिदेशक का पद आई0 ए0 एस0 के सीनियर स्केल अथवा पी0 सी0 एस0 के सेलेक्शन ग्रेड में सृजित किया गया है।

---

6. उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय में सहायक निदेशक के रिक्त पद पर एक पूर्णकालिक सहायक निदेशक की नियुक्ति कर दी गयी है। साथ ही निदेशालय को सुदृढ़ करने हेतु तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के 8 अतिरिक्त पदों की भी स्वीकृति दी गयी है।

7. राज्य आयोग के सुदृढ़ीकरण हेतु भी तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के 6 अतिरिक्त पदों की स्वीकृति दी गयी है। राज्य आयोग के रजिस्ट्रार को कार्यालय अध्यक्ष घोषित किये जाने की भी कार्यवाही की जा रही है।

8. बढ़ते हुए कार्यभार को देखते हुए प्रदेश में राज्य आयोग की एक दूसरी बेंच स्थापित किये जाने हेतु अधिनियम में आवश्यक संशोधन करने के लिए प्रस्ताव भारत सरकार को भेजा गया है।

9. उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में अच्छा कार्य करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रोत्साहित करने हेतु उन्हें उचित पुरस्कार दिये जाने की योजना को पुनः लागू किया गया है।

10. जिला फोरमों के सदस्यों को जनपद स्तरीय खाद्य एवं आवश्यक वस्तु सलाहकार एवं सतर्कता समितियों के सदस्य नामित किया गया है।

प्रारम्भ से दिसम्बर 96 तक उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग लखनऊ में शिकायतों से सम्बन्धित 1792 वाद दर्ज किये गये और जिनमें से 836 निस्तारित हुये, अपीलों से सम्बन्धित 13087 वाद दर्ज किये गये इनमें से 2936 निस्तारित हुये।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिला फोरमों में प्रारम्भ से दिसम्बर 96 तक 150.457 वाद दायर किये गये जिनमें से 96950 निस्तारित हुये।[1]

---

1. उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय लखनऊ द्वारा प्रकाशित पत्रिका (**उपभोक्ता संरक्षण से**)

परिवार समाज की महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ईकाई है, जिस पर समाज की प्रसन्नता निर्भर है। परिवार से ही व्यक्ति के सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का निर्धारण होता है अतः यह समाज के हित में है कि पारिवारिक विवादों को यथाशीघ्र सुलह समझौते के आधार पर सुलझाया जाये। भारत जैसे देश में जहां अशिक्षा और अन्धविश्वास का बोलबाला है। और अधिकांश जनता बुनियादी सुविधाओं से वंचित है। छोटी–छोटी बातों पर विवाद हो जाते हैं कमजोर वर्गों में महिलाओं के साथ मारपीट आम बात है। ऐसे परिवारों में विवादों को सुलझाने में कानूनी सहायता की महती आवश्यकता है।

उत्तर प्रदेश में इसके लिए पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना की गयी है। उत्तर प्रदेश सरकार ने पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 पारित किया जिसके अनुसार एक मिलियन की जनसंख्या वाले शहर या कस्बे में पारिवारिक न्यायालय की स्थापना करने का प्राविधान है।[1] पारिवारिक न्यायालयों द्वारा अब तक पांच हजार से अधिक वाद उ0 प्र0 में निस्तारित किये जा चुके है।[2]

पारिवारिक न्यायालयों के पूरक के रूप में परिवार परामर्श केन्द्रों की स्थापना भी की गई है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड नई दिल्ली की योजना के अन्तर्गत राज्य समाज कल्याण बोर्ड परिवार परामर्श केन्द्र स्थापित करता है। जिनमें नियुक्त दो सलाहकारों द्वारा उभयपक्ष से समस्या के सन्दर्भ में विस्तृत वार्ता करते हुए विवाद के कारण को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है तथा यथा आवश्यकता सम्बन्धित पक्षकारों या सम्बन्धित व्यक्तियों से सम्पर्क / जांच हेतु भ्रमण भी किया जाता है। केन्द्र के दिन प्रतिदिन के कार्यो का पर्यवेक्षण पुलिस अधीक्षक स्तर अधिकारी द्वारा किया जात है। प्रत्येक प्रकरण में यथा संभव परामर्श द्वारा सुलह समझौता कराकर विवाद के समाधान का प्रयास किया जाता है।

---

1. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, धारा–(3) (1) ए
2. विधिक सेवा पत्रिका, अप्रैल–सितम्बर, 2001

न्याय पंचायत प्राचीन भारतीय समाज में ग्रामीण एवं स्थानीय न्यायिक प्रशासन एवं पक्षों के आपसी विवाद को निर्णीत करने वाले संस्था के रूप में सार्वभौमिक मान्यता से युक्त थीं। ब्रिटिश काल में इनका महत्व कम हो गया। वर्तमान भारत में न्याय पंचायत जनतांत्रिक आधार पर चुने गये व्यक्तियों की एक संस्था है। जो ग्रामीण स्तर पर विवादों के सुलह और समझौते के आधार पर हल के लिए सर्वोत्तम मंच हैं। एवं निर्धन को न्याय प्रदान करने के लिए एक उपयोगी एवं सुगम साधन है। यह छोटे–छोटे वादों के निस्तारण हेतु प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध है। न्याय पंचायत व्यवस्था यांत्रिक न्याय एवं जटिल प्रक्रिया के विरूद्ध प्रक्रियात्मक एवं व्यवहारिक न्याय प्राप्त करने का सार्वभौमिक व्यापक कार्यक्रम है।

<u>कानूनी सहायता कार्यक्रमों की अपर्याप्ततायें</u> :

कानूनी सहायता के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को न्याय देने के संवैधानिक लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में जिन संस्थाओं के महत्वपूर्ण भूमिकायें निभाई उनमें लोक अदालत प्रमुख है–लोक अदालतों के सम्बन्ध में कुछ आलोचनायें की जाती है।

प्रायः ये कहा जाता है कि लोक अदालतों के प्रारम्भिक रूप में उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय की आवश्कयता से अधिक दिलचस्पी रही है जिससे न्यायपालिका की छवि गिरती है लेकिन ये आलोचना महत्वहीन है वस्तुतः इससे तो न्याय पालिका का आदर और गरिमा बढ़ती है।

प्रायः लोक अदालतों के आयोजन के समय आवश्यकता से अधिक भीड़ होती है बहुत से आलोचक इसे तमाशा कहते है–

लोक अदालत का आयोजन जहां भी होता है वहां भीड़–भाड़ अवश्य होती है। किन्तु इसमें लोक अदालत का क्या दोष ? यह स्वीकृत तथ्य है कि राष्ट्र के विभिन्न न्यायालयों में मुकदमों का अम्बार लगा है। यह भी प्रयत्न रहता है कि अधिक से अधिक मुकदमें निपटाये जायें। अतः भीड़ लगना स्वाभाविक है। इस भीड़ में केवल दर्शनार्थी नहीं होते वरन् लाभान्वित होने की आशा से आये हुए लोग भी होते हैं।

यह भी समझा जाता है कि उच्च न्यायालय के न्यायधीश की इच्छा के लिए ही जिले का न्याय विभाग लोक अदालत जैसे कार्य करता है। इसके कोई ऐसे निर्देश या विधिक कर्तव्य न्यायालय ने निश्चित नहीं किये हैं कि अधीनस्थ न्यायालय लोक अदालत लगाये ही। पर न्यायालयों का मूलभूत अधिकार और कर्तव्य ही यह है कि वह मामलों का निपटारा करे चाहे वह न्यायालय कक्ष में हो या लोक अदालत में।

कानून के पढ़े लिखे कुछ जानकार भी यह कहते है कि यह महज एक ''स्टंट'' है। प्रश्न उठता है कि लोक अदालत यदि स्टंट है यह किसका और किसके लिए है न्यायपालिका स्वतन्त्र है उसे स्टंट बड़ा करने की क्या आवश्यकता है। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में कहा गया है कि दुर्बल वर्ग और आम जनता को न्याय दिलाया जाये। लोक अदालते भी कानूनी प्रक्रिया के तहत चलती है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 के पारित होने के बाद से लोक अदालतों को ''कानूनी आधार'' की प्राप्ति हो गयी है।

यह कहा जाता है कि लोक अदालतें जनता की अदालतें नहीं हैं यह केवल सामान्य न्यायालय हैं जो न्यायालय कक्ष से निकल कर अलग स्थान पर मामलों का निपटारा करती हैं। लोक यह भूल जाते है कि न्यायालय के पीठासीन अधिकारी भले ही वही हों परन्तु मामलों का निपटारा सुलह व सहमति के आधार पर सद्भावना और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में होता है। चूंकि लोक मत और लोक सहायता के आधार पर मामलों के निपटारे हो रहे है। अतः यह पूर्ण रूप से जनता की अदालत है।

लोक अदालतों में निपटाये जाने वाले मामलों के बारे में भी आपत्तियां उठाई जाती है इसमें केवल साधारण मामले निपटाये जाते है। जैसे शस्त्र अधिनियम, छूत अधिनियम एवं मोटर वाहन अधिनियम इनका समाज के नैतिक स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन यदि निष्पक्ष रूप से विचार किया जाये तो हम पाते है कि यही छोटे–छोटे अपराधी बाद में बड़े अपराधी बन जाते हैं। लोक अदालतें भावी बड़े अपराधों को रोकती हैं।

यह आरोप लगाया जाता है कि लोक अदालतें निर्णीत मामलों की संख्या बढ़ाकर दिखाती हैं और ऐसा करने के लिए अपराधियों को छूट दी जाती है। और सजा कम कर दी जाती है। यह बात उन अनभिज्ञता के कारण कहीं जाती है। अधिक निर्णीत मामलों की संख्या दिखाना कैसे संभव है। यदि दण्ड के सुधारात्मक सिद्धान्त की दृष्टि से अदालतें अपराधी की सजा कम करती हों तो यह समाज के हित में है।

यह भी कहा जाता है कि लोक अदालतों में कोई सुलह या समझौता नहीं होता बल्कि केवल जुर्म इकबाल के आधार पर फैसला करके लोक अदालत का नाटक किया जाता है वस्तुस्थिति इससे भिन्न है लोक अदालतों में केवल आपराधिक ही नहीं वरन् व्यवहारिक मामलों का भी निस्तारण होता है तथा वैवाहिक मामलों में भी वाद निर्णीत होते है और वह भी सुलह–समझौते से जैसे विवाह अधिनियम में कोई अपराध स्वीकृति नहीं होती और ऐसे मामलों का निस्तारण विविल साइड में सुलह समझौता के आधार पर होता है तथा मुकदमें बाजी की प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। सुलह समझौता का जो माहौल लोक अदालतों में मिलता है वह शायद साधारण रूप से न्यायालय परिसर में नहीं मिलता।

आलोचक कहते हैं कि केवल लोक अदालतों में ही सौहार्द्रपूर्ण माहौल क्यों बने। क्या साधारणतया यह माहौल नहीं बन सकता। यदि ऐसा हो जाये तो बहुत सा अनुपयोगी खर्च बचेगा। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हो पाता परिणाम स्वरूप न्यायालयों में मुकदमें का अंबार लग जाता है।

हत्या, बलात्कार आदि मामलों में साधारणतया सुलह समझौते की गुंजाइश कम होती है ऐसे वाद कोई सौहार्द या सुलह पैदा नहीं कर पाते। अतः इनका निपटारा लोक अदालतों में नहीं हो पाता किन्तु यह परम्परा आगे बढ़ती गई तो ऐसे मामले भी निपटाये जा सकते हैं।

यह विचार करना चाहिए कि जैसे--जैसे लोक अदालतों का प्रचार व प्रसार हो रहा है वैसे–वैसे समाज का हर वर्ग और गणमान्य व्यक्ति भी इससे प्रभावित हो रहे हैं। समारोहों में जब गणमान्य व्यक्ति आते हैं तो इससे समाज में जागरूकता पैदा होती है। लोक अदालतों के आयोजन की होड़ भी समाज के हित में है इससे लोग लोक अदालतों की उपयोगिता समझते है और जागरूकता बढ़ रही है।

लोक अदालतों द्वारा एक दिन में सैकड़ों वादों का निस्तारण करने से उसकी विश्वसनीयता पर प्रश्न चिन्ह उठाया जाता है। क्या यह व्यवहार में संभव है ? लेकिन वस्तुतः लोक अदालत में लोगों को समझा बुझाकर सुलह के लिए प्रेरित किया जाता है लोक अदालत का निर्णय एक दिन में किया गया निर्णय नहीं होता है। बल्कि इसके पीछे कई दिनों की मेहनत होती है।

मोटर दुर्घटना प्रतिकर वादों के सम्बन्ध में यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें लेन–देन के आधार पर निर्णय होता है। लेकिन जब सुलह और समझौता की बात होगी तो इस प्रक्रिया में लेन–देन भी शामिल हो जाता है मुख्य बात यह है कि दोनों पक्ष स्वेच्छा से किसी निर्णय पर सहमत होते हैं।

लोक अदालतों के आयोजन में जो दिखावा या प्रचार होता है वह भी आलोचना का पात्र बना है। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश **न्यायमूर्ति आर0 एन0 मिश्रा** ने स्वीकार किया है कि लोक अदालतों की आलोचना बहुत अधिक दिखावे के कारण ठीक ही की जा रही है। **लोक अदालतों के आयोजन अनावश्यक रूप से मुख्य न्यायाधीश अथवा अन्य न्यायाधीशों को लोक अदालतों के उद्‌घाटन में आने के लिए जो डालते है।**[1] ये भी देखा गया है कि लोक अदालत में वादकारियों को मोटर दुर्घटना के सम्बन्ध में दावों के लिए कम पैसा मिलता हैं जबकि अन्य न्यायालयों में निर्णय होने पर पैसा ज्यादा मिलता है यह गंभीर प्रवृत्ति है।

1. राजस्थान उच्च न्यायालय में आयोजित लोक अदालत के उद्‌घाटन के अवसर पर न्यायमूर्ति आर0 एन0 मिश्रा, (टाइम्स आफ इण्डिया) नई दिल्ली, नवम्बर 8, 1987, पृ0 8

यह कहा जाता है कि लोक अदालत से अधिवक्ताओं का कार्य बुरी तरह प्रभावित हुआ है, लोक अदालतों की सफलता को दिखाने के लिए गलत तरीकों से बड़ी संख्या में समझौते के आधार पर निस्तारित वाद दिखाये जाते हैं। ये भी कहा जाता है कि जिस प्रक्रिया को लोक अदालतों में दिखावा जाता है क्या वह प्रक्रिया साधारण अदालतों में प्रयुक्त नहीं हो सकती ? यह भी देखा गया है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों के विरूद्ध दायर विवादों को लोक अदालतों में निपटाने में केन्द्र राज्य सरकारें रूचि नहीं लेती हैं। और यह बड़ा अजीब लगता है कि जिस व्यवस्था को सरकार प्रोत्साहन दे रही है उसमें वह स्वयं अपना विश्वास प्रकट क्यों नहीं करती।[1]

पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी **''ला एशिया सम्मेलन''** में कहा था **''लोक अदालत शब्द भ्रामक है यह न तो लोगों द्वारा संचालित है और न ही न्यायालय के अनुशासन में है''**।[2]

उपभोक्ता संरक्षण फोरम जनता के उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रयासरत हैं लेकिन कुछ कारणों से उपभोक्ता फोरम अपने इच्छित लक्ष्य को पाने में बाधा पाते हैं इस सम्बन्ध में प्रमुख कमियां निम्नांकित रूप से बतायी जाती हैं।

प्रथम — उपभोक्ता फोरम के अध्यक्ष और सदस्यों के नियुक्ति की प्रक्रिया में सरकार की ओर से ढील दी जाती है। जिला उपभोक्ता फोरम में एक अध्यक्ष, एक पुरूष तथा एक स्त्री सदस्य शासन द्वारा नियुक्त किए जाते हैं, जिसकी अधिकतम आयु 65 वर्ष होती है और कार्यकाल 5 वर्ष होता है। लेकिन यह देखा गया है कि यह पद अक्सर खाली पड़े रहते हैं।

द्वितीय — यद्यपि प्रतिवर्ष राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस और विश्व उपभोक्ता दिवस मनाये जाते हैं पर ये आयोजन जनता में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जगाने के स्थान पर केवल सरकारी अधिकारियों द्वारा बन्द कमरे में किए गए आयोजन रह जाते है।

---

1. न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी सितम्बर 1991 में हैदराबाद में आयोजित कानूनी सहायता सेमिनार में, विधिक सहायता संवाद पत्र, जुलाई दिसम्बर 1991 पृ0 15
2. कृष्णा महाजन : नाइदर लोक नार अदालत हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली अक्टूबर 25, 1985

तृतीय उपभोक्ता आन्दोलन को गति प्रदान करने में स्वयंसेवी संस्थाओं की महती भूमिका है लेकिन यह देखा गया है कि इस आन्दोलन की जो प्रगति होनी चाहिए वह नहीं है इसका प्रमुख कारण है सरकार के द्वारा बरती जा रही है उपेक्षा एवं उदासीनता। स्वयं सेवी संस्थाओं को अर्थाभाव के कारण अपने अनेक कार्यक्रमों को रद्द करना पड़ता है। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के द्वारा नियमित वित्तीय सहायता नहीं दी जाती बार–बार आवेदन करने पर भी सरकार की ओर से कोई उत्तर नहीं मिलता।

चतुर्थ उपभोक्ता संरक्षण फोरम में नियमित अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति में विलम्ब होने पर फोरम का कार्य बड़ी धीमी गति से चलता है जिससे मुकदमों के निस्तारण में अपेक्षा की प्रतिकूल अनावश्यक विलम्ब होता है। और आम उपभोक्ता, उपभोक्ता संरक्षण फोरम में जाने के प्रति उदासीन होता जाता है।

''पारिवारिक न्यायालय'' पारिवारिक विवादों में आम जनता को कानूनी सहायता देने के लिए स्थापित किए गए हैं लेकिन पारिवारिक न्यायालयों के संगठन और प्रक्रिया में कई खामियां हैं जो निम्नांकित है प्रथम– पारिवारिक न्यायालय केवल उन्हीं क्षेत्रों में स्थापित किये जा सकते हैं जिनकी जनसंख्या कम से कम एक मिलियन हो, इस प्रकार अधिकतर पिछड़े और सुदूरवर्ती क्षेत्रों में यह न्यायालय स्थापित नहीं हो पाते। द्वितीय– पारिवारिक न्यायालय अधि ानियम यह निर्देशित करता है कि विवाद के दोनां पक्षों को समझा–बुझाकर उनके बीच सांमजस्य स्थापित कर विवादों का हल निकालना चाहिए। लेकिन सम्बन्धित कर्मचारी इसमें रूचि नहीं लेते हैं।

परिवार परामर्श केन्द्र पारिवारिक न्यायालयों में निहित लक्ष्य में पूरक के रूप में कार्य करते है लेकिन इनकी संख्या पिछड़े क्षेत्रों में न के बराबर है जैसे हमीरपुर जनपद में

वर्तमान में एक भी परिवार परामर्श केन्द्र नहीं है। इसके अतिरिक्त परिवार परामर्श केन्द्र के संचालन में दी जाने वाली धनराशि अपर्याप्त होती है और समयानुसार नहीं मिलती इससे काउन्सलर्स पूरे मनोयोग से काम नहीं कर पाते।

न्याय पंचायत की व्यवस्था यद्यपि प्राचीन व्यवस्था है लेकिन वर्तमान में इसमें निम्नांकित कमिया दिखायी देती हैः–

प्रथम — इनका क्षेत्राधिकार बहुत सीमित है।

द्वितीय — ये जन सहयोग प्राप्त करने में असफल रही हैं।

तृतीय — न्याय पंचायत की निष्पक्षता के प्रति दलगत एवं जातिगत राजनीति तथा अन्य पूर्वाग्रह सम्बन्धी अविश्वास।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के सम्बन्ध में उपर्युक्त सन्देहों या कमियों के सम्बन्ध में समाज विभिन्न वर्गो के लोगों से विशेषकर हमीरपुर जनपद के लोगों से सर्वे करने पर कुछ रचनात्मक विचार मुझे प्राप्त हुये जो निम्नांकित है–

अधिकतर वकील और न्यायाधीश मानते है कि ऐसी नहीं है कि साधारण न्यायालयों में न्याय प्राप्त नहीं होता है लेकिन लोक अदालत में सुलह कर्ताओं द्वारा समझा बुझाकर आपसी तनाव, गलतफहमी दूर की जाती है। इसलिए लोगों को लोक अदालतों का लाभ उठाना चाहिए। लोक अदालत पहले से स्थापित न्यायालयों का अवहेलना नहीं है बल्कि उनकी पूरक हैं।

ये भी कहा जाता है कि मोटर दुर्घटना प्रतिकर संबंधी मामलों में विभिन्न पक्षों पर दबाव डालकर क्षतिपूर्ति उचित मात्रा में नहीं दिलायी जाती। ये आरोप भी कानूनी व्यवसाय से जुड़े लोग स्वीकार नहीं करते इनका कहना है कि क्षतिपूर्ति या मुवायजे के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय ने सिद्धान्त निर्धारित किये है और इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर लोक अदालतों में भी मुवायजा दिया जाता है।

ये कहना भी उचित नहीं है कि लोक अदालतों की सफलता दिखाने के लिए लोक अदालतों में मुकदमों की संख्या बढ़ा चढ़ाकर दिखायी जाती है आपसी सहमति से निर्णय होता है तो गलत तरीके अपनाने की क्या आवश्यकता है ?

यह भी कहा जाता है कि वकील लोग लोक अदालत में रूचि नहीं लेते है क्योंकि इससे उनकी आय प्रभावित होती है। लेकिन अधिकांश अधिवक्ताओं का कहना है कि जब लोक अदालतों में मुकदमें जल्दी हल हो जाते है इससे तो उनके कार्य क्षेत्र में वृद्धि होती है।

लोक अदालतों में न्यायिक भ्रष्टाचार की बात भी उठायी जाती है लेकिन व्यवहारिक रूप में देखा गया है कि जहां मामलों के निपटारे से बीमा कंपनिया इसलिए प्रसन्न रहती है कि बहुत कम समय में मामला हल हो जाता है। यहां वादी इसलिए प्रसन्न रहते है कि उन्हें जो भी धन मिला है वह अगर 3 या 4 साल की लम्बी प्रक्रिया के वाद मिलता तो उसका कोई मूल्य नहीं रहता और इस स्थिति में लोक अदालतों में चारों तरफ प्रसन्नता दिखायी देती है।[1]

कानूनी सेवायें प्राधिकरण अधिनियम 1987 के पास होने के बाद लोक अदालतों को कानूनी आधार मिल गया है, उनके निर्णयों के विरूद्ध अपील नहीं की जा सकती और लोगों को घुमावदार रास्ते पर वर्षो न्याय प्राप्त करने की प्रक्रिया के बजाय त्वरित और सस्ता न्याय प्राप्त हो जाता है।[2]

उपभोक्ता संरक्षण फोरम की प्रक्रिया के विरूद्ध कइ आपत्तियां की जाती है और एक सीमा तक ये उचित भी है लेकिन इन प्रक्रियागत दोषों को दूर किया जा सकता है। यही स्थिति पारिवारिक न्यायालयों और परिवार परामर्श केन्द्रों के साथ है।

न्याय पंचायतें एक लम्बे समय तक भारत में सफलता पूर्वक कार्य करती रही। पंचायत राज्य व्यवस्था अपनाने के बाद इनका महत्व पुनः बढ़ा है।

---

1. कृष्णा महाजन : नाइदर लोक नार अदालत, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली अक्टूबर 28, 1985
2. कुसुम : सक्सेस आफ लोक अदालत, हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली मई 12, 1985

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के सम्बन्ध में जो कमियां व्यक्त की गयी हैं वे एक सीमा तक सही भी हैं। लेकिन इनके आधार पर पूरी व्यवस्था को पंगु नहीं माना जा सकता। कानूनी सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से न्याय को जन–जन तक पहुंचाने में सहायता मिली है, विधिक साक्षरता बढ़ी है। दुर्बल एवं दलित वर्गो को सस्ता व शीघ्र न्याय सुलभ हुआ है जिससे व्यवस्था में लोगों की आस्था बढ़ी है और संविधान के अनुच्छेद 39 (क) में विहित मन्तव्य को पाने की दिशा में प्रगति हुयी है। लोक अदालतों ने जहां बड़ी संख्या में जन–मानस का ध्यान आकृष्ट किया है वहां उपभोक्ता फोरमों के माध्यम से लोगों में अपने उपभोक्ता अधिकारों के प्रति जागृति बढ़ी है। पारिवारिक न्यायालयों के माध्यम से पारिवारिक विघटन को रोकने में मदद मिली है। वहां न्याय पंचायतें स्थानीय स्तर पर तनाव घटाने का सशक्त माध्यम हैं। इस प्रकार कानूनी सहायता कार्यक्रमों ने एक आन्दोलन के रूप में गति पकड़ी है, कुछ कमियों के बावजूद ये कार्यक्रम लोगों को समान, सस्ता व शीघ्र न्याय दिलाने की दिशा में सुफल हो रहे है।

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश **न्यायमूर्ति आर0 एन0 मिश्रा** ने ठीक ही कहा है **''कुछ गलत कार्यो या कमियों से एक ऐसे आन्दोलन को बदनाम करना उचित नहीं है जो लोगों को त्वरित, सस्ता न्याय दिलाने तथा न्यायालयों पर मुकदमों के बोझ को कम करने के माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है''।**[1]

= = = =0= = = =

---

1. टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली नवम्बर 8, 1987 पृ0 8

उपसंहार

एक सभ्य समाज के लिये विधि का शासन आवश्यक है। लेकिन यह तभी संभव है जब सभी नागरिक कानून का आदर करें और उसे मानें। इसके लिये आवश्यक है जब आहत व्यक्तियों को कानून का संरक्षण मिले अन्यथा लोग अपने अधिकारो की रक्षा के अपने तरीके ढूंढ़ लेते हैं जो प्रायः हिंसा पर आधारित होते हैं। भारत में आतंकवाद प्रभावित अन्य राज्यों में यह प्रवृत्ति तेजी से देखने को मिल रही है। इसका सीधा अर्थ है व्यवस्था से न्याय की जो आशा लोगों को रहती है यदि वह पूरी नही होती तो लोगों का व्यवस्था के प्रति विश्वास उठने लगता है। अतः न्यायिक व्यवस्था को निष्पक्ष, प्रभावी और जन साधारण की पहुंच में होना चाहिये तभी समाज में व्यवस्था कायम रह सकती है अन्यथा राष्ट्र राज्य की विखण्डन की स्थिति आ सकती है। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति **ए0 एम0 अहमदी** का मत है **"हमारे देश में न्याय पालिका को मुख्य संरक्षक की भूमिका प्रदान की गयी है अतः न्यायपालिका अपने समक्ष आये वादों को हल करने के कार्य को नागरिकों के कानूनी अधिकारों के संरक्षण के साथ निभाती है, और इसलिये यह आवश्यक है प्रत्येक नागरिक के कानूनी अधिकारों का संरक्षण किया जाये।**[1]

हमारे संविधान की उद्देशिका न्याय समता, स्वाधीनता और बन्धुत्व का वचन देती है। ये अधिकार हमारे संविधान के भाग–3 में विस्तार पूर्वक सूचीबद्ध हैं। हमारा संविधान **मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा** (10 दिसम्बर, 1948) में वर्णित मानव अधिकारों में से अनेकों को औपचारिक मान्यता प्रदान करता है।

हर सभ्य समाज कुछ नैसर्गिक अधिकारों से शासित होता है। कोई भी अधिकार या तो प्रकृति द्वारा प्रदत्त नैसर्गिक अधिकार हो सकता है या देश के विधि निर्माता निकाय द्वारा प्रदत्त विधिक अधिकार। जब हम यह कहते है कि मानव अधिकार उस अर्थ में मौलिक अधिकार है जो प्रकृति ने हर मानव प्रणाली को दिये है तो इस बात से इंकार नहीं किया जा

---

1. न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी : 14 सितम्बर, 1991 को कानूनी सहायता पर आयोजित सेमिनार में, विधिक सहायता संवाद पत्र, जुलाई–दिसम्बर 1991

सकता कि ये सकारात्मक एवं विधि निर्माता निकाय द्वारा प्रदत्त अधिकार हो सकते है। जहां वे सकारात्मक विधि द्वारा मान्य होते है, वहां वे नैतिक एवं विधिक दोनों प्रकार के अधिकार होते है।

अतः सभ्य समाज का हर सदस्य या व्यक्तियों का समूह यह सुनिश्चित करने के लिये हकदार है कि उसका विधिक अधिकार किसी दूसरे के द्वारा केवल इसलिये न छीन लिया जाये कि वह कमजोर है। **"जिसकी लाठी उसकी भैंस"** वाली उक्ति चरितार्थ हो जायेगी, जहां शक्तिशाली व्यक्ति दण्डाभाव से दूसरे के अधिकार का आदर करने से इंकार कर सकता है, जहां व्यक्ति, व्यक्ति समूह क्रूर बल से दूसरे के अधिकारों को कुचल सकता है, उस दिन समाज सभ्य समाज नहीं रहेगा। अतः यदि हम एक व्यवस्थित सभ्य समाज में रहने की इच्छा करते हैं तो हमें दूसरों के अधिकारों का आदर करना सीखना होगा, न कि हम अपने अधिकारों का ही प्रख्यान करने की सोचें। अतः यह आवश्यक है कि हम अपने कर्तव्यों के प्रति भी जागरूक रहे। अधिकारों के प्रति जागरूक रहना ही काफी नहीं है।

भारत का संविधान भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और आर्थिक न्याय प्राप्त करने की आज्ञा देता है। न्याय उन चीजों और उद्देश्यों की प्राप्ति है जिनके लिये नागरिक हकदार हैं और होने चाहिये। गरीबी, उन चीजों से वंचित होना है जिन्हें रखने की आदमी सामर्थ्य रखता है या पाने के लिये हकदार है। भारत के संविधान में वे चीजे लेखबद्ध है जिन्हें पाने के लिये भारतीय नागरिक हकदार है। उन चीजों की प्राप्ति के लिये यह अनिवार्य है कि उन लक्ष्यों तथा उनके साथ जुड़ी बाध्यताओं के प्रति लोगों में जागरूकता आये। अतः भारत के संविधान के अन्तर्गत न्याय पाने के लिये उस न्याय तक अर्थात् उन प्राधिकरणों या निकायों तक पहुंचना जरूरी है जिन्हें न्याय अथवा वे चीजें देनी हैं जिनके लिये लोग हकदार हैं। उन तक पहुंचना तभी कारगर, उपयोगी और सार्थक होगा जब उन्हें पाना निश्चित और सुगम तथा समझना सरल हो।[1]

---

1. सव्य सांची मुखर्जी : संपादकीय विधिक सहायता संवाद पत्र, मई 1989 फरवरी 90

1958 में **विधि आयोग** ने अपनी 14वीं रिपोर्ट में निम्नलिखित अधिकथित किया था–''. . . . . . .**समानता विधिशास्त्र और न्याय प्रशासन की सभी आधुनिक प्रणालियों का आधार है . . . . .यदि कोई व्यक्ति अपने प्रति किये गये अन्याय के प्रतितोषण के लिये या अपने विरूद्ध लगाये गये आपराधिक आरोप से अपना बचाव करने के लिये न्यायालय में नहीं पहुंच सकता तो न्याय असमान हो जाता है और जो विधि उसकी सुरक्षा के लिये है वह निरर्थक हो जाती है, तथा अपने उद्‌देश्य में उस सीमा तक, असफल हो जाती है। जब तक कि न्यायालय फीस, वकीलों की फीस और मुकदमे के अन्य आनुषंगिक खर्चो के संदाय के लिये गरीबों को सहायता देने के लिये कोई व्यवस्था नहीं होती तब तक वह न्याय प्राप्त करने के अवसर की समानता से वंचित है।**''

विधि आयोग द्वारा 1958 में की गई सिफारिश उस समय तक निष्क्रिय बनी रही जब तक की संविधान में राज्य नीति के निदेशक तत्व के रूप में अध्याय 4 में संसोधन करके अनुच्छेद 39 (क) समाविष्ट नहीं कर दिया गया। संविधान का अनुच्छेद 30 क निम्नलिखित रूप में है–

39 (क) समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता :

''राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह, विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या अन्य किसी निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा''।[1]

---

1. भारतीय संविधान

उक्त अनुच्छेद को ध्यान पूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विधिक प्रणाली का उद्देश्य है सभी नागरिकों के लिये समान अवसर के आधार पर न्याय प्राप्त करना। अनुच्छेद में विधिक प्रणाली के माध्यम से न्याय प्राप्ति को बढ़ावा देने की धारणा पर दिया गया बल, लोक और जन कल्याण का आवश्यक संघटक है। इस प्रयोजन के लिये सभी को न्याय सुनिश्चित कराने के लिये उपयुक्त विधान या स्कीम या किसी अन्य रीति से विधिक सहायता प्रदान करना आवश्यक है। जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि न्याय पाने के अवसर से कोई नागरिक निर्धनता, अभाव या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण वंचित न रह जाये। अनुच्छेद में प्रयुक्त लचीले शब्दों में, उपयुक्त विधान या स्कीम या किसी अन्य रीति से जो ठीक और उचित समझी जाये, निशुल्क विधिक सहायता अनुध्यात है।

अतः विधिक सहायता यथा स्थिति केन्द्रीय या राज्य स्तर पर विधान बनाकर या उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रख्यापित किसी स्कीम के अन्तर्गत या किसी अन्य रीति से अथवा उपाय करके जो समाज के जरूरत मन्द निर्धन और निचले तबके के लोगों को विधिक सहायता सुनिश्चित करने के लिये उपलब्ध हो, दी जा सकती है। यह बताना प्रासंगिक होगा कि सभी को न्याय प्राप्त कराने केलिये जो आवश्यक है वह है विधिक सहायता न कि अनिवार्यतः वित्तीय सहायता। यदि विधिक सहायता के बिना ही वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है या किसी ऐसी रीति में दी जाती है जिससे गरीबों को विधिक सहायता देने का उद्देश्य प्राप्त नहीं होता तो ऐसी वित्तीय सहायता से संविधान के अनुच्छेद 39 क का प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

हमारे देश में जिस समय हमारे पूर्वजों ने देश को संविधान दिया, उस समय सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय सुलभ कराने का संकल्प उठाया। संकल्प उठाना एक बात है, संकल्प का कार्यान्वयन प्रभावी रूप से हो यह एक दूसरी ही बात है। संकल्प

हम बड़ी–बड़ी बातों का उठाते हैं किन्तु बहुधा हममें वह अन्तर्दृष्टि नहीं होती, वह कल्पना नहीं होती जिससे हम यह देख सकें या परिकल्पित कर सकें कि सपना साकार कैसे किया जाये। इसके बाद भी परिकल्पना को मूर्त रूप देना सपने को साकार बनाना यह एक ऐसा चरण है जिसके लिए उत्साह, परिश्रम और कर्तव्यनिष्ठा की परम आवश्यकता पड़ती है।

दुर्भाग्य से आज पारम्परिक विधि पद्धति इतनी अधिक खर्चीली एवं दुरुह हो गयी है कि जनसाधारण (जो गरीबों का समुदाय है) उससे लाभान्वित नहीं हो पा रहा है। बड़ी संख्या में पुरुष, महिलायें एवं बच्चे जो हमारी जनता की बहुत बड़ी संख्या के भाग है, गरीबी की निम्न स्थिति में अर्धमानवीय जीवनयापन कर रहे हैं। पूर्णरुप से नष्ट करने वाली गरीबी ने उनकी कमर तोड़ दी है और उनकी सामान्य जीवन शक्ति को कुंठित कर दिया है। उनका साहस समाप्त हो चुका है, लड़ने व अपने अधिकारों के प्रति जागरुक रहने की इच्छा भी मृत्युवत हो गयी है, यद्यपि उनके पक्ष में बहुत सी कल्याणकारी एवं लाभदायक विधायें बनाई गयी हैं किन्तु वे अपने अधिकारों से भिज्ञ नहीं है तथा जहां पर वे अपने अधिकारों को समझते हैं वहां अपने अधिकारों को मांगने और दृढ़तापूर्वक कहने का उनमें साहस एवं संकल्प शक्ति नहीं है क्योंकि वे साधनहीन हैं। गरीबों की विधिक समस्याओं की परख की गई तब यह निष्कर्ष निकला कि यदि उनकी समस्याओं के समाधान हेतु कोई हल नहीं निकाला जाता तो स्थिति खतरनाक एवं विस्फोटक हो सकती है तथा यही गरीब एवं समाज के कमजोर वर्ग कुंठा एवं निराशा के कारण विधिक तरीकों से भिन्न ऐसे तरीके अपना सकते हैं जो लोकतन्त्र के लिए घातक हो सकते हैं।

गरीब एवं समाज के कमजोर वर्ग के लोगों की विधिक समस्याओं के समाधान हेतु भारतीय संविधान में 42वां संशोधन सन् 1976 ई0 को किया गया जिसका प्रभाव दिनांक 3–1–1977 से है।

संविधान के अनुच्छेद 39 क के अनुसरण में ही उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के कार्यालय ज्ञाप सं0 7565 सात–अ0 न्या0 546–80 दिनांक 24 जनवरी, 1981 के अधीन 'उत्तर प्रदेश कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड' का गठन किया गया था जिससे राज्य सरकार के अनुमोदन से उसके द्वारा बनाई गयी योजना के अनुसार राज्य में समाज के निर्बल वर्ग को निःशुल्क कानूनी सेवा उपलब्ध कराने के लिये कानूनी सहायता कार्यक्रम का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन किया जा सके।

यहां हम जिस निःशुल्क कानूनी सहायता की बात कर रहे हैं वह निःशुल्क कानूनी सहायता उस निर्धन व्यक्ति की विधिक समस्या से जुड़ी है जो उसका हल अपनी निर्धनता के कारण नहीं ढूंढ़ पा रहा है। अक्सर यह आप देखेंगे कि गरीब, निर्धन, असहाय और दुर्बल लोगों पर धनवान, शक्तिमान और बलवान हावी हो जाते हैं। उधर एक ओर निर्धन की सबसे बड़ी कमजोरी है कि उसके पास धनवान से मुकदमा लड़ने के लिए धन नहीं है तो दूसरी ओर धनवान पक्ष के पास धन का बाहुल्य ही उसकी आन्तरिक मजबूती का कारण बन जाता है। अब, जब दोनों पक्षों मे इतनी असमानता है तो जाहिर बात है कि दोंनो में से जो निर्बल पक्ष है वह मुकाबले के लिए मैदान में नहीं उतर सकेगा। जो दुर्बल पक्ष है उसमें न साहस है और न सामर्थ्य है कि वह मैदान मे उतरे और अपने पर किए हुए अन्याय का प्रतिकार मांगे। दूसरी ओर जो धनवान पक्ष है वह अपने धन के बल पर, अपनी शक्ति के सामर्थ्य पर ताल पर ताल ठोंकता रहता है। वह अच्छी तरह जानता है कि निर्धन और गरीब विपक्षी धन के अभाव में, शक्ति के अभाव में एवं विधि अज्ञानता के कारण न तो मैदान में उतरने का साहस रखता है और अगर उतरने की जुर्रत भी की तो धनहीन, सामर्थ्यहीन तथा विधि से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी पराजय निश्चित ही होगी।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए और संविधान में उठाए गए संकल्प को पूरा करने हेतु जब संविधान में पुनः संशोधन द्वारा गरीबों को विधिक सहायता हेतु प्राविधान बनाया गया तब देश में कानूनी सहायता कार्यक्रमों की स्थापना और संचालन हेतु 'केन्द्रीय विधिक सहायता स्कीम कार्यान्वयन समिति' उच्चतम न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधिपति की संरक्षकता में निःशुल्क न्याय दिलाने के लिए स्थापित हुई। इसी प्रकार लगभग प्रत्येक प्रदेश में प्रदेश स्तर पर कानूनी सहायता और परामर्श बोर्ड का गठन किया गया जिनके मुख्यालय प्रदेश की राजधानी में ही प्रायः है। प्रत्येक जनपद में दी जा रही निःशुल्क कानूनी सहायता की योजना को समुचित मार्गदर्शन प्रदेश के मुख्यालय से मिलता है और प्रत्येक जनपद में जो दीवानी न्यायालय है उनके जनपद न्यायाधीश को सभापति के रूप में कार्य करने का और जनपद में निःशुल्क कानूनी सहायता कार्यक्रमों के कुशल संचालन का कार्य सौपा गया है। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति **श्री पी0 एन0 भगवती**, का मत है **''परम्परागत विधिक सेवा कार्यक्रम उन निर्धन व्यक्तियों को जो उन्हें हुई विधिक क्षति से न्यायिक राहत चाहते हैं, विधिक सहायता प्रदान करने के लिए हैं। किन्तु यह हमारे देश में निर्धनों की विनिर्दिह आवश्यकताओं और उनकी विशिष्ट समस्याओं की पूर्ति करने के लिए बिल्कुल पर्याप्त नहीं है''**।

अतः जब जनपद न्यायाधीश के सभापतित्व में प्रत्येक जनपद मे निःशुल्क कानूनी सहायता कार्यक्रम का संचालन आरंभ हुआ तो सबसे पहली आवश्यकता वादकारियों को इसकी जानकारी कराने से सम्बद्ध थी। प्रत्येक नागरिक को इसकी जानकारी होना आवश्यक था कि उसके जनपद में ही दीवानी न्यायालय में निःशुल्क कानूनी सहायता कक्ष है जहां पर जाकर वह निःशुल्क सहायता प्राप्त कर सकता है। जाहिर बात है कि इसका दुरुपयोग रोकने के लिए कुछ औपचारिकता का निर्वहन आवश्यक था। अतः यह व्यवस्था की गई कि ऐसे

निर्धन व्यक्ति ही कानूनी सहायता के पात्र होंगे जिनकी वार्षिक आय 6000/— रू0 से कम हो वर्तमान में यह सीमा 25000/— रू0 है। परन्तु आर्थिक आय की सीमा तब लागू नहीं होगी जब पक्षकार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, विमुक्त जाति और अस्थिरवासी जनजाति के हों या महिला या बच्चे हों। इसी प्रकार सेना के तीनों अंगों तथा पैरा मिलिटरी के सभी प्रतिष्ठानों के उन समस्त कर्मचारियों एवं अधिकारियों को, जो सेकेण्ड लेफ्टीनेंट या उनके समकक्ष कमीशंड अधिकारी वर्ग के नीचे के वर्ग में आते हैं, आय की सीमा लागू नहीं होती।

सभापति (जनपद न्यायाधीश) दीवानी, फौजदारी और राजस्व के मुकदमों के लिए उत्साही एवं कुशल अधिवक्ताओं की सूची बनाते हैं जिनका अनुमोदन मुख्यालय से होता है। निर्धन व्यक्ति जब कानूनी सहायता हेतु उपस्थित होता है तो उसके मुकदमे के प्रकार को देखते हुए उसी के अनुरुप चयनित अधिवक्ता की सेवाएं उसे उपलब्ध कराई जाती हैं। अधिवक्ता की फीस जिला समिति आवंटित राशि में से उपलब्ध करा देती है। अनेक बार ऐसा भी अवसर आता है जबकि उत्साही अधिवक्ता स्वयं निःशुल्क कानूनी सहायता देने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

उत्तर प्रदेश कानूनी सहायता और परामर्श 1981 के प्रस्तर 17 के अनुसार बोर्ड ने समाज के निर्बल वर्ग के लिए निःशुल्क कानूनी सेवा की व्यवस्था करने का ढंग और उसकी रीति विहित करने की एक योजना बनाई तथा राज्य सरकार ने उक्त योजना का अनुमोदन किया। योजना के अन्तर्गत बोर्ड की शक्ति एवं कृत्य बहुत ही विस्तृत हैं। बोर्ड के तमाम कृत्यों में से एक कृत्य विवादों का स्वेच्छिक निपटारा करने के प्रयोजनार्थ विभिन्न क्षेत्र में लोक अदालत लगाने का प्रबन्ध करना भी है।

उत्तर प्रदेश राज्य कानूनी सहायता और परामर्श (प्रक्रिया) योजना 1981 के अनुसरण में ही प्रत्येक जिले में कानूनी सहायता एवं परामर्श समिति का गठन किया गया।

'विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987' के लागू होने के बाद जिला विधिक प्राधिकरण कानूनी सहायता का कार्य करते हैं। कानूनी सहायता कार्यक्रमों का एक प्रमुख और लोकप्रिय साधन लोक अदालतों का आयोजन है। **लोक अदालतों** की परिकल्पना हमारे देश में प्रचलित **'पंच परमेश्वर'** की पवित्र भावना के आधार पर की गयी। न्यायालयों में विचाराधीन लघुस्वरूपीय अथवा भविष्य में उद्भूत होने वाले विवादों को निपटाने हेतु जनपद के तहसील मुख्यालयों अथवा विकास खण्डों पर लोक अदालतों का आयोजन जनपद न्यायाधीश के सभापतित्व में किया जाता है। न्यायालयों में विचाराधीन या भविष्य में उद्भूत होने वाले वादों के निस्तारण हेतु पीठों का गठन किया जाता है। प्रत्येक पीठ में 3 से 5 सदस्य होते है। एक सामाजिक कार्यकर्ता, एक अधिवक्ता, एक सेवारत अथवा सेवानिवृत्त अधिकारी, एक अध्यापक तथा एक महिला समाज सेविका पीठ के गठन में आवश्यक सदस्य होते है। किसी वाद के निस्तारण हेतु सभी सदस्य पक्षों को सुधि समझौते के आधार पर निपटाने का परामर्श देते है। सदस्यों पंचों के परामर्श पर ही वाद का निस्तारण आधारित होता है। इसलिये वे अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन में जागरूक रहते हैं तथा उनका शुद्ध अन्तःकरण न्याय करने के लिये प्रेरित करता है। उनके हृदय में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि दोनों पक्षों के कथनों को सुनने के पश्चात ही समझौता कराने का प्रयास किया जाय जिससे न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय से दोनों पक्षकार आपस के विद्वेश को सदा–सदा के लिए विस्मृत कर दें तथा आल्हादकारी वातावरण का प्रसार हो जाय। पंचों द्वारा इस प्रकार का वातावरण सृजित किये जाने का प्रयास किया जाता है कि पक्षों के मनोमालिन्य आपस में गले मिलने से प्रेमाश्रुओं से धुल जाय।

लोक अदालतों में सदस्यों के परामर्श के आधार ही पक्षगण आपस में सन्धि करने की सहमति देते हैं। सभी सदस्यों के लिए विधिक ज्ञान आवश्यक नहीं होता है इसलिए

पारम्परिक विधि पद्धति का अनुपालन नहीं हो पाता है बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का संबल लिया जाता है। **प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त** मुख्यतः चार हैः— **प्रथम** यह कि जिस किसी व्यक्ति के नागरिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो उसे पूर्ण सुनवाई हेतु नोटिस दी जानी चाहिए। **द्वितीय** यह कि उसे अपनी प्रतिरक्षा में सुनवायी का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए, **तृतीय** यह कि जिस अधिकरण द्वारा सुनवाई की जा रही हो वह निष्पक्ष होनी चाहिए तथा किसी भी पक्षकार से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उसका कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिए। **चतुर्थ** यह कि जिस प्राधिकारी द्वारा सुनवाई की जाय उसके लिये आवश्यक होता है कि वह सद्विवेक से कार्य करे न कि निरंकुश दृष्टिकोण से।

लोक अदालतों में जनपद के प्रतिष्ठित नागरिकों की सूची पहले से बना ली जाती है और सुविधानुसार लोक अदालत की प्रत्येक बेंच में तीन या चार प्रतिष्ठित नागरिक बैठते है और दोनों पक्षों को सुनकर इस बात को जानने का प्रयास करते है कि आखिर कठिनाई कहां पर है— गुत्थी कहां नहीं सुलझ पा रही है लोक अदालत में सामान्य न्यायालयों के लिए निर्धारित जटिल प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक नहीं होता है बल्कि सत्यता की तह तक पहुंचकर वास्तविक न्याय दिलाने का प्रयास किया जाता है। अक्सर ही देखा गया है कि पक्षकार जब आमने सामने बैठते हैं और जिम्मेदार नागरिक उनके विवाद को हल करने का प्रयास करते है तो मामला निपट जाता है। यही नहीं मामला हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है क्योंकि दोनों पक्ष अपने बैर—भाव को भुलाकर आपस में सन्धि कर लेते हैं। इस प्रकार के सन्धि पत्र न्यायालय में प्रस्तुत कर दिए जाते हैं और यह न्यायालय जहां यह वाद लम्बित है, संधिपत्र के अनुसार विधि की प्रक्रिया के अधीन सत्रूप निर्णय दे देता है।

कभी—कभी लोक अदालतों में ऐसे भी मामले आते है जहां वाद न्यायालय में लम्बित नहीं है किन्तु दोनों पक्ष अथवा उनके हितैषी यह आन्तरिक कामना रखते हैं कि

समस्या सुलझ जाए। इस प्रकार के वाद प्रायः पारिवारिक होते है। पति–पत्नी के बीच झगड़े, भाई–भाई के बीच झगड़े, पड़ोसियों के बीच मनमुटाव इत्यादि अनेक ऐसे मामले हैं जिनमें चिनगारी धधक रही है और कभी भी ज्वाला बनकर दोनों पक्षों को जला सकती है। ऐसे अनेक मामले लोक अदालतों के माध्यम से निपटाए गए हैं और दोनों पक्ष फिर से अपनी पुरानी प्रसन्नता लेकर वापस लौटते है। यदि साधारण प्रक्रिया चलती रहती है तो इन वादों के निस्तारण में काफी लम्बा समय खिच जाता है किन्तु शिविर के माध्यम से तहसील स्तर पर आयोजित लोक अदालतों में वादों का निस्तारण करने से, **''न्याय चला निर्धन से मिलने''** के आधार पर वाद सुलह–समझौते के द्वारा वादकारी को अपने ग्राम से जिला मुख्यालय तक पहुंचने में जो व्यय व अन्य कठिनाई का सामना करना पड़ता है उससे भी वादकारी को राहत मिल जाती है। अब जिला स्तर पर स्थायी लोक अदालतें भी गठित हो चुकी हैं।

लोक अदालतों के माध्यम से मोटर दुर्घटनाओं से सम्बन्धित प्रतिकर के वादों की अधिक संख्या में निर्णीत कराए जाने का प्रयास किया गया है जिससे कि घायल व्यक्तियों को अथवा दुर्घटना में हुए मृतक के आश्रितों को जल्द से जल्द प्रतिकर की राशि दिलाई जा सके।[1] लोक अदालतों के माध्यमों से चेतना का, उत्साह का, और समर्पण का संकल्प पूरा करने की एक नई लहर देश भर में फैल रही है। निर्धन के लिए, असहाय के लिए और असमर्थ के लिए यह निश्चित ही एक बहुत बड़ा सामाजिक और विधिक योगदान है जिसका संकल्प हमारे पूर्वजों ने देश के संविधान में उठाया था।

उत्तर प्रदेश में 1981 से 2001 तक कुल 5328 लोक अदालतें लगायी जा चुकी हैं। जिनमें 4126169 मुकदमें निस्तारित किये गये। जिसमें 51042 मोटर दुर्घटना प्रतिकर से सम्बन्धित मामले, 88166 वैवाहिक वाद थे। लोक अदालतें उच्च न्यायालय इलाहाबाद तथा लखनऊ खण्डपीठ में भी लगायीं गयीं।

1. क्विक जस्टिस, एडीटोरियल, हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली अगस्त 26, 1987

हमीरपुर जनपद में लोक अदालतें 1985 से लगना प्रारम्भ हुईं और 2001 तक कुल 54 लोक अदालतें लगायी गयीं जिनमें 26 हजार से अधिक वादों का निस्तारण किया गया।

हमीरपुर जनपद में 54 लोक अदालतों में मोटर दुर्घटना प्रतिकर वादों की संख्या 193 रही। 1981 से 2001 तक लोक अदालतों से लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या पचास हजार से अधिक थी। इनमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग, स्त्रियां, बच्चे एवं अल्पसंख्यक वर्ग के व्यक्ति भी शामिल हैं।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के अन्तर्गत जनता में जाग्रति लाने में उपभोक्ता फोरम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उपभोक्ताओं के हितों के संरक्षण के लिए विश्व के प्रायः सभी देश प्रयासरत हैं। भारत में भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम लाया गया। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) देश के सामाजिक, आर्थिक कानूनों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण एवं सशक्त प्रयास है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को बेहतर संरक्षण प्रदान करना है। यह अधिनियम क्षतिपूरक स्वरूप का है। उपभोक्ताओं की शिकायतों को शीघ्र व सरल तरीके से कम खर्च में दूर करना इस अधिनियम का एक प्रमुख उद्देश्य है। जम्मू कश्मीर को छोड़कर अधिनियम भारत के सभी राज्यों में लागू है।

उत्तर प्रदेश में इस अधिनियम के तहत व्यापक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इस अधिनियम में निहित शक्ति का प्रयोग करके उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदेश के प्रत्येक जनपद में जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम तथा राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग की स्थापना की गई है।

उत्तरांचल के गठन के पश्चात उत्तर प्रदेश में कुल 70 जिले शेष रह गए है, वर्तमान में प्रदेश के 70 जिलों में 74 जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम स्थापित है। चार जनपदों क्रमशः लखनऊ, आगरा, मुरादाबाद तथा बरेली में वादों की अधिकता के कारण एक-एक अतिरिक्त जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम की स्थापना की गई है। राज्य की राजधानी लखनऊ में एक उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग स्थापित है, इन जिला फोरमों व राज्य आयोग में एक अध्यक्ष तथा एक पुरूष व एक महिला सदस्य होते हैं।

उत्तर प्रदेश के जिला फोरमों में प्रारम्भ से सितम्बर, 2001 तक कुल 263824 वाद पंजीकृत हुए जिनमें से कुल 196892 वादों का निस्तारण हुआ, इस प्रकार जिला फोरमों में वादों के निस्तारण का प्रतिशत लगभग 74 रहा। उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग में प्रारम्भ से सितम्बर 2001 तक 2729 शिकायतों तथा 29191 अपीलें दर्ज की गई जिनमें से 1929 शिकायतों व 6188 अपीलों का निस्तारण हुआ, इस प्रकार उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग में सितम्बर 2001 तक कुल 31920 मामले दर्ज हुए जिनमें से 7617 निस्तारित हुए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहां उत्तर प्रदेश के जिला फोरमों में वादों के निस्तारण का प्रतिशत संतोषजनक रहा है वहीं **उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग** द्वारा मामलों के निस्तारण का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम रहा है, इसका एक प्रमुख कारण 70 जिलों वाले इस बड़े प्रदेश में मात्र एक राज्य आयोग का होना है।

हमीरपुर जनपद में **उपभोक्ता संरक्षण फोरम** की कार्यप्रणाली 1996 से प्रारम्भ हुयी और 2001 तक इस फोरम ने 907 वादों का निस्तारण किया जिसमें विविध प्रकार के मुकदमें शामिल थे। विद्युत विभाग से सम्बन्धित 280, दूरसंचार सम्बन्धी 110, शिक्षा विभाग से सम्बन्धित 33, डाक विभाग से सम्बन्धित 48, बैंक सम्बन्धी 27, जीवन बीमा से सम्बन्धित 54, मोटर दुर्घटना से सम्बन्धित 140, स्वास्थ विभाग से सम्बन्धित 23, जलसंस्थान से सम्बन्धित 32, क्रय की गयी वस्तुओं से सम्बन्धित 182 तथा अन्य 178 निस्तारित वाद थे।

हमीरपुर जनपद में **पारिवारिक न्यायालय** के माध्यम से भी कानूनी सहायता प्रदान की गयी। उत्तर प्रदेश पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984 बनने तथा 1995 में उत्तर प्रदेश पारिवारिक न्यायालय नियमावली के निर्माण के बाद 1996 में हमीरपुर जनपद में पारिवारिक न्यायालय की स्थापना हुयी। वर्ष 2001 तक इस न्यायालय में कुल 248 वाद आये। जिसमें से 160 वाद निष्तारित हुये जिनमें तलाक सम्बन्धी मामले 69 तथा पुर्नस्थापना सम्बन्धी 91 मामले थे।

उत्तर प्रदेश में 1998 से 2001 तक कुल 678 **विधिक साक्षरता शिविर** लगाये गये। हमीरपुर जनपद में 1998 में पहला विधिक साक्षरता शिविर लगाया गया तबसे 2001 तक कुल 11 विधिक साक्षरता शिविर लगाये जा चुके है। जिनमें 14299 व्यक्ति लाभ उठा चुके हैं। इनमें 9696 पुरूष तथा 1887 स्त्रियां थी तथा 2716 बच्चे थे। लाभान्वित पुरूषों का प्रतिशत 67.8 तथा स्त्रियों का 13.19 तथा बच्चों का 18.99% रहा।

देश के अन्य भागों की तरह हमीरपुर जनपद में भी न्याय पंचायतें संक्रमण के दौर से गुजर रही है इनमें जन रूचि न के बराबर है अतः इनसे सम्बन्धित अभिलेख भी जिला विधिक सेवा प्राधिकरण में उपलब्ध नहीं हैं।

हमीरपुर जनपद में कानूनी सहायता कार्यक्रमों के सम्बन्ध में समाज के विभिन्न वर्गो के दृष्टिकोण को जानने के लिये दो **दृष्टिकोण मापन स्केल** बनाये गये। पहले स्केल के द्वारा **कानूनी सहायता कार्यक्रमों** के प्रभाव का अध्ययन सर्वे के माध्यम से किया गया। इस उद्देश्य से बनाये गये समूह में न्यायाधीश/न्यायिक अधिकारी, अधिवक्ता स्थानीय प्रशासन, न्यायिक प्रशासन तथा वादी शामिल थे।

यह सर्वे हमीरपुर जनपद की तीनों तहसीलों हमीरपुर, राठ एवं मौदहा में किया गया। इस स्केल में 35 कथन थे जिनमें इन वर्गो का झुकाव सहमति और असहमति के आधार

पर लिया जाना था यह सर्वे 20 न्यायिक अधिकारियों, 100 अधिवक्ताओं तथा स्थानीय प्रशासन व न्यायिक प्रशासन से जुड़े 50–50 व्यक्तियों तथा 100 वादियों पर किया गया। इस समूह का कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति औसत झुकाव 70% रहा जिसमें न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं तथा न्यायिक प्रशासन से जुड़े व्यक्तियों का झुकाव औसत से ऊपर तथा स्थानीय प्रशासन और वादियों का झुकाव औसत से नीचे रहा।

दूसरा **दृष्टिकोण मापन स्केल** कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में समाज के **विविध वर्गो की राय** से सम्बन्धित था। इस समूह के सर्वे के लिये 5 उपसमूह न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस, प्रशासन एवं सामान्य जनता चयनित किये गये। इस स्केल में भी 35 कथन थे। हमीरपुर जनपद की तीनों तहसीलों में इस स्केल के अन्तर्गत 20 न्यायिक अधिकारियों 100 अधिवक्ताओं 20 प्रेस से सम्बन्धित व्यक्तियों 20 प्रशासन से सम्बन्धित लोगों तथा 50 सामान्य जनता से सम्बन्धित लोगों पर सर्वे किया गया। इस समूह की राय कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति सकारात्मक थी इस समूह का औसत 69% था जिनमें न्यायिक अधिकारियों और अधिवक्ताओं की सकारात्मक राय औसत से ऊपर थी जबकि शेष तीनों वर्गो की औसत से नीचे।

कुल मिलाकर समाज के विभिन्न वर्गों का दृष्टिकोण कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति सकारात्मक एवं पक्षमय है।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति समाज में उत्साह भी है और संदेह भी। ये कार्यक्रम कानूनी साक्षरता बढ़ाने में सफल रहे हैं और समाज के दलित और शोषित वर्गों में अपने विधिक अधिकारों के प्रति नई चेतना जगाने का प्रयास कर रहे हैं। यह बात हमीरपुर जैसे उत्तर प्रदेश के पिछड़े क्षेत्र में इनकी कार्य प्रणाली का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाती है। इन कार्यक्रमों में लोक अदालतें सर्वाधिक लोकप्रिय और सफल रही हैं। विधिक सेवा

प्राधिकरण अधिनियम 1987 पारित होने के बाद इन अदालतों को कानूनी आधार भी मिल गया है। यह समाज में न केवल सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने में सफल रही हैं बल्कि मुकदमों का बोझ कम करने में आश्चर्यजनक रूप से सफल रही हैं। **न्यायमूर्ति गुमानमल लोढ़ा** ने तो इन्हें **'अलादीन के चिराग'** तक की संज्ञा दी हैं। उपभोक्ता संरक्षण फोरम लोगों के उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा करने में बड़ी सीमा तक सफल रहे हैं। हमीरपुर जनपद में भी इनकी कार्य प्रणाली संतोष जनक कही जा सकती है। पारिवारिक न्यायालयों ने पारिवारिक विवादों को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में लोगों के मन में पर्याप्त संदेह भी उपजे हैं। भारत की न्यायपालिका पर शायद दुनिया भर की अदालतों के मुकाबले सबसे ज्यादा बोझ है। लोक अदालतों का गठन इस उद्देश्य से किया गया कि वे न्याय की तलाश को ज्यादा सरल, सहज और ज्यादा अनौपचारिक बनायेंगी लेकिन इन अदालतों के सम्बन्ध में कुछ संदेह पैदा हुये, शुरू में कुछ महात्वाकांक्षी न्यायिक अधिकारियों ने अपने बड़े अधिकारियों को खुश करने के लिये मामलों की लम्बी चौड़ी सूची बनायी इनके आयोजन में बड़ा दिखावा किया गया, कुछ राज्यों में तो लोक अदालतें तमाशा बनकर रह गयीं अधिकतर उनमें वे मुकदमें लाये जाते थे जिनमें समझौता या निर्णय पूरा होने वाला था।

सुप्रीम कोर्ट के पूर्व मुख्य न्यायाधीश **न्यायमूर्ति रंग नाथ मिश्रा** ने जयपुर में 1988 में स्वीकार किया था **''लोक अदालतों में मामलों की सूची बढ़ा चढ़ाकर बनायी जाती है और इनमें बड़ा आडम्बर होता है''**।[1]

विधि आयोग के पूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति **डी० ए० देसाई** ने भी **लोक अदालतों को आंकड़ों का खेल बनाने से बचने की चेतावनी दी थी।**[2]

---

1. इण्डिया टुडे 15 जनवरी 1987 पृ0 99
2. इण्डिया टुडे 15 जनवरी 1987 पृ0 100

विधिक सेवा प्राधिकरण 1987 के द्वारा लोक अदालतों को न्यायिक अधिकार दिया गया है। इस अधिनियम के सन्दर्भ में अनेक न्यायाधीशों ने अनेक संदेह व्यक्त किये हैं।

सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश बी0 के0 कृष्ण अय्यर को विधेयक के उस प्रावधान पर गंभीर आपत्ति थी जिसमें कहा गया था कि केंद्रीय, प्रांतीय, और जिला स्तरीय प्राधिकरण केन्द्र और राज्य सरकार के सामान्य निर्देशों के अनुसार कार्य करेंगे, उनका कहना था कि इन अदालतों के जजों की नियुक्ति कार्यपालिका की ओर से होगी।[1]

इस प्रकार वे हाईकोर्ट की निगरानी से बाहर हो जाएंगे, इस कानून के तहत नियुक्त जिला स्तर का साधारण अधिकारी भी सुप्रीम कोर्ट से किसी मामले को लेकर लोक अदालत को सौंप सकता है, और लोक अदालत के फैसले को कहीं भी चुनौती नहीं दी जा सकेगी।[2]

लेकिन दिल्ली हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश **योगेश्वर दयाल** का कहना है कि ऐसा नहीं होगा वे कहते हैं, **''न्यायपालिका की आजादी को कई खतरा नहीं है आखिरकार आपको किसी–न–किसी पर तो भरोसा करना ही होगा''** पर कई पूर्व न्यायाधीश इस राय से सहमत नहीं है इनमें सच्चर भी है जो कहते हैं कि न्यायिक अधिकारियों को निर्देश देने का अधिकार सरकार के हाथ में सौंपना खतरनाक है और यह न्यायपालिका तथा विधायिका को अलग–अलग रखने की अवधारणा के खिलाफ है विधि आयोग के अध्यक्ष देसाई को भी लगता है कि इससे न्यायपालिका के मामले में कुछ हस्तक्षेप हो सकता है।

केंद्रीय विधिमंत्री शिवशंकर और **'सिलास'** के अध्यक्ष तथा सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश रंगनाथ मिश्र इस तरह के आरोपों को फालतू बताते हुये श्री **मिश्र** कहते है, **''हर फैसला सर्वानुमति से होगा जब कोई पक्ष सहमत न हो तब तो यह मामला फिर अदालत में चला ही जाता है जब तक दोनों पक्ष राजी नहीं होते फैसला नहीं होता ऐसे में फैसले की प्रक्रिया को प्रभावित नहीं किया जा सकता है''**।[3]

---

1. इण्डिया टुडे 15 जनवरी 1987 पृ0 100
2. इण्डिया टुडे 15 जनवरी 1987 पृ0 100
3. इण्डिया टुडे 15 जनवरी 1987 पृ0 100

देसाई लोक अदालतों को वैधानिक अधिकार देने के पक्ष में नहीं वे कहते हैं **''एक बार ऐसा हो जाने पर लोक अदालतों का अनौपचारिक माहौल समाप्त हो जाएगा और आम अदालतों जैसे लफड़े चालू हो जाएंगे मुझे सबसे बड़ी आशंका तो यह लगती है कि इससे अलग नाम वाली एक समांतर अदालती व्यवस्था बन जाएगी''** इस पर न्यायमूर्ति मिश्र का जबाव है ''लोक अदालतों का गठन न्यायिक प्रक्रिया को मदद पहुंचाने के लिए हुआ है न कि इसे चौपट करने के लिए''।[1]

न्यायमूर्ति दयाल निचले स्तर पर लोक अदालतों के कामकाज से इतने खुश हैं कि वे इसे बोझ से दबे हाईकोर्ट को मुक्त करने के लिए ऊपरी स्तर तक ले जाने की वकालत करते हैं वे कहते है कि 50 फीसदी मामले तो सरकार और सरकारी एजेंसियों के खिलाफ ही है मिश्र भी लोक अदालत वाले प्रयोग को हाईकोर्ट स्तर तक ले जाने के पक्षधर हैं।

लोक अदालत का प्रयोग अभी शुरूआती अवस्था में ही है अभी तो यही स्थिति है कि साधारण मुकदमें को भी सुप्रीम कोर्ट तक से पार पाने में 15 साल लग ही जाते है। लोक अदालतें मजे से हर साल 15 से 20 लाख छोटे विवादों को निबटा सकती है। मिश्र कहते है कि ऐसा होने पर ही अदालतों का पुराना बोझ कुछ कम होगा और न्याय पालिका की कुशलता बढ़ पाएगी। वे कहते है कि **''जब आपसी समझौता ही नियम सा बन जाएगा तो लोगों के रुख में भी बदलाव होगा''**। इतना आगे तक सोच लेना तो शायद कुछ ज्यादा ही आस लगा बैठना होगा, पर अदालतों का बोझ कम करने की इन कोशिशों को एक मौका तो जरूर दिया जाना चाहिए।

उपभोक्ता संरक्षण फोरम भी आलोचना का केन्द्र बने है। यह कहा जाता है कि सरकार की ओर से इन फोरमों को सक्रिय बनाने में रूचि नहीं ली जाती। इनमें न्यायिक भ्रष्टाचार पनपने व लेनदेन के आधार पर मामलों के निपटारे की शिकायतें पायी गयी है।

---

1. इण्डिया टुडे 15 जनवरी 1987 पृ0 100

राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस रस्म-अदायगी बन गया है और उपभोक्ता अधिकारों के प्रति समाज के गरीब और कमजोर वर्गों में चेतना जगाने का प्रयास करने में इनकी कोई रूचि नहीं है।

पारिवारिक न्यायालय का कार्यक्षेत्र केवल एक मिलियन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में ही है। ये न्यायालय गरीब और शोषित जनता के मन में अपनी उपयोगिता सिद्ध करने में अधिक सफल नहीं हो सके है। परिवार परामर्श केन्द्र बहुत कम संख्या में हैं।

विधिक साक्षरता शिविर कानूनी साक्षरता के प्रसार का एक अच्छा माध्यम है लेकिन धनाभाव के कारण ये पर्याप्त संख्या में नहीं लगाये जा रहे हैं जितनी भी आवश्यकता है। न्याय पंचायतें अपनी गुटबन्दी और पक्षपात के कारण अप्रसांगिक हो रही हैं।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों की न्यायिक व्यवस्था में भूमिका के उक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि ये कार्यक्रम भारत की न्यायिक व्यवस्था में एक अभिनव प्रयोग के रूप में हैं और निरन्तर उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। इनकी भूमिका के व्यवहारिक अध्ययन के लिये उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के हमीरपुर जनपद जैसे क्षेत्र का चयन किया गया जिसमें गरीब और दलित जनसंख्या पर्याप्त मात्रा में है और दुर्गम क्षेत्रों में निवास करती है। इस क्षेत्र में कानूनी सहायता कार्यक्रमों के अध्ययन से स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश लोग इन कार्यक्रमों के पक्ष में है व रूचि ले रहे हैं। लोकप्रियता की दृष्टि से लोक अदालतों का स्थान सबसे ऊपर है उसके बाद उपभोक्ता संरक्षण फोरम का स्थान आता है अन्य साधन अभी अपेक्षित भूमिका का निर्वाह नहीं कर सके हैं। सामान्य मत यह है कि इन कार्यक्रमों को जन–जन तक पहुंचाने में और अधिक गम्भीर प्रयासों की आवश्यकता है। इन कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने के लिये विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित लोगों के अध्ययन एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर अनेक सुझाव दिये गये हैं।

कानूनी सहायता कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने के सुझाव :

श्री बठूला बेंक्टेश्वर राव ने कारगर विधिक सहायता एवं सलाह को कारगर बनाने के लिये निम्नांकित सुझाव दिये है।[1]

प्रथम — सब राज्यों में जिनके अन्तर्गत संध राज्य क्षेत्र भी हैं, एक सी पद्धति चलाने के लिए केंद्र और राज्य स्तर पर गरीबों को विधिक सहायता सुलभ कराने के लिए समन्वय कर एकरूप विधियां बनायी जायें।

द्वितीय — मुकदमे से पूर्व बातचीत, सलाह–मशविरा और न्यायनिर्णयन से विवादों का निपटारा करने का प्रयास किया जाये।

तृतीय — सामाजिक कार्यकर्ताओं और रूचि रखने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ताओं की मदद से भारत में गांव–गांव में विधिक साक्षरता शिविर लगाकर और अभियान चलाकर समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गो के अधिकारों और विशेषाधिकारों की पुष्टि करने वाली कल्याणकारी विधियों के बारे में देश के जनसमूह में विधिक साक्षरता फैलाना और विधिक जागरूकता पैदा करने के प्रयास किये जायें।

चतुर्थ — गरीबों के लिए विधिक सहायता सुलभ कराने के लिए भारत में विभिन्न स्कीमों तथा कार्यक्रमों को दूरदर्शन, रेडियो और प्रेस के माध्यम से प्रचार–प्रसार के लिए गतिशील बनाया जाना चाहिए जिससे कि वे गरीबों तथा ग्रामीण जनता तक पहुंच सकें।

पंचम — केन्द्र और राज्य हर वर्ष प्राप्त कुल न्यायालय फीस का 1 प्रतिशत विधिक सहायता के कार्यान्वयन के लिए नियत कर सकते हैं।

षष्ठम् — भारत में सभी विधि महाविद्यालयों में विधिक सहायता को व्यवहारिक और सैद्धान्तिक दोनों रूपों में नियमित पाठ्यक्रम के रूप में विधि स्नातक पाठ्यचर्या में एक विषय के रूप में शुरू करना।

---

1. बठूला बेंकटेश्वर राव : भारत में कानूनी सहायता की प्रक्रिया, विधिक सहायता संवाद पत्र पृ0 19

सप्तम् न्यायालय फीस की छूट के लिए उपबंध प्रस्तावित विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम से किया जाना चाहिए जैसे उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 (1986 का सं0 68) में उपबंधित है।

श्री राव का मत है कि राज्य अकेले गरीबों और जरूरतमंदों को निःशुल्क कानूनी सहायता और सलाह देने का काम सम्पन्न नहीं कर सकता बल्कि विधि के परिकरणों के जरिये शिकायतें दूर करने की मांग करने में स्वयंसेवी संगठनों के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उन्हें आवश्यक कानूनी सहायता प्रदान करें तथा निःशुल्क विधिक सहायता केन्द्र विधि सहायता और सलाह की सुविधा को असंख्य अनपढ़ और दुखी गरीब लोगों को दिलायें।

विधिक सहायता केन्द्रों को शुरू करने और चलाने का एक मात्र उद्देश्य और लक्ष्य कमजोर वर्गो के लोगों विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो, स्त्रियों तथा अल्पसंख्यकों को, जो अनपढ़ हैं और सदियों से सामाजिक निर्योग्यताओं तथा आर्थिक विषमताओं का कष्ट भोग रहे हैं, शिक्षित करना, प्रबुद्ध करना और जागरूकता पैदा करना तथा उन्हें यह बताना कि कानूनी अधिकार और विशेषाधिकार उनके लिए हैं, जिनकी सुविधा के लिए विधिक सहायता स्कीमों और कार्यक्रमों को राज्य ने स्थापित किया है। सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारियों, ज्येष्ठ अधिवक्ताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और सामाजिक संस्थानों की स्वैच्छिक सेवाओं का उपयोग करके विधिक सहायता की प्रसुविधाओं का विस्तार गरीबों तक किया जा सकता है। लोकहित मुकदमा भी इसके अंतर्गत है। तदनुसार भारत के उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मामले में यह आदेश किया था कि राज्य सरकार को स्वयं सेवा संगठनों तथा सामाजिक कार्य दलों की सहायता करनी चाहिए।[1]

न्यायमूर्ति मोहम्मद सरदार अली खां ने गरीबों के लिये विधिक सहायता और सलाह प्रदान करने के लिये बनाये गये तन्त्र में सुधार के लिये निम्नांकित सुझाव दिये है[2]–

1. सेंटर आफ लीगल रीसर्च बनाम केरल राज्य ए0 आई0 आर0 1986 एस0 सी0 2195
2. न्यायमूर्ति मोहम्मद सरदार अली खां : विधिक सहायता प्रक्रिया, विधिक सहायता संवाद पत्र, अक्टूबर 93 मार्च 94 पृ011

(अ) निर्धनों को विधिक सहायता और सलाह देने का उद्देश्य केवल वित्तीय सहायता देना नहीं है बल्कि यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि जो भी वित्तीय सहायता दी जाती है उसके परिणामस्वरूप सहायता प्राप्त व्यक्ति को निःशुल्क और दक्ष विधिक सहायता प्राप्त हो।

(ब) विधिक साक्षरता कार्यक्रम के बिना कोई भी विधिक सहायता कार्यक्रम अंधेरे में तीर चलाने के समान है। देश की जनता के बीच विधिक साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए साथ–साथ ही प्रयास किए जाने चाहिए।

(स) यह आवश्यक है कि गरीबों को विधिक सहायता प्रदान करने की विभिन्न स्कीमों तथा कार्यक्रम का प्रचार करने के लिए जन प्रचार माध्यम जैसे कि दूरदर्शन, आकाशवाणी और समाचार पत्र की सहायता ली जानी चाहिए। यह सभी ने महसूस किया है कि जन–प्रचार माध्यमों द्वारा इस विषय के हर पहलू की उपेक्षा की जा रही है जो दुख की बात है।

(द) सिविल प्रकार के विवादों का निपटारा शांतिपूर्ण तरीकों से जैसे कि माध्यस्थम, समझौता वार्ता आदि से किया जाना चाहिए और ऐसे मामलों में न्यायालय की शरण में तभी जाना चाहिए जब ऐसा करना पूरी तरह आवश्यक हो।

(य) विधिक सहायता कार्यक्रम स्कीम के कार्यान्वयन के लिये पर्याप्त निधि का उपबंध करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य और केन्द्रीय प्राधिकरण, गरीबों को विधिक सहायता और सलाह प्रदान करने के लिए "निधि" सृजित करने के प्रयोजनार्थ प्रत्येक वर्ष उनके द्वारा प्राप्त कुल न्यायालय फीस का 1 प्रतिशत भाग अलग करके रख लें और

(र) जन सेवा की भावना रखने वाले विधि व्यवसायियों को जो स्वेच्छता विधिक सहायता और सलाह करने के लिए आगे आते है, सभी प्रकार के प्रोत्साहन दिए जाने चाहिए।

यदि उपरोक्त सुझावों को कार्यान्वित किया जाता है तो सभी को, विशेष रूप से उन लोगों को न्याय सुलभ हो जाएगा जो समाज में असहाय होने के कारण अन्याय के शिकार हो सकते हैं। इसी प्रयोजन के लिए विधिक सहायता की समस्या को गंभीरता पूर्वक देखा जाना चाहिए और हमारे समाज के वंचित वर्गो के हित में इसे शीघ्रातिशीघ्र सुलझाना चाहिए।

यह भी सुझाव दिया जाता है कि विधि की अन्तिम कक्षा में विधिक सहायता और उसका प्रसार कार्यक्रम विषय रखा जाये और छात्रों से कहा जाये कि वे गांवों में जाकर खंड स्तर पर या 10 गांवों के एक अंचल के भीतर बैठकें आयोजित करके लोगों को उनके अधिकारों की जानकारी दें। इससे गरीब लोगों को सिखाने में मदद मिलेगी। इन सुझाव के लिये विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सम्पर्क किया जा सकता है। भारत गांवों में बसता है न कि शहरों में। यदि छात्र व्यवहारिक विधिक साक्षरता कार्यक्रम में भाग नहीं लेंगे तो मुझे संदेह है कि इसमें उचित गति आ सकती है अथवा यह कार्यक्रम शब्दों और भावना दोनों दृष्टि से कार्यरूप ग्रहण कर सकता है। लोगों को उनके अधिकारों से परिचित कराने के लिये जनसाधारण कार्यक्रम या तो साक्षरता शिविर लगाकर या रेडियो, दूरदर्शन, समाचार पत्रों के माध्यम से चलाना होगा। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों को भी शामिल करना जरूरी है।

विधिक सहायता कार्यक्रम का यह अर्थ नहीं है कि विधिक सहायता तभी दी जाये जब मामले उत्पन्न हों। मुकदमें बाजी रोकी जा सकती है यदि सबसे निचले स्तर पर ही हित संघर्ष का निराकरण कर दिया जाय। यदि झगड़ा निपटाने में एक नातेदार और वृद्धजन भाग लें तो पति–पत्नी में समझौता कराया जा सकता है।[1] विकेन्द्रीकरण किया जाना और कानून

---

1. आर0 के0 महाजन : गरीब के लिये निवारक विधिक सहायता, विधिक सहायता संवाद पत्र, मई 89 फरवरी 90 पृ025

बनाने में कमजोर लोगों का सहयोग लेना चाहिये। यह एक स्वस्थ कदम होगा क्योंकि वे कानून उनकी भलाई के लिये जरूरी सुधारों पर आधारित होंगे।

इस कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिये स्थानीय भाषाओं में लिखित रूप में पुस्तिकाओं, परचों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे नाटक, मुशायरा, पोस्टर, कॉमिक्स, खण्ड स्तर पर 10–20 गांवों के अंचल में सभाओं तथा अन्य जागरूकता कार्यक्रमों में परिचालित किये जाने चाहिये जो क्षेत्र विशेष के स्थानीय मुद्दों पर निर्भर करेंगे।

वकीलों, न्यायाधीशों के सहयोग को तथा विवाद निपटाने के पुराने तरीकों को नकारा नहीं जा सकता। मानव प्रकृति मानव प्रकृति है। विवादों का 100 प्रतिशत निराकरण नहीं हो सकता, किन्तु भारत में लोगों को उनके अधिकारों से परिचित कराकर सबसे निचले स्तर पर यदि सुलह का वातावरण पैदा किया जाये तो इस दिशा में प्रगति की जा सकती है।

उपभोक्ता संरक्षण वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। इसे प्रभावी बनाने के लिये कई सुझाव दिये जाते है। यह सुझाव दिया जाता है कि उपभोक्ता संरक्षण विषय को भी पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिये, उपभोक्ता शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करने के पूर्व विद्यालयों में उपभोक्ता संरक्षण के प्रचार व प्रसार का प्रयास किया जाना चाहिये। उपभोक्ता संगठनों को स्वयं तथा शासन को भी इस ओर प्रयास करना चाहिये, उपभोक्ता संगठनों के प्रतिनिधियों को उपभोक्ता संरक्षण पर व्याख्यान देने हेतु विद्यालयों में आमंत्रित किया जाना चाहिये, इस हेतु विद्यालयों में उपभोक्ता संरक्षण सम्बन्धी विषयों पर वाद–विवाद प्रतियोगिता आयोजित की जानी चाहिये। उपभोक्ता संगठनों को भी अपने कार्यक्रमों में विद्यालयों के प्रधानाचार्यो, अध्यापकों व विद्यार्थियों को आमंत्रित करना चाहिये, जिससे शिक्षा जगत में उपभोक्ता संरक्षण का और अधिक प्रचार व प्रसार हो सके। शासन को भी उपभोक्ता संरक्षण से सम्बन्धित कार्यक्रमों में विद्यालयों के प्रधानाचार्यो एवं विद्यार्थियों को आंमत्रित करते हुये एवं उनको सहभागी बनाना चाहिये।

---

1. आर0 के0 महाजन : गरीब के लिये निवारक विधिक सहायता, विधिक सहायता संवाद पत्र मई 89 फरवरी 90 पृ025

उपभोक्ता शिक्षा के पाठ्यक्रम में अर्द्धन्यायिक प्रतितोष तंत्र की बनावट उनमें शिकायत दर्ज करने का तरीका, किसानों को बीज कीटनाशक दवायें व खाद में होने वाली हेराफेरी, खाद्य वस्तुओं में मिलावट, पेट्रोल, गैस की घटतौली व मिलावट उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986, खाद्य अपमिश्रण अधिनियम 1955, आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 आदि को शामिल किया जा सकता है। सरकार के द्वारा प्रदान की जा रही सेवायें जैसे डाक, रेल, बीमा, बैंकिंग सेवा तथा विकास प्राधिकरणों, आवास संघों द्वारा निर्मित भवनों की गुणवत्ता में व्यापक सुधार लाने हेतु उपभोक्ता जागरूकता के पाठ्यक्रम तैयार किये जाने चाहिये।

इस हेतु स्वयंसेवी उपभोक्ता संगठनों, अर्द्ध न्यायिक तंत्र के प्रधानों, विद्यालयों के प्राचार्यो, शासन के प्रतिनिधियों एवं शिक्षा विभाग के प्रतिनिधियों की एक ''उपभोक्ता शिक्षा परामर्श समिति'' का गठन किया जाना चाहिये जो पाठ्यक्रम लागू कर सकने तथा पाठ्यक्रमों को तैयार करने हेतु शासन को अपनी स्वीकृति दे सके।

अतः यह समय की मांग है कि उपभोक्ता शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम में शीघ्रातिशीघ्र शामिल किया जाय तथा सरकार को भी इस विषय में शीघ्र प्रभावी कार्यवाही करनी चाहिये।

उपभोक्ता संगठनों के लिये सबसे महत्वपूर्ण कार्य उपभोक्ताओं में जागृति लाने का कार्य है, अधिकतर भारतीय उपभोक्ता अपने अधिकारों और उत्तरदायित्वों के बारे में उदासीन होते है। अतः उपभोक्ता संगठनों का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वे उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करें कि इन अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिये।

उपभोक्ता संगठन उपभोक्ताओं को शिक्षित करने के लिये छोटी–छोटी कार्यशालायें या नुक्कड़ सभायें कर सकते हैं। इन सभाओं का आयोजन किसी छुट्टी वाले दिन कहीं पर

भी किया जा सकता है। इन सभाओं में उनको उपभोक्ता संरक्षण सम्बन्धी जानकारी दी जा सकती है, इन सभाओं में उपभोक्ताओं की समस्याओं और उनके समाधानों के बारे में भी चर्चा की जा सकती है। इस अवसर पर राज्य सरकार से सम्बन्धित अधिकारियों को भी बुलाया जा सकता है।

उपभोक्ता संगठन अपने प्रोगाम की शुरूआत अपने क्षेत्र के स्कूलों और कालेजों से भी कर सकते हैं। उस दिशा में पहल की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि छात्रों को अपने अध्ययन के दौरान उपभोक्ता संरक्षण सम्बन्धी बातों का पता हो, तो समय आने पर वह एक जागरूक उपभोक्ता बन सकते हैं।

उपभोक्ताओं में जाग्रति लाने के लिये और उनको शिक्षित करने के लिये एक पृष्ठ के पम्पलेट निकाल सकते है, जिसमें उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित जानकारी सरल और सुबोध रूप से दी गयी हो। उदाहरण के तौर पर एक पत्रक में उपभोक्ता के अधिकारों के बारे में जानकारी दी जा सकती है, दूसरे पत्रक में उपभोक्ता संरक्षण से सम्बन्धित अधिनियमों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी जा सकती है। यदि उपभोक्ता संगठन सक्षम हों तो वह इन विषयों पर छोटी–छोटी पुस्तिकायें या मुद्रित सामग्री निकाल सकते हैं अन्यथा वे इसे स्टेन्सिल करके वितरित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त संगठन गत्ते पर छोटे–छोटे पोस्टर बनाकर आफिस के सामने या प्रमुख स्थानों पर चस्पा कर सकते हैं इससे जहां एक ओर उपभोक्ता संगठनों को प्रसिद्धि मिलेगी वही उपभोक्ताओं को समुचित जानकारी भी मिलेगी।

आज देश में 650 से भी अधिक स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठन उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं, परन्तु वे अधिकतर शहरी क्षेत्रों में ही केन्द्रित हैं साथ ही उनके कार्यकलाप भी शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित हैं, आज आवश्यकता है कि उपभोक्ता आन्दोलन एक जन आन्दोलन बने और देश के हर कोने में फैले। इसके लिये हम सभी की तथा

उपभोक्ताओं संगठनों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। स्वैच्छिक संगठन ही इस आन्दोलन को ग्रामीण क्षेत्रों में ले जा सकते है लोगों में उनके उपभोक्ता अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा कर सकते हैं। इसी प्रकार दूरदर्शन और रेडियो लोगों में आम जागरूकता पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। वे ऐसे कार्यक्रम और रूपक बना सकते हैं जो दिलचस्प हों और उपभोक्ता संरक्षण से सम्बन्धित हों।

स्वयंसेवी संगठन एवं उपभोक्तावादी सामाजिक कार्यकर्ता तथा उपभोक्ता आन्दोलनकर्ता ही देश में उपभोक्ता आन्दोलन को शहर से गांव की झोपड़ी तक ले जा सकता है। साथ ही फोरमों और आयोगों द्वारा शीघ्र और प्रभावी निर्णय दिये जाये, नहीं तो हमारे जैसे देश में इस आन्दोलन का आगे बढ़ना बहुत कठिन होगा। व्यापारी वर्ग के लोगों से व्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान कई लोगों का कहना था कि जब फोरमों आदि से निर्णय वर्षो तक नहीं होते तो उपभोक्ताओं के शोषण के प्रति रोक कैसे लग सकती है ?

आज और आने वाले कल के लिये उपभोक्ता आन्दोलन की गति स्वयंसेवी संगठनों पर बहुत निर्भर करती है मात्र सरकार पर निर्भर होकर यह आन्दोलन नहीं चल सकता है। यदि उपभोक्ता संरक्षण सरकार तक ही सीमित या निर्भर हो जाये तो फिर यह आन्दोलन ही नहीं रहेगा।

साथ ही हमारे जो भी फोरमों और आयोगों के सम्मानित अध्यक्ष और सदस्य हों, वह इन सम्मानित पदों के द्वारा एक सामाजिक कार्यकर्ता की भांति उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में सेवा की भावना के साथ कार्य करें तथा उपभोक्ताओं में जो जागरूकता पैदा की जायेगी वह जागरूकता उपभोक्ता अभिकरणों को भी बल देगी, क्योंकि उपभोक्ता इन अभिकरणों का दरवाजा खटखटायेगा और देश में खड़ा होगा एक सशक्त उपभोक्ता आन्दोलन जो सारी अनियमितताओं, धोखाधड़ियों और बेईमानियों को बहा ले जायेगा।

पारिवारिक न्यायालय की कार्यप्रणाली में भी सुधार की आवश्यकता है। पारिवारिक न्यायालय ब्लाक स्तर पर खोले जाने चाहिये। इसके अतिरिक्त अधिनियम में निहित इनके उद्देश्यों को व्यवहारिक रूप देने के लिये सार्थक योजनायें बनायी जानी चाहिये। **'परिवार परामर्श केन्द्रों'** की स्थापना पिछड़े व दुर्गम क्षेत्रों में हो सके इसके लिये स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिये एवं इसके लिये उन्हें आर्थिक सहायता भी दी जानी चाहिये।

विधिक साक्षरता शिविर सारे देश में निश्चित अन्तराल के बाद विविध क्षेत्रों में लगाना चाहिये। इसके लिये भी स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इसमें विश्वविद्यालय के अध्यापकों और छात्रों का सहयोग लेना चाहिये। नेशनल कैडिट कोर (N.C.C.), राष्ट्रीय सेवा योजना (N.S.S.) एवं स्काउटिंग आदि से सम्बन्धित संस्थाओं को विधिक साक्षरता को अपने लक्ष्य में शामिल करना चाहिये।

न्याय पंचायत को प्रभावी बनाने के लिये निम्नांकित सुझाव दिये जाते हैं:–

1. न्यायिक प्रशासन एवं व्यवस्था हेतु न्याय पंचायत की आधारभूत आवश्यकता एवं उसका पुनरूज्जीवन।
2. न्याय पंचायत में एक विधिभिज्ञ व्यक्ति से युक्त तीन सदस्यों की आवश्यकता, विधिभिज्ञ व्यक्ति को पंचायत न्यायाधीश के रूप में नामित किया जाना।
3. प्रान्तीय शासन द्वारा पंचायत न्यायाधीशों का एक अलग सम्वर्ग का सृजन।
4. न्याय पंचायत कम से कम 5 सदस्यों के परिवाद रूप में (गाँव पंचायत के चुने सदस्यों में से जिलाधिकारी द्वारा एक नामित सदस्य, स्थानीय संभ्रान्त व्यक्ति में से जिलाधिकारी द्वारा चुने गये 3 सदस्य तथा एक अनुसूचित जनजाति का सदस्य)
5. न्याय पंचायत सदस्यों की निष्पक्षता उद्देश्य हेतु शिक्षा, स्थानीय सम्मान आदि का मापदण्ड।

6. भारत के विधि आयोग ने न्याय पंचायतों पर अपनी 114वीं रिपोर्ट में ग्राम स्तर पर न्याय पंचायत न्यायालय के गठन के लिये एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिनका गठन न्यायालय की प्रक्रिया का कड़ाई से पालन किये बिना ग्रामीणों के साधारण प्रकार के विवादों को सुनने और निर्णय देने के लिये किया जाये। इस बारे में विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिश को कार्यरूप दिया जाना चाहिये।

हम ऐसे समय से गुजर रहे है जब कि हमारे देश के सामाजिक क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे हैं। प्रत्याभूत अधिकारों और सामाजिक न्याय के लिये प्रतिवद्धता के साथ गत 52 वर्षो के दौरान हमारी संवैधानिक प्रणाली के कार्यकरण ने हमारे लोगों के मन में प्रत्याशायें जगा दी हैं। हमारे समाज के दुर्बल वर्ग अब अपने अधिकारों पर दृढ़ रहना आरम्भ कर रहे हैं और न्याय की मांग कर रहे है। इस प्रकार की स्थिति में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि सामाजिक स्थिरता के प्रोत्साहन के लिये, जो राष्ट्रीय प्रगति के लिये अनिवार्य है, न्याय की अवस्था में तेजी लानी चाहिये। विधिक सहायता और सलाह प्रणाली के निर्माण के अपने प्रयास में हमें समाज के सभी प्रबुद्ध वर्गो का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। इस महान कार्य में बार और बेंच के सदस्य यथोचित रूप से योगदान करते रहे हैं। हमें अधिक से अधिक लोकप्रिय सामाजिक संगठनों का जहां भी वे संगठित किये गये है, समर्थन प्राप्त करने के लिये प्रयास करना चाहिये और समाज के निर्धन और अशिक्षित वर्गो की सेवा करने के लिये क्षेत्रों में भी ऐसे संगठनों के निर्णय को प्रोत्साहन देना चाहिये। जिस गति से कानूनी सहायता कार्यक्रम बढ़ रहे है उसके गति बर्धन की आवश्यकता है ताकि उनका लाभ सुदूर प्रदेशों में अवस्थित उन सभी लोगों तक पहुंच सके जिन्हें सहायता और मदद की जरूरत है।

= = = =0= = = =

परिशिष्ट

परिशिष्ट

(अ) भारतीय संविधान की प्रस्तावना :

हम भारत के लोग,

भारत के एक **सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी पंथ निर्पेक्ष**

लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा

उसके समस्त नागरिकों को

सामाजिक, आर्थिक और **राजनैतिक न्याय,**

विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और **उपासना की स्वतन्त्रता,**

प्रतिष्ठा और **अवसर की समता** प्राप्त करने के लिये तथा

उन सबमें **व्यक्ति की गरिमा** और **राष्ट्र की एकता** और

अखंडता सुनिश्चित करने वाली **बन्धुता** बढ़ाने के लिये

दृढ़ संकल्पित होकर इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

(ब) संविधान का अनुच्छेद 39 (क) :

अनुच्छेद 39 (क) समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता :

"राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तन्त्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये, उपयुक्त या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।"

(स)

राज्य विधिक सहायता और सलाह बोर्डो / जिला विधिक सहायता समितियों द्वारा आयोजित लोक अदालतों की संख्या, निपटाए गए मामलों की संख्या, संदत्त प्रतिकर राशि आदि (31—3—94) को प्राप्त जानकारी के आधार पर—

	लगाई गई लोक अदालतों की सं०	निपटाये गए मामलों की संख्या (एम०ए० सी०टी० मामलों सहित)	मोटर दुर्घटना दावा अधिकरणों के तय किये गये मामले	
			तय किये मामलों की संख्या	दावेदारों को संदत्त प्रतिकर राशि (रू०)
1. आन्ध्रप्रदेश	301	2,11,315	18,959	51,46,04,567
2. आसाम	52	5,386	1,220	4,82,71,852
3. बिहार	16	40,181	209	89,30,580
4. गोवा	12	1,514	851	3,19,57,751
5. गुजरात	743	1,07,914	21,517	54,75,00,000
6. हरियाणा	429	1,46,734	6,328	36,80,25,997
7. हिमांचल प्रदेश	36	10,783	367	91,26,361
8. जम्मू एवं कश्मीर	01	76	76	59,97,000
9. कर्नाटक	3,369	2,75,535	38,830	52,27,27,407
10. केरल	30	18,583	13,194	7,26,49,795
11. मध्यप्रदेश	440	5,45,599	51,486	19,61,76,432
12. महाराष्ट्र	1,105	58,446	8,300	19,84,47,930
13. मणिपुर	4	476	67	20,02,000
14. मेघालय	3	236	114	39,54,000
15. मिजोरम	4	268	196	43,34,000
16. उड़ीसा	1,783	5,00,045	6,202	17,58,43,503
17. पंजाब	116	22,674	6,069	12,22,73,449
18. राजस्थान	321	5,56,483	10,878	33,03,07,711
19. सिक्किम	3	10	—	—
20. तमिलनाडू	492	24,357	24,854	68,54,67,073
21. त्रिपुरा	3	474	85	28,14,500
22. उत्तर प्रदेश	1,673	17,02,265	15,942	53,45,04,875
23. पश्चिमी बंगाल	32	2,275	1,424	5,46,56,700
24. चण्डीगढ़	15	1,689	140	82,75,800
25. दिल्ली	23	9,971	6,210	48,94,71,498
26. पांडिचेरी	19	990	992	2,15,51,552
कुल योग	9,027	43,37,147	2,26,144	4,85,99,09,323

उ0प्र0 राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण,
तृतीय तल जवाहर भवन एनेक्सी, लखनऊ

प्रगति आंकड़े एक नजर में

निस्तारित वादों का विवरण

वित्तीय वर्ष	लोक अदालतों की संख्या	मो०दु० प्रतिकर वादों की संख्या	प्रतिकर की धनराशि	वैवाहिक वादों की संख्या	कुल निस्तारित वादों की संख्या	साक्षरता शिविरों की संख्या	लाभार्थियों की संख्या
1981 से [illegible].05.97 तक	2843	31060	1343126083.30	16288	2879701	--	4387[illegible]
1997-98	349	5901	400224310.00	2824	270638	--	441[illegible]
1998-99	399	5067	355941034.00	2460	265020	105	3712[illegible]
1999-2000	611	4237	342656901.25	2718	319018	220	528059
2000-2001	1126	4777	376602543.30	3876	391792	353	566[illegible]
कुल योग	5328	51042	2858227981.85	28166	4126169	678	629[illegible]

(वी०के० दीक्षित)
एच०जे०एस०
सचिव

४)

प्रदेश की उपभोक्ता अदालतों में दर्ज/निस्तारित वादों की सूचना

क्रम सं.	जिला फारम का नाम	आरभ से सितम्बर 2001 तक दर्जवाद	आरम्भ से सितम्बर 2001 तक निस्तारित वाद
1.	आगरा (प्रथम)	8535	6175
2.	आगरा (द्वितीय)	2119	1092
3.	अलीगढ़	9686	8906
4.	हाथरस	978	613
5.	मैनपुरी	3424	2689
6.	मथुरा	4585	3486
7.	एटा	3332	2926
8.	फिरोजाबाद	2457	1502
9.	इलाहाबाद	11450	7109
10.	प्रतापगढ़	2334	1330
11.	फतेहपुर	2777	2321
12.	कौशाम्बी	165	78
13.	आजमगढ़	2629	2096
14.	बलिया	3115	2603
15.	मऊ	1242	599
16.	बरेली (प्रथम)	5188	4590
17.	बरेली (द्वितीय)	2262	1443
18.	बदायूँ	2518	1373
19.	पीलीभीत	2424	1985
20.	[illegible]जहाँपुर	3933	3175
21.	[illegible]ती	6280	4381
22.	सिद्धार्थनगर	949	824
23.	संतकबीर नगर	*	*
24.	बांदा	2404	1849
25.	हमीरपुर	1714	1318
26.	महोबा	443	387
27.	चित्रकूट	433	168
28.	फैजाबाद	4662	3722
29.	सुल्तानपुर	4356	2455
30.	बाराबंकी	2035	1040
31.	अम्बेदकरनगर	-	-
32.	गोरखपुर	5193	3633
33.	देवरिया	5827	3384
34.	महराजगंज	585	513
35.	पड़रौना	3221	2172
36.	झांसी	4409	3694
37.	जालौन	1962	1840
38.	ललितपुर	1903	1756
39.	कानपुर नगर	11013	7750
40.	कानपुर देहात	2770	1800
41.	इटावा	3403	2175
42.	फर्रुखाबाद	7997	5229
43.	औरैया	*	*
44.	कन्नौज	*	*
45.	लखनऊ (प्रथम)	10358	7140
46.	लखनऊ (द्वितीय)	4724	3687
47.	हरदोई	5109	4586
48.	लखीमपुर खीरी	4364	3435
49.	रायबरेली	3436	2365
50.	उन्नाव	3933	3587
51.	सीतापुर	2562	2278
52.	मेरठ	11148	7376
53.	बुलन्दशहर	6374	4596
54.	गाजियाबाद	10783	7651
55.	गौतमबुद्धनगर	419	88
56.	बागपत	*	*
57.	मिर्जापुर	2469	1374
58.	सोनभद्र	4414	3882
59.	भदोही	171	27
60.	मुरादाबाद (प्रथम)	8977	8767
61.	मुरादाबाद (द्वितीय)	2376	1748
62.	बिजनौर	5171	4424
63.	रामपुर	2657	2122
64.	ज्योतिबाफुलेनगर	325	148
65.	सहारनपुर	4003	3266
66.	मुजफ्फरनगर	4412	3283
67.	गोण्डा	2525	2008
68.	बलरामपुर	15	*
69.	बहराइच	5898	4955
70.	श्रावस्ती	343	282
71.	वाराणसी	4252	3318
72.	गाजीपुर	2415	1923
73.	चन्दौली	-	-
74.	जौनपुर	3479	2395
	योग	**2,63,824**	**1,96,892**

* फोरम विधिवत स्थापित नहीं है।

उपभोक्ता संरक्षण राज्य आयोग, उ.प्र.

(प्रारम्भ से माह सितम्बर, 2001 तक)

		दर्ज वाद	निस्तारित वाद
1.	शिकायतें	2729	1429
2.	अपीलें	29191	6188
	योग	**31920**	**7617**

(२)

दृष्टिकोण मापन

स्केल नं. – 1

प्रस्तुत स्केल कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रभाव के प्रति विभिन्न सम्बन्धित वर्गों के दृष्टिकोण के मापन हेतु बनाया गया है। ये वर्ग है :– न्यायाधीश, वकील, स्थानीय प्रशासन, न्यायिक प्रशासन एवं वादी।

निर्देश :– प्रस्तुत स्केल कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति आपके दृष्टिकोण का मापन करने के लिये है। प्रत्येक कथन को सावधानी पूर्वक पढ़िये सामने दिये गये पाँच विकल्पों में से किसी एक पर सही (✓) का निशान अपने दृष्टिकोण के अनुसार लगाइयें। किसी भी कथन को छोड़ें नहीं।

कथन	पूर्ण सहमत	सहमत	तटस्थ	असहमत	पूर्ण असहमत
1. कानूनी सहायता कार्यक्रमों से कानूनी साक्षरता बढ़ी है।					
2. सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पाने में कानूनी सहायता कार्यक्रम सहायक है।					
3. कानूनी सहायता कार्यक्रम दरवाजे पर न्याय के विचार को स्थापित करने में सहायक हुआ है।					
4. कानूनी सहायता कार्यक्रम मात्र दिखावा हैं।					
5. कानूनी सहायता कार्यक्रम में न्यायिक सेवा के लोग पूरी रुचि नहीं लेते है।					
6. लोक अदालतें विभिन्न अदालतों में मुकदमों के बोझ को कम करने में सहायक रही है।					
7. लोक अदालतों द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया सामान्य न्यायिक प्रक्रिया की तुलना में अधिक सुविधाजनक है।					
8. लोक अदालतों में भाग लेकर मैं आत्म संतुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।					
9. लोक अदालत एक असुविधाजनक कार्य है।					

10. लोक अदालतों का आयोजन केवल उच्चाधिकारियों एवं न्यायालयों के आदेश का अनुपालन मात्र है।					
11. अवकाश के दिन लोक अदालत का लगना एक अवकाश दिवस की हानि है ? अतः लोक अदालतें कार्य दिवस में लगनी चाहिये।					
12. लोक अदालतों में मुकद्मे जल्दी हल हो जाते हैं इससे वकीलों की आय प्रभावित होती है।					
13. लोक अदालतें गरीबों और दलितों को सस्ता न्याय सुलभ कराती हैं।					
14. लोक अदालतों में मुकदमें सुलझाने में वकीलों का रवैया असहयोगपूर्ण रहा है।					
15. लोक अदालतों में प्रस्तुत मुकदमों को सुलझाने में वकील पूरा सहयोग करते है।					
16. वकील पर्दे के पीछे वादियों से लोक अदालतों के मुकदमें सुलझाने में लेन–देन करते है।					
17. लोक अदालतों के आयोजन में परिसर में कानून व व्यवस्था बनाये रखना स्थानीय प्रशासन पर एक अतिरिक्त भार है।					
18. जिस परिसर में लोक अदालतें लगायी जाती हैं उसमे कानून व व्यवस्था बनाये रखने में कोई असुविधा नहीं होती है।					
19. लोक अदालतें केवल जिला व तहसील न्यायालयों के परिसर में ही लगायी जानी चाहिये।					
20. लोक अदालतों का पिछड़े व दुर्गम क्षेत्रों में लगाया जाना गरीब व दलितों के हित में हैं।					
21. लोक अदालतों ने न्यायिक प्रशासन के समक्ष अनेक समस्यायें पैदा की हैं।					

22. लोक अदालतों का आयोजन समय व धन का अपव्यय है।					
23. यदि लोक अदालतें पिछड़े क्षेत्रों में लगायी जाती है तो प्रशासन के लिये कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिये समस्या पैदा होगी।					
24. गरीबों को लोक अदालतों में कानूनी सहायता व सलाह देना एक जटिल कार्य है।					
25. लोक अदालतों में कानूनी साक्षरता सम्बन्धी साहित्य का प्रबन्ध एक कठिन और महँगा कार्य है।					
26. उपभोक्ता फोरम उपभोक्ताओं के हित की रक्षा करने में सफल रहे हैं।					
27. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम से उपभोक्ता फोरम सशक्त हुये है।					
28. उपभोक्ता फोरम में न्याय जल्दी प्राप्त होता है।					
29. उपभोक्ता न्यायालयों में उपभोक्ता और उत्पादक दोनों ब्लैकमेल होते हैं।					
30. उपभोक्ता फोरम भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हैं।					
31. पारिवारिक न्यायालयों का कानूनी स्तर उन्हें प्रभावी बनाने में सहायक रहा है।					
32. पारिवारिक न्यायालय अपने उद्देश्य की पूर्ति में विफल रहे हैं।					
33. परिवार परामर्श केन्द्र पारिवारिक न्यायालयों को सहायता देने में सहायक है।					
34. विधिक साक्षरता शिविर कानून और न्याय की मूल भावना को जनता तक पहुँचाने में विफल रहे हैं।					
35. न्याय पंचायतें लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में सहायक है।					

दृष्टिकोण मापन

स्केल नं. – 2

प्रस्तुत स्केल समाज के विभिन्न वर्गों की कानूनी सहायता कार्यक्रमों के बारे में राय के मापन हेतु निर्मित की गयी है। जो राय के लिये चयनित किये गये है वे है – न्यायाधीश, अधिवक्ता, प्रेस, प्रशासन एवं सामान्य जनता।

निर्देश :– प्रस्तुत स्केल कानूनी सहायता कार्यक्रमों के प्रति आपकी राय के मापन के उद्देश्य से निर्मित है। प्रत्येक कथन को सावधानी से पढ़िये और सामने दिये गये पाँच विकल्पों में से किसी एक पर सही (✓) का निशान अपने विवेक के अनुसार लगाइये। किसी भी कथन को छोड़े नहीं।

कथन	पूर्ण सहमत	सहमत	तटस्थ	असहमत	पूर्ण असहमत
1. कानूनी सहायता कार्यक्रम में लोगों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी है।					
2. कानूनी सहायता से गरीबों को न्याय प्राप्त करने में सुविधा हुयी है।					
3. कानूनी सहायता जनतंत्र की भावना के अनुरूप है।					
4. कानूनी सहायता कार्यक्रम अभी विश्वसनीयता प्राप्त नहीं कर पाये हैं।					
5. अधिवक्तागण कानूनी सहायता कार्यक्रमों को अपने व्यवसाय के हित में नहीं मानते है।					
6. लोक अदालतें विवादों को सौहार्दपूर्ण तरीके से सुलझाने में सहायक है।					
7. लोक अदालत वादियों का समय और धन बचाती हैं।					
8. लोक अदालतें त्वरित न्याय दिलाने का एक प्रभावी साधन है।					

9. लोक अदालतों ने सामाजिक तनावों को कम करने में सफल भूमिका निभाई है।					
10. मोटर दुर्घटना सम्बन्धी विवादों को सुलझाने में लोक अदालतें अधिक सफल रही हैं।					
11. कनिष्ठ वकील लोक अदालतों में रुचि नहीं लेते है।					
12. लोक अदालतें एक ड्रामे या औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं है।					
13. लोक अदालतें राजस्व व हल्के आपराधिक मामलों को सुलझाने में अधिक सफल रही है।					
14. लोक अदालतें गंभीर प्रकृति के विवादों को निपटाने में सफल नहीं रही हैं।					
15. लोक अदालतों की मुख्य दुर्बलता सुदृढ़ कानूनी आधार का अभाव है।					
16. लोक अदालतों में सुलहकर्त्ताओं के चयन का तरीका दोषपूर्ण है।					
17. लोक अदालतें सामाजिक न्याय प्राप्त करने का एक माध्यम है।					
18. लोक अदालत कानूनी साक्षरता को प्रोत्साहित करने का एक मंच है।					
19. लोक अदालतों ने गरीबों और दलितों में न्याय प्राप्त करने की एक प्रभावी चेतना विकसित की है।					
20. लोक अदालत कम से कम माह से एक बार अवश्य लगना चाहिये।					
21. सरकार की लोक अदालतों को प्रभावी बनाने में अधिक रुचि नहीं है।					

22. अधिकतर व्यक्ति लोक अदालतों से परिचित नहीं हैं।					
23. लोक अदालतों में प्रेषित मुकदमों की संख्या अक्सर गलत होती है।					
24. प्रेस ने लोक अदालतों को प्रोत्साहित करने में सकारात्मक भूमिका निभाई।					
25. लोक अदालत के परिसर में कानून व व्यवस्था को बनाये रखना स्थानीय प्रशासन के लिये एक चुनौती है।					
26. उपभोक्ता फोरम लोगों को त्वरित न्याय देने में सफल रहा है।					
27. उपभोक्ता न्यायालयों की प्रक्रिया खर्चीली नहीं है।					
28. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम से उपभोक्ताओं में अपने अधिकारों के प्रति चेतना बढ़ी है।					
29. उपभोक्ता अदालतों में वकीलों का रवैया सहयोगात्मक रहता है।					
30. उपभोक्ता अदालतें न्यायालयों में लम्बित मुकदमों का बोझ कम करने में सहायक रही है।					
31. पारिवारिक न्यायालय विवाह संस्था के संरक्षण में सहायक हैं।					
32. पारिवारिक न्यायालयों में वास्तविक रूप से सुलह समझौते के आधार पर पारिवारिक विवाद हल किये जाते हैं।					
33. परिवार परामर्श केन्द्र पारिवारिक विवादों के हल का प्रभावी साधन है।					
34. विधिक साक्षरता शिविर जनता में कानूनी अधिकारों के प्रति चेतना जगानें में सहायक है।					
35. न्याय पंचायतें स्थानीय स्तर पर झगड़ों को सुलझानें में सहायक रही हैं।					

सन्दर्भ सूची

प्राथमिक श्रोत

1. "Alternative Dispute Ressolution" भारत सरकार द्वारा 'क्राइस्ट चर्च' न्यूजीलैंड में 23–27 अप्रैल को आयोजित 'कॉमन बैल्थ' के कानून मंत्रियों की बैठक में प्रस्तुत पत्र : Legal Aid News Letter, May.-Aug., 1990 में प्रकाशित
2. " Access to Justice In India" 6 नवम्बर, 1991 को वार्सिलोना में आयोजित 'World Jurist Association' में सुप्रीम कोर्ट के एक तत्तकालीन न्यायाधीश न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र : Leagal Aid News Letter, Jan.-March 92 में प्रकाशित
3. **'भारत का संविधान''**
4. जिला कानूनी सहायता प्राधिकरण हमीरपुर से प्राप्त कानूनी सहायता कार्यक्रमों का विवरण
5. जिला उपभोक्ता संरक्षण फोरम कार्यालय हमीरपुर से प्राप्त उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित सामग्री
6. **''हमीरपुर का गजेटियर''**
7. 20 सितम्बर 1987 को कानूनी सहायता परामर्श बोर्ड देहली एवं लायंस क्लब ग्रेटर, देहली के तत्ववाधान में आयोजित सातवीं लोक अदालत के उद्घाटन के अवसर पर सुप्रीम कोर्ट के तत्तकालीन मुख्य न्यायाधीश का भाषण : विधिक सहायता संवाद पत्र, मई– अगस्त 1987 में प्रकाशित
8. देहली विश्वविद्यालय के विधि केन्द्र द्वारा 1992 में "Lok Adalat- An Apprisal" विषय पर आयोजित संगोष्ठी के उद्घाटन के अवसर पर सुप्रीम कोर्ट के तत्कालीन न्यायाधीश न्यायमूर्ति ए0 एम0 अहमदी का भाषण : Legal Aid News Letter, Jan.-March., 1992 में प्रकाशित
9. **''विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987''**
10. **''उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986''**
11. **''उ0 प्र0 पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984''**
12. **''उ0 प्र0 पारिवारिक न्यायालय नियमावली 1995''**
13. **''लोक अदालत : संगठन और कार्यप्रक्रिया का अध्ययन''**; ICSSR द्वारा प्रायोजित, श्री अवध प्रसाद द्वारा 1976 में सम्पन्न परियोजना

14. **"लोक अदालत"** : जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड हमीरपुर द्वारा 14 फरवरी, 1987 को प्रकाशित स्मारिका
15. **"कानूनी सहायता एवं परामर्श कार्यक्रम, क्यों, कैसे और किसलिए"** उ0 प्र0 कानूनी सहायता और परामर्श बोर्ड लखनऊ 2001 द्वारा प्रकाशित पत्र
16. **"उपभोक्ता संरक्षण एवं कानून"** : उ0 प्र0 राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण लखनऊ 2001 द्वारा प्रकाशित पत्र
17. **"उपभोक्ता संरक्षण"** : उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय लखनऊ द्वारा राष्ट्रीय उपभोक्ता अधिकार दिवस 24 दिसम्बर, 2001 को प्रकाशित पत्रिका
18. **"उपभोक्ता संरक्षण"** : विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस 15 मार्च 1998 को उपभोक्ता संरक्षण निदेशालय लखनऊ उ0 प्र0 द्वारा प्रकाशित पत्रिका
19. **"विधिक सेवा पत्रिका"** : उ0 प्र0 राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, लखनऊ द्वारा प्रकाशित

द्वितीयक श्रोत

(अ) पुस्तकें

एलन सी0 के0 : ला इन मेंकिग (सेबन्थ एडी.1968) ओक्सकोर्ड क्लेरेडन प्रेस

एलन सी0 के0 : लीगल ड्यूटीस एण्ड अदर एसेस इन ज्यूरिस प्रुडेंस (1931)

एमोस एम0 एस0 : साइन्स आफ ला।

आस्टिन जॉन : लेक्चर्स आन ज्यूरिसप्रुडेंस

एक्वीनास टी : सेलेक्टेड पालिटिकल राइटिंग्स, (एडिटिड) ए. पी. डी. एन्ट्रेब्स, आक्सफोर्ड ब्लैकवैल 1959

एरो0 के0 : सोशियल च्वायस एण्ड इनडिविज्वल वैल्यूज, न्यूयार्क बिले 1951

बसु : माडर्न थ्योरीज आफ ज्यूरिसप्रुडेंस

बसु दुर्गादास : कान्स्टीट्यूशनल ला आफ इण्डिया

बी, आंडेन हैमेस एजर : ज्यूरिस प्रुडेंस (1962) हावर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस

ब्रोवेन डब्लू जेथ्रो : दि आस्टिनियन थ्योरी आफ ला (रिप्रिंट 1926)

ब्राइस लार्ड : स्टडीज इन हिस्टरी आफ ज्यूरिसप्रुडेंस

बकलैंड डब्लू डब्लू : सम रिफेलेक्संस आन ज्यूरिसप्रुडेंस (1945)

बेसरिस सी : आन क्राइम्स एण्ड पनिशमेन्ट्स

बेन0 एस0 टी0 एण्ड पीटर्स आर0 एस0 : सोशियल प्रिंसपल्स एण्ड दि डेमोक्रेटिक स्टेट

बेथम, जे : एन इन्ट्रोडक्शन टू दि प्रिंसपल्स आफ मोरल्स एण्ड लेजिसलेशन

बर्नस्टीन, इ. : इवोल्यूशनरी सोशियालिज्म

बक्सी, यू0 : पाप्युलर जस्टिस, पार्टिसेपेटरी डेवलपमेंट एण्ड पावर पालिटिक्सः दि लोक अदालत इन टरम्वाइल, 1979

बैखौफ : जस्टिस : इट्स डिटरमिनेडस इन सोशल इन्टरैक्शन रोथेर्डम यूनीवर्सिटी प्रेस, 1974

बक्सी उपेन्द्र : क्राइसेस आफ इण्डियन लीगल सिस्टम, विकास, नई दिल्ली 1982

बक्सी उपेन्द्र : लोक अदालत एट रंगपुर : ए प्रिलिमिनरी स्टडी, देहली यूनीवर्सिटी, 1974

बक्सी उपेन्द्र : दि इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पालिटिक्स

कार्टर जेम्स : लॉ इट्स आरिजिन, ग्रोथ एण्ड फंकसंस

चतुर्वेदी एम : दि कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया
चन्द्रा विपिन : मार्डन इण्डिया
चन्द्रा विपिन : फ्रीडम स्ट्रगल
डिग्विट एल : ला इन दि मार्डन स्टेट (ट्रांसलेशन वाई लास्की 1921)
दास पी0 के0 : दि मानसून्स, नेशनल बुक ट्रस्ट 1968
डॉसबिन आर : टेकिन राइट्स सीरियसली लन्दन ड्यूकुस्थ 1978
भगवान वर्धा : ला पावर्स एण्ड जस्टिस बाम्बे त्रिपाठी 1974
फ्रॉयडमेन डब्लू : लीगल थ्योरी (फिफ्थ एड) स्टीवेन्स एण्ड संस लिमिटेड
हाल जेरोम : रीडिंग्स इन ज्यूरिसप्रुडेंस (1938)
हार्ट एच.एल.ए. : दि कॉसेप्ट आफ लॉ
हालैण्ड टी. एफ. : एलीमेंट्स आफ ज्यूरिस प्रुडेंस (नाइथ एड) स्टीवेंस एण्ड संस
हैरिस जे. डब्लू : लीगल फिलोसफीज, लन्दन बटरवर्थ, 1980
हेगडे के. एस. : ज्यूडिसरी एण्ड दि पीपुल बेंगलोर फैन्ड्स आफ ज्यूडिसरी पब्लिकेशन्स 1973
हालैंड : एलीमेन्ट्स आफ ज्यूरिस प्रुडेंस
जेंक्स एडवर्ड : दि न्यू ज्यूरिस प्रुडेंस
कांट आई. : फिलासफी आफ ला (1887)
कांट आई. : दि मेटाफिजिकल एलीमेन्ट्स आफ जस्टिस 1797
कौल एम. एन. : प्रेक्टिस एण्ड प्रोसीजर आफ पार्लियामेंट नई दिल्ली
कोठारी आर. : डेमोक्रेटिक पॉलिसी एण्ड सोशल चेंज इन इण्डिया 1976
खन्ना एच. आर. : कॉस्टीट्यूशन एण्ड सिविल लिबर्टी
खन्ना एच. आर. : ज्यूडिशियल सिस्टम, नई दिल्ली आई. आई. पी. ए. 1980
कृष्णा अय्यर बी.आर. : लॉ एण्ड दि अरबन पूअर इन इण्डिया
कृष्णा अय्यर : अवर कोर्टस ऑन ट्रायल
कृष्णा अय्यर : ला एण्ड पीपुल
लॉस्की जे. : मॉडर्न थिवरी आफ लॉ
महाजन वी. डी. : प्रिंसपल्स आफ ज्यूरिसप्रुडेंस एण्ड लीगल थ्योरी
मेनन के कृष्णा : आउटलाइन्स आफ ज्यूरिसप्रुडेंस (तृतीय संस्करण 1961)
मिलर डेविड : दि ब्लेकबैल इनसाइक्लोपीडिया आफ पालिटिकल थॉट

मैन्डेलोन डी.	:	दि पैथोलोजी आफ दि इण्डियन लीगल सिस्टम मॉडर्न एशियन स्टडीज 1881
पैटन जी. डब्लू	:	ए टेस्ट बुक आफ ज्यूरिस प्रुडेंस (तृतीय संस्करण 1964) ऑक्स फोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
पायली एम. बी.	:	कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट आफ इण्डिया, बाम्बे एशिया पब्लिकेशन, 1960
राय चौधरी एस. पी.	:	लैंड एण्ड स्वाइल
राफेल डी. डी.	:	जस्टिस एण्ड लिबर्टी, लंदन एथोलोंस 1980
रमन एस.	:	फन्डामेण्टल राइट्स एण्ड 42 एमेण्डमेंट कलकत्ता 1979
रॉल्स जे.	:	ए थ्योरी आफ जस्टिस, कैम्ब्रिज मास, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस 1971, ऑक्सफोर्ड
राब्सन	:	सिबिलाइजेशन एण्ड दि ग्रोथ आफ लॉ
सप्रू टी. एन.	:	मार्डन ज्यूरिशप्रुडेंस
सैनी के. एल.	:	लोक अदालत इन इण्डियन ज्यूडिशियल सिस्टम, एन इम्पीरिकल स्टडी
सिंह हरेन्द्र पाल	:	रिसोर्सेस एप्राइजल एण्ड प्लानिंग इन इण्डिया
स्टोम्प एल. डी. एश्सिया	:	ए रीजनल एण्ड जनरल जॉगरफी मैथ्युअन लन्दन (1967)
स्पेट डी. एच. के.	:	इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, ए जनरल एण्ड रीजनल जॉगरफी मेथसन लन्दन (1967)
शुक्ला वी. एन.	:	दि कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया
सिन्हा एस. नारायण	:	दि रिवोल्ट आफ 1957 इन बुन्देलखण्ड
सिंह परमानन्द	:	एसेस टू जस्टिस, पब्लिक इन्ट्रस्ट लिटिगेशन एण्ड दि इण्डियन, सुप्रीम कोर्ट नई दिल्ली ला विजुअर 1981–82
सिंह वख्शीश	:	दि सुप्रीम कोर्ट आफ इण्डिया एज एन इन्स्ट्रूमेन्ट आफ सोशियल जस्टिस, नई दिल्ली स्टर्लिंग 1976
सुब्बा राव के.	:	ज्यूडिशरी एण्ड सोसियल चेंज, मद्रास
वूटलोन – बी	:	सोशियल साइंस एण्ड सोशियल पैथोलोजी, लन्दन, एलन एन अनवेन, 1967
स्टोन जे	:	सोशियल डामेन्शन्स आफ ला एण्ड जस्टिस
भवानीदीन	:	समरगाथा

(ब) लेख (Articles) एवं संपादकीय (Editorial)

1. अस्थाना वी. : **''सिविल लिबर्टीज एण्ड दि सुप्रीम कोर्ट''** दि यू0 पी0 जरनल आफ पालिटिकल साइंस, जनवरी–जून 1989 पृ0 56–63

2. **''ए लुक एट लोक अदालत''** (एडीटोरियल), पेट्रीआट, नई दिल्ली, नवम्बर 22, 1993

3. ''एज लोक अदालत ग्रो'': (एडीटोरियल), इण्डियन एक्सप्रेस न्यू देहली मार्च 6, 1986

4. अहमदी ए0 एम0 : **''विधिक सहायता : मानव अधिकार या कृपा'',** विधिक सहायता संवादपत्र अक्टूबर 93–मार्च 94

5. अशोक डी एस. : **ज्यूडीशियस डिसपेंसेसन आफ जस्टिस** 22 जुलाई 1990 में आयोजित लोक अदालत के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका का लेख

6. बक्सी उपेन्द्र : **''आन हाऊनाट टू जज दि जजेस** ; नोट्स टुर्वाडस इवैल्यूवेशन **आफ दि ज्यूडिशियल रोल'',** जरनल आफ इण्डियन लॉ इस्टीट्यूट Vol. 25 (1903) पृ0 214

7. बक्सी उपेन्द्र : **''आन दि शेम आफ नाट बीइंग एक्टीविस्ट :** थाट्स आफ ज्यूडिशियल एक्टीविज्म'', इण्डियन बार रिव्यू Vol. 11 (3) 1984 पृ0 31

8. चौधरी ओ. पी. : **''ह्यूमन राइट्स, लीगल एड, एण्ड लोक अदालत''** लीगल एड न्यूज लेटर, नई दिल्ली, अप्रैल–सितम्बर 1993 पृ0 10–12

9. चौधरी पवन : **''नो नीड फार लोक अदालत''** हांक (Hawk) जुलाई 22, 1985

10. चतुर्वेदी वी. : **''क्रिमिनल जस्टिस इन इण्डिया इन पर्सपेक्टिव आफ दि लीगल एड''** सितम्बर 7, 1986 में मथुरा आयोजित लोक अदालत के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका का लेख

11. कोर्टस आफ पीपुल : (एडीटोरियल), हिन्दुस्तान टाइम्स न्यू देहली नवम्बर 22, 1989

12. दसरथी जे. : **''ह्यूमन राइट्स एण्ड रोल आफ ज्यूडिसरी'',** लीगल एड न्यूज लेटर न्यू देहली जनवरी–मार्च 1992

13. **डेलीवरिंग स्पीडियर जस्टिस** ''टिब्यून (चण्डीगढ़) नवम्बर 21, 1989

14. देसाई डी. ए. : **''कान्स्टीटृयूशनल वैल्यूस एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म''**, जरनल आफ बार कौसिंल आफ इण्डिया Vol. 9 (2) 1982 पृ0 248

15. दीवान पारस : **''जस्टिस एट दि डोरस्टेप आफ पीपुल; दि लोक अदालत सिस्टम''** लीगल एड न्यूज लेटर नई दिल्ली, अप्रैल–जून 1991 पृ0 9–13

16. फ्राम तकरार टूकरार : **''दि लोक अदालत एट रंगपुर''**; जरनल आफ कॉस्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेण्ट्री स्टडीज (53) 1970

17. गुप्ता वेद प्रकाश : **''लिटिगेण्ट, लायर एण्ड लीगल एड मूवमेंट''** 7 सितम्बर, 1986 को जिला कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड, मथुरा द्वारा लोक अदालत के आयोजन पर प्रकाशित स्मारिका का लेख

18. जौहरी ए. के. : **''ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एण्ड सोशियल ट्रांसफार्मेशन''** दि यू0 पी0 जरनल आफ पालिटिकल साइंस Vol. जनवरी–जून 1989 पृ0 25–27

19. जस्टिस डी. पी. मदान : **''ज्यूडिशियल एक्टिविज्म; एन एशन्शनल पार्ट आफ ज्यूडिशियन फंक्शन''** इण्डियन बार रिव्यू Vol. 11 (3) 1984 पृ0 254

20. कपूर पी. : **''फारगोटेन लोक अदालत''** हांक, जुलाई 22, 1985

21. कुप्पुस्वामी अल्लादि : **''लोक अदालत एन एप्रीशियेशन''** लीगल एड न्यूज लेटर मई–अगस्त 1988 पृ0 9–11

22. कृष्णा अय्यर आर. : **''सोशियल जस्टिस एण्ड इण्डियन कॉस्टीट्यूशन मिथ वर्सेज ट्रुथ''** कुरूक्षेत्र ए जरनल आफ डिपार्टमेंट आफ रूरल डेवलपमेंट अक्टूबर 9–10

23. कृष्णा अय्यर आर. : **''मेकिंग दि ज्यूडियशल रिलेवेंट''** मेन स्ट्रीम अप्रैल 9, 1993 पृ0 22

24. कुमार आदित्य : **"लोक अदालत; इन्नोवेशन इन पब्लिक इन्ट्रस्ट लिटिगेशन"** दि यू0 पी0 जरनल आफ पालिटिकल साइंस Vol. 1, No. 2 जुलाई–दिसम्बर 1989 पृ0 25–35

25. खान मो0 एस0 ए0 : **"मैकेनिक्स आफ लीगल एड"** लीगल एड न्यूज लेटर, अक्टूबर 93 मार्च 94 पृ0 7–11

26. खान मुर्तजा : **"रोल आफ इण्डियन ज्यूडिशिरी; नीड आफ एक्टिविज्म"** इण्डियन जरनल आफ पालिटिक्स मार्च 83 पृ0 119–128

27. खान मो0 सरदार अली : विधिक सहायता प्रक्रिया, विधिक सहायता संवादपत्र अक्टूबर 93–मार्च 94

28. लोढ़ा गुमानमल : **"लोक अदालत दि अलादीन्स लैम्प"** पैट्रियाट नई दिल्ली जुलाई 7, 1987

29. माधव मेनन एन. आर.: **"लोक अदालत; पीपुल्स प्रोग्राम फार स्पीडी जस्टिस"** इण्डियन बार रिव्यू, अप्रैल–जून 1986

30. मेहता बलराज : **"सोसियल जस्टिस इज इलूडिंग मैनस्ट्रीम पालिटिक्स"** कुरूक्षेत्र अक्टूबर 90

31. माधव मेनन एन. आर.: एण्ड डी. आर. एस. **"लोक अदालत; इन देहली"** इण्डियन बार रिव्यू अक्टूबर–दिस0 1993 पृ0 455–65

32. माधव मेनन एन. आर.: **"लोक अदालत; एन अलटरनेटिव टू जूडीसियल जस्टिस"** कुरूक्षेत्र लॉ जरनल, 11 एण्ड 12 1985 पृ0 1–8

33. माधव मेनन एन. आर. : **"दि लोक अदालत एक्सपैरीमेन्ट"** टाइम्स (नई दिल्ली) अप्रैल 5, 1985

34. माधव मेनन एन. आर. : **"समाज के कमजोर वर्गो के साथ किये जा रहे अत्याचारों का मुकाबला करने में विधिक सहायता की भूमिका"** विधिक सहायता संवाद पत्र मई 89–फरवरी 90

35. महाजन कृष्णा : **"नाइदर लोक नार अदालत"**, नई दिल्ली हिन्दुस्तान टाइम्स, अप्रैल 28, 1985

36. महाजन आर. के. : **''गरीबों के लिये निवारक विधिक सहायता''** विधिक सहायता संवादपत्र, मई 89–फरवरी 90

37. मजूमदार एस. डी. : **''पब्लिक इनट्रेस्ट लिटीगेशन'';** लीगल एड न्यूज लेटर, जुलाई–दिसम्बर 1991 पृ0 16

38. माथुर जे. के. : **''मैनिजमेंट जुडीशियल सिस्टम''** इण्डियन जनरल आफ पब्लिक एडमिनेस्ट्रेशन अप्रैल–जून 85 पृ0 263–72

39. मुखर्जी सब्यशांची : **''रोल आफ जुडीसिरी एण्ड पब्लिक इनट्रेस्ट लिटीगेशन''** लीगल एड न्यूज लेटर मई अगस्त 1990 पृ0 21

40. सक्सेना मनोहर राय : **''लीगल एड एण्ड एडवाइस स्कीम एण्ड लोक अदालत''** आल इण्डिया रिर्पोटर, जुलाई 1986

41. सहाय जयनारायण : **''जुडीशियल इन्डेपैंडेंस इन इण्डिया''** रैडिकल ह्यूमिस्टि, जनवरी 83, 36–38

42. सेटवानी के. एम. : **''लीगल एड एण्ड कॉनसेप्ट आफ ड्यूटी''** लीगल एड न्यूज लेटर, अप्रैल–जून 1991 पृ0 6

43. शेखरन डी. एस. : **''एम्बुलेन्स चेजिंग लायर्स''** इण्डियन एक्सप्रेस नई दिल्ली जनवरी 5, 1992

44. शर्मा एम. सी. : **''हेज दा ज्यूडिसरी गॉन टू फास्ट''** इण्डियन बार रिव्यू Vol. 11 (4) 1984 पृ0 44

45. शौरी एच. डी. : **''जस्टिस थ्रो लोक अदालत''** राजस्थान पत्रिका, मार्च 3, 1986

46. सिन्हा आषुतोष : **''लोक अदालत'':** नेशनल हेराल्ड नई दिल्ली जनवरी 26, 1986

47. सुन्दर रमन : **''सोसियल जस्टिस एण्ड इण्डियन कॉस्टीट्यूशनल ज्यूरिसप्रुडेंस''** जरनल ऑल पालिटिकल स्डीज सितम्बर 84 पृ0 67

48. **क्विक जस्टिस** : (एडीटोरियल); दि हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली अगस्त 26, 1987

49. **''टूर्वाडस स्पीडियर जस्टिस''** (एडीटोरियल); ट्रिब्यून (चंडीगढ़) नवम्बर 21, 1989

50. बेंकटेश्वर राव बठुला : **''भारत में कानूनी सहायता की प्रक्रिया''**, विधिक सहायता संवादपत्र, जुलाई–सितम्बर, 1992

(स) <u>समाचार पत्र एवं पत्रिकायें</u>

1 "आल इण्डिया रिपोर्टर" मैसूर

2 वी. एच. यू. (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) जरनल आफ पोलिटिकल साइंस

3 "डेकन हैराल्ड" बेंगलोर

4 "इकोनोमिक एण्ड पालिटिक्स रिव्यू" बाम्बे

5 "हिन्दू" (मद्रास)

6 "इण्डियन एक्सप्रेस" नई दिल्ली

7 "इण्डिया क्वारटर्ली", नई दिल्ली

7 "इण्डिया टुडे" बाम्बे

8 "इण्डियन जरनल आफ पालिटिकल साइंस"

9 "इण्डियन जरनल आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन" नई दिल्ली

10 "इण्डियन जरनल आफ पालिटिक्स"

11 "इण्डियन बार रिव्यू"

12 "जरनल आफ बार कौसिंल आफ इण्डिया" नई दिल्ली

13 "जरनल आफ इण्डियन लॉ इस्टीट्यूट" नई दिल्ली

14 "जरनल आफ कॉस्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंटरी स्टडीज" नई दिल्ली

15 "कुरूक्षेत्र लॉ जरनल"

16 "लीगल एड न्यूज लेटर" नई दिल्ली

17 "नेशनल हेराल्ड" नई दिल्ली

18 "पैटियाट" नई दिल्ली

19 "पंजाब जरनल आफ पालिटिक्स", अमृतसर

20 "राजस्थान पत्रिका" जयपुर

21 "दि हिन्दुस्तान टाइम्स", नई दिल्ली

22 "दि टाइम्स आफ इण्डिया" नई दिल्ली

23 "ट्रिब्यून" चण्डीगढ़

24 **''दि यू. पी. जरनल आफ पालिटिकल सांइस''** कानपुर

25 **''नवभारत टाइम्स''** नई दिल्ली (हिन्दी)

26 **''विधिक सहायता संवाद पत्र''** नई दिल्ली

27 **''जनसत्ता''** नई दिल्ली

28 **''राष्ट्रीय सहारा''** लखनऊ

29 **''दैनिक आज''** कानपुर

30 **''दैनिक जागरण''** कानपुर

31 **''स्वतन्त्र भारत''** कानपुर, लखनऊ

32 **''अमर उजाला''** कानपुर